Mahabharat Katha.

महाभारत-कथा

[१]

[तमिल ग्रंथ 'व्यासर विरुन्दु' का अनुवाद]

रचयिता

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

Chakarvarti Rajgopalacarya

अनुवादक

श्री पू. सोमसुन्दरम्

Sasta Sahitya Mandal
Delhi

१९४९

सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

1949

[illegible]

Mahabharat Katha

महाभारत-कथा

[१]

[तमिल ग्रंथ 'व्यासर विरून्दु' का अनुवाद]

रचयिता

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

Chakarvarti Rajgopalacarya

अनुवादक

श्री पू. सोमसुन्दरम्

Sasta Sahitya Mandal Delhi

१९४९

सस्ता साहित्य मंडल

नई दिल्ली

1949

प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

acc. no: 16831
Rs 3-

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar

262

दूसरी बार : १९४९
मूल्य
तीन रुपये

SPS
294.5923 R 14 M
16831

दिल्ली
नई दि

प्राक्कथन

(दूसरे संस्करण के लिए खासतौर से लिखित)

मैं समझता हूं कि अपने जीवन में मुझसे जो सबसे बड़ी सेवा बन सकी है, वह है महाभारत को तमिल-भाषियों के लिए कथाओं के रूप में लिख देना। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि 'सस्ता साहित्य मंडल' ने 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' के एक दक्षिण भारतीय द्वारा किये हुए हिन्दी रूपान्तर को बढ़िया मानकर उत्तर भारत के पाठकों के समक्ष उपस्थित करने के लिए स्वीकार कर लिया है।

मेरा विश्वास है कि महाभारत की ये संक्षिप्त कथाएं पाठकों को हले की अपेक्षा अच्छा आदमी, अच्छा चिंतक और अच्छा हिन्दू बनावेंगी।

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

दिल्ली

१९४९

दो शब्द

(पहले संस्करण के लिए)

आज से ढाई वर्ष पूर्व मैंने 'कल्की' नामक पत्रिका में शिशुपाल की कहानी लिखी थी जिसका शीर्षक था 'प्रथम ताम्बूल।' उसे देखकर 'कल्की' के सम्पादक श्री कृष्णमूर्ति और श्री टी. के. चिदंबरनाथ मुदलियार ने मुझे प्रोत्साहन देते हुए कहा कि जब महाभारत में ऐसी सुन्दर बातें हैं कि जिन्हें पढ़कर मालूम होता है मानो आज ही कल की बातें हों, तो क्यों नहीं आप क्रमशः सारे महाभारत की कथा लिख डालें।

मैंने उनकी बात मान ली। लिखना आरम्भ तो किया, लेकिन डरते-डरते। थोड़े ही दिनों के बाद मेरा आनन्द, भक्ति और उत्साह बढ़ने लगा और पुस्तक के १०८ अध्याय तैयार हो गए। मेरे तमिल भाई कथा सुनने बैठे हैं ऐसी कल्पना करके कहानी सुनाने के ढंग से ही भक्ति व श्रद्धा के साथ मैंने लिखना शुरू किया। इससे मुझे इस काम में श्रम मालूम नहीं हुआ।

हमारे देश में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होगा जो महाभारत और रामायण से परिचित न हो, लेकिन ऐसे बहुत थोड़े लोग होंगे जिन्होंने कथावाचकों और भाष्यकारों की नवीन कल्पनाओं से अछूते रहकर उनका अध्ययन किया हो। इसका कारण संभवतः यह हो कि ये नई कल्पनाएं बड़ी रोचक हों। पर महामुनि व्यास की रचना में जो गांभीर्य और अर्थ-गूढ़ता है, उसे उपस्थित करना और किसीके लिए संभव नहीं। यदि लोग व्यास के महाभारत को, जिसकी गणना हमारे देश के प्राचीन और महाकाव्यों में की जाती है और जो अपने ढंग का अनूठा ग्रंथ है, अच्छे वाचकों से सुनकर उसका मनन करें तो मेरा विश्वास है कि वे

ज्ञान, क्षमता और आत्म-शक्ति प्राप्त करेंगे। महाभारत से बढ़कर और कहीं भी इस बात की शिक्षा नहीं मिल सकती कि जीवन में विरोध-भाव, विद्वेष और क्रोध से सफलता नहीं मिल सकती।

प्राचीन काल में बच्चों को पुराणों की कहानियां दादियां सुनाया करती थीं; लेकिन अब तो बेटे-पोते वाली महिलाओं को भी ये कहानियां ज्ञात नहीं हैं। इसलिए अगर इन कहानियों को पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाय तो उससे भारतीय परिवारों को लाभ ही होगा।

महाभारत की इन कथाओं को केवल एक बार पढ़ लेने से ही काम न चलेगा। इन्हें बार-बार पढ़ना चाहिए, गांवों में बे-पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों को इकट्ठा करके दीपक के उजाले में इन्हें पढ़कर सुनाना चाहिए। ऐसा करने से देश में ज्ञान, प्रेम और धर्म-भावनाओं का प्रसार होगा, सबका भला होगा।

प्रश्न होसकता है कि पुस्तक में चित्र क्यों नहीं दिये गए? इसका कारण है। मेरी धारणा है कि हमारे चित्रकारों के चित्र सुन्दर होने पर भी यथार्थ और कल्पना के बीच जो सामंजस्य होना चाहिए, वह स्थापित नहीं कर पाते। भीम को साधारण पहलवान, अर्जुन को नट और कृष्ण को छोटी लड़की की तरह चित्रित करके दिखाना ठीक नहीं है। पात्रों के रूप की कल्पना पाठकों की भावना पर छोड़ देना ही अच्छा है।

सन् १९४६ —च० राजगोपालाचार्य

विषय-सूची

१. गणेशजी की शर्त १
२. देवव्रत ५
३. भीष्म - प्रतिज्ञा ९
४. अम्बा और भीष्म १३
५. कच और देवयानी २०
६. देवयानी का विवाह २६
७. ययाति ३४
८. विदुर ३८
९. कुन्ती ४२
१०. पाण्डु का देहावसान ४५
११. भीम ४७
१२. कर्ण ५०
१३. द्रोणाचार्य ५५
१४. लाख का घर ५९
१५. पाण्डवों की रक्षा ६४
१६. बकासुर-वध ७१
१७. द्रौपदी स्वयंवर ८०
१८. इन्द्रप्रस्थ ८७
१९. सारंग के बच्चे ९५
२०. जरासंध १००
२१. जरासन्ध का वध १०४
२२. अग्रपूजा १०९
२३. शकुनि का प्रवेश ११४
२४. खेल के लिए बुलावा ११८

ज्ञान, क्षमता और आत्म-शक्ति प्राप्त करेंगे। महाभारत से बढ़कर और कहीं भी इस बात की शिक्षा नहीं मिल सकती कि जीवन में विरोध-भाव, विद्वेष और क्रोध से सफलता नहीं मिल सकती।

प्राचीन काल में बच्चों को पुराणों की कहानियां दादियां सुनाया करती थीं; लेकिन अब तो बेटे-पोते वाली महिलाओं को भी ये कहानियां ज्ञात नहीं हैं। इसलिए अगर इन कहानियों को पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाय तो उससे भारतीय परिवारों को लाभ ही होगा।

महाभारत की इन कथाओं को केवल एक बार पढ़ लेने से ही काम न चलेगा। इन्हें बार-बार पढ़ना चाहिए, गांवों में बे-पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों को इकट्ठा करके दीपक के उजाले में इन्हें पढ़कर सुनाना चाहिए। ऐसा करने से देश में ज्ञान, प्रेम और धर्म-भावनाओं का प्रसार होगा, सबका भला होगा।

प्रश्न होसकता है कि पुस्तक में चित्र क्यों नहीं दिये गए? इसका कारण है। मेरी धारणा है कि हमारे चित्रकारों के चित्र सुन्दर होने पर भी यथार्थ और कल्पना के बीच जो सामंजस्य होना चाहिए, वह स्थापित नहीं कर पाते। भीम को साधारण पहलवान, अर्जुन को नट और कृष्ण को छोटी लड़की की तरह चित्रित करके दिखाना ठीक नहीं है। पात्रों के रूप की कल्पना पाठकों की भावना पर छोड़ देना ही अच्छा है।

सन् १९४६ —च० राजगोपालाचार्य

विषय-सूची

१. गणेशजी की शर्त १
२. देवव्रत ५
३. भीष्म - प्रतिज्ञा ९
४. अम्बा और भीष्म १३
५. कच और देवयानी २०
६. देवयानी का विवाह २६
७. ययाति ३४
८. विदुर ३८
९. कुन्ती ४२
१०. पाण्डु का देहावसान ४५
११. भीम ४७
१२. कर्ण ५०
१३. द्रोणाचार्य ५५
१४. लाख का घर ५९
१५. पाण्डवों की रक्षा ६४
१६. बकासुर-वध ७१
१७. द्रौपदी स्वयंवर ८०
१८. इन्द्रप्रस्थ ८७
१९. सारंग के बच्चे ९५
२०. जरासंध १००
२१. जरासन्ध का वध १०४
२२. अग्रपूजा १०९
२३. शकुनि का प्रवेश ११४
२४. खेल के लिए बुलावा ११८

२५. बाज़ी १२३
२६. द्रौपदी की व्यथा १२९
२७. धृतराष्ट्र की चिन्ता १३६
२८. श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा १४२
२९. पाशुपतास्त्र १४६
३०. विपदा किस पर नहीं पड़ती? १५२
३१. अगस्त्य मुनि १५७
३२. ऋष्यश्रृंग १६४
३३. यवक्रीत की तपस्या १७०
३४. यवक्रीत की मृत्यु १७३
३५. विद्या और शिष्टता १७८
३६. मुनि अष्टावक्र १८०
३७. भीम और हनुमान १८४
३८. "मैं बगुला नहीं हूं १९२
३९. दुष्टों का जी कभी नहीं भरता १९६
४०. दुर्योधन अपमानित होता है २००
४१. कृष्ण की भूख २०५
४२. जहरीला तालाब २१०
४३. यक्ष-प्रश्न २१५
४४. अनुचर का काम २२०
४५. अज्ञातवास २२७
४६. विराट की रक्षा २३४
४७. राजकुमार उत्तर २४०
४८. प्रतिज्ञा-पूर्ति २४६
४९. विराट का भ्रम २५२

महाभारत-कथा

[१]

: १ :

गणेशजी की शर्त

भगवान् व्यास महर्षि पराशर के कीर्तिमान् पुत्र थे। चारों वेदों को क्रमबद्ध करके उनका संकलन करने का श्रेय इन्हींको है। महाभारत की पुण्य कथा भगवान् व्यास ही की देन है।

महाभारत की कथा व्यासजी के मानस-पट पर अंकित हो चुकी थी। तब उनको यह चिंता हुई कि इसे संसार को किस तरह प्रदान करें। यह सोचते हुए व्यासजी ने ब्रह्मा का ध्यान किया। ब्रह्मा प्रत्यक्ष हुए। व्यासजी ने उनके सामने सिर नवाया और अंजलिबद्ध होकर निवेदन किया--

"हे भगवन्! एक महान् ग्रंथ की रचना मेरे मन में हुई है। चिंता इस बात की है कि इसे लिपिबद्ध कौन करे?"

यह सुन कर ब्रह्मा बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने व्यासजी की भूरि-भूरि प्रशंसा की और बोले--"तात! तुम गणेशजी को प्रसन्न करो। वे ही तुम्हारे ग्रंथ को लिख सकने में समर्थ हैं।" यह कह ब्रह्मा अन्तर्द्धान हो गए।

महर्षि व्यास ने गणेशजी का ध्यान किया। गणेशजी प्रसन्नमुख व्यासजी के सामने उपस्थित हुए। महर्षि ने विधिवत् उनकी पूजा की और उनको प्रसन्न देखकर प्रार्थना की--"एक सर्वोत्तम ग्रंथ की रचना मेरे मन में हुई है। आप उसे लिपिबद्ध करने की कृपा करें।"

गणेशजी मान तो गये, लेकिन एक शर्त के साथ। उन्होंने कहा--"लिखने के लिए तो मैं तैयार हूं, लेकिन शर्त यह है कि एक बार अगर मैं लिखना शुरू करूं तो फिर मेरी लेखनीं पलभर भी रुकने न

पाए। अगर आप ज़रा भी रुक गए तो फिर मेरी लेखनी भी एकदम रुक जायगी। क्या आपसे यह हो सकेगा ?"

शर्त जरा कठिन थी। लेकिन व्यासजी ने मान ली। वह बोले—"आपकी शर्त मुझे मंजूर है, पर मेरी भी एक शर्त है। वह यह कि आप भी तभी लिखियेगा जब हर श्लोक का अर्थ ठीक-ठीक समझ लें।"

सुनकर गणेशजी हंस पड़े। बोले—"यह भी कोई बड़ी बात है ?" और व्यास और गणेश आमने-सामने बैठ गये। व्यासजी बोलते जाते थे और गणेशजी लिखते जाते थे। कहीं-कहीं व्यासजी श्लोकों को इतना जटिल बना देते थे कि गणेशजी को समझने में कुछ देर लग जाती थी और उनकी लेखनी जरा देर रुक जाती थी। इस बीच व्यासजी कितने ही और श्लोकों की मन-ही-मन रचना कर लेते थे। इस तरह महाभारत की कथा व्यासजी की ओजभरी वाणी से प्रवाहित हुई और गणेशजी की अथक लेखनी ने उसे लिपिबद्ध किया।

ग्रंथ लिखकर तैयार हो गया। अब व्यासजी के मन में उसे सुरक्षित रखने तथा उसके प्रचार का प्रश्न उठा। उन दिनों छापेखाने का आविष्कार नहीं हुआ था। शिक्षित लोग ग्रंथों को कण्ठस्थ कर लिया करते थे और इस प्रकार स्मरण-शक्ति के सहारे उनको सुरक्षित रखते थे। व्यासजी ने भी भारत की कथा अपने पुत्र शुकदेव को कण्ठस्थ कराई और बाद में अपने और कई शिष्यों को भी कराई।

●

कहा जाता है कि देवों को नारदमुनि ने महाभारत-कथा सुनाई थी और गन्धर्वों, राक्षसों तथा यक्षों में इसका प्रचार शुक मुनि ने किया। यह तो सभी जानते हैं कि मानव-जाति में महाभारत-कथा का प्रचार महर्षि वैशंपायन से हुआ। वैशंपायन भगवान् व्यास के प्रमुख शिष्य थे और बड़े विद्वान् तथा धर्मनिष्ठ थे।

महाराजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने एक महान् यज्ञ किया। उसमें उन्होंने महाभारत-कथा सुनाने की वैशंपायन से प्रार्थना की।

महर्षि ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और महाभारत की कथा विस्तार से सुनाई ।

इस यज्ञ में सुप्रसिद्ध पौराणिक सूतजी भी विद्यमान थे । महाभारत की कथा सुनकर वह बहुत ही प्रभावित हुए । सद्धर्म के प्रचार के लिए भगवान् व्यास के इस महाकाव्य से मनुष्यमात्र को लाभ पहुंचाने की इच्छा उनके मन में प्रबल हुई । इस उद्देश्य से सूतजी ने नैमिषारण्य में तमाम ऋषियों की एक सभा बुलाई । महर्षि शौनक इस सभा के अध्यक्ष हुए । मुनि-पुंगवों की इस सभा में सूतजी ने महाभारत का गान किया ।

“राजा जनमेजय के नाग-यज्ञ के अवसर पर महर्षि वैशंपायन ने व्यासजी की आज्ञानुसार भारत की कथा सुनाई थी । वह पवित्र कथा मैंने सुनी और तीर्थाटन करते हुए कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि को भी जाकर देखा ।”

इस भूमिका के साथ सूतजी ने ऋषियों के सामने महाभारत की कथा कहना शुरू किया ।

●

महाराजा शान्तनु के बाद उनके पुत्र चित्रांगद हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठे । उनकी अकाल मृत्यु पर उनके भाई विचित्रवीर्य राजा हुए । उनके दो पुत्र हुए—धृतराष्ट्र और पाण्डु । जेठे धृतराष्ट्र जन्म से ही अन्ध थे । इसलिए पाण्डु को गद्दी पर बिठाया गया ।

पाण्डु ने कई वर्षतक राज किया । उनके दो रानियां थीं—कुन्ती और माद्री । कुछ कालतक राज्य करने के बाद पाण्डु अपने किसी पाप के प्रायश्चित्तार्थ तपस्या करने जंगल में चले गए । उनकी दोनों रानियां भी उनके साथ गईं । बनवास के समय कुन्ती और माद्री ने पांचों पाण्डवों को जन्म दिया । कुछ समय बाद पाण्डु की मृत्यु हो गई । तब पांचों अनाथ बच्चों का बन के ऋषि-मुनियों ने पालन-पोषण किया और पढ़ाया-लिखाया । जब युधिष्ठिर सोलह वर्ष के हुए तो ऋषियों ने पांचों कुमारों को हस्तिनापुर ले जाकर भीष्म पितामह के हवाले कर दिया ।

पांचों पाण्डव बुद्धि के तेज थे और शरीर के बली। छुटपन में ही उन्होंने वेद, वेदांग तथा अनेक शास्त्रों का अध्ययन सफलता से कर लिया था और शीघ्र ही क्षत्रियोचित विद्याओं में भी दक्ष हो गये। उनकी प्रखर बुद्धि और मीठे स्वभाव ने सबको मुग्ध कर लिया। यह देखकर धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव उनसे जलने लगे और उन्होंने उनको कई तरह के कष्ट पहुंचाये।

दिन-पर-दिन कौरव-पाण्डवों के बीच वैर बढ़ता गया। अन्त में भीष्म पितामह ने दोनों को किसी तरह समझाया और उनमें सन्धि कराई। वृद्ध भीष्म के आदेशानुसार कुरु-राज्य के दो विभाग किये गए। कौरव हस्तिनापुर ही में राज करते रहे और पाण्डवों को एक अलग राज्य दिया गया जो आगे चलकर इन्द्रप्रस्थ के नामसे मशहूर हुआ। इस प्रकार थोड़े दिन तक शान्ति रही।

उन दिनों राजा लोगों में जुआ (चौपड़) खेलने का आम रिवाज था। राज्यों तक की बाजियां लगाई जाती थीं। इस रिवाज के मुताबिक एक बार पाण्डवों और कौरवों ने जुआ खेला। कौरवों की तरफ से चालाक शकुनि खेला। उसने धर्मात्मा युधिष्ठिर को हरा दिया। इसके फलस्वरूप पाण्डवों का राज्य छिन गया और उनको तेरह वर्ष का बनवास भोगना पड़ा। उसमें एक शर्त यह भी थी कि बारह वर्ष के बनवास के बाद एक वर्ष अज्ञातवास करके लौटने पर उनका राज्य उन्हें वापस कर दिया जायगा।

द्रौपदी के साथ पांचों पाण्डव बारह वर्ष बनवास और एक वर्ष अज्ञातवास में बिताकर वापस लौटे। पर लालची दुर्योधन ने उनसे लिया हुआ राज्य वापस करने से इन्कार कर दिया। अतः पाण्डवों को अपने राज्य के लिए लड़ना पड़ा। युद्ध में सारे कौरव मारे गये। पाण्डव उस विशाल साम्राज्य के एकमात्र स्वामी हुए।

इसके बाद छत्तीस वर्ष तक पाण्डवों ने राज्य किया। फिर अपने पोते परीक्षित को राज्य देकर द्रौपदी के साथ तपस्या करने हिमालय

चले गए ।

यही संक्षेप में महाभारत की कथा है ।

महाभारत का अद्भुत काव्य भारतीय साहित्य-भाण्डार के सर्वश्रेष्ठ महाग्रन्थों में से है । इसमें पाण्डवों की कथा के साथ कई सुन्दर उपकथाएं भी हैं । बीच-बीच में सूक्तियों तथा उपदेशों के भी उज्ज्वल रत्न जड़े हुए हैं । महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं ।

रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल-स्रोत माने जा सकते हैं ।

: २ :

देवव्रत

गंगादेवी एक सुन्दर युवती का रूप धारण किये नदी तट पर खड़ी थी । उसके सौंदर्य और नवयौवन ने राजा शान्तनु को मोह लिया ।

"सुन्दरी, तुम कोई भी हो, मेरा प्रेम स्वीकार कर लो और मेरी पत्नी बन जाओ । मेरा राज्य, मेरा धन, यहांतक कि मेरे प्राणतक आज से तुम्हारे हैं ।" प्रेम-विह्वल राजा ने उस दैवी सुन्दरी से याचना की ।

स्मित-वदना गंगा बोली—"राजन् ! आपकी पत्नी होना मुझे स्वीकार है । पर इससे पहले आपको मेरी कुछ शर्तें माननी होंगी । मानेंगे ?"

राजा ने कहा—"अवश्य ।"

गंगा बोली—"कोई भी मुझसे यह न पूछे कि तुम कौन हो, किस कुल की हो ? मैं कुछ भी करूं—अच्छा, या बुरा, मुझे कोई न रोके । किसी भी बात पर कोई मुझसे नाराज न हो और न कोई मुझे

डांटे-डपटे। ये मेरी शर्तें हैं। इनमें से एक के भी तोड़े जाने पर मैं आपको छोड़कर फौरन चली जाऊंगी। ये आपको स्वीकार हैं?"

शान्तनु ने गंगा की शर्तें मान लीं और वचन दिया कि वह उनका पूर्ण रूप से पालन करेंगे।

गंगा राजा शान्तनु के भवन की शोभा बढ़ाने लगी। उसके शील-स्वभाव, नम्रता और अचंचल प्रेम को देखकर राजा शान्तनु मुग्ध हो गये। काल-चक्र घूमता गया; किन्तु प्रेम-सुधा-मग्न राजा और गंगा को उसकी खबरतक न थी।

गंगा से शान्तनु के कई तेजस्वी पुत्र हुए; पर गंगा ने उनको जीने न दिया। बच्चे के पैदा होते ही वह उसे नदी की बढ़ती हुई धारा में फेंक देती और फिर सस्मित वदन राजा शान्तनु के पास आ जाती।

अज्ञात सुन्दरी के इस कुत्सित व्यवहार से राजा शान्तनु चकित होकर रह जाते। उनके क्षोभ और आश्चर्य का पारावार न रहता। सोचते, यह मृदुल गात और यह पैशाचिक व्यवहार! यह तरुणी कौन है? कहांकी है? इस तरह के कई विचार उनके मन में उठते, पर वचन दे चुके थे, इस कारण मन मसोस कर रह जाते।

●

सूर्य के समान तेजस्वी सात बच्चों को गंगा ने इसी भांति नदी की धारा में बहा दिया। आठवां बच्चा पैदा हुआ। गंगा ने उसे भी लेकर नदी की तरफ पैर बढ़ाये तो शान्तनु से न रहा गया। बोले—"ठहरो, यह घोर पाप करने पर क्यों तुली हो? मां होकर अपने नादान बच्चों को क्यों अकारण ही मार दिया करती हो? यह घृणित व्यवहार तुम्हें नहीं सोहता।"

राजा की बात सुनकर गंगा मन-ही-मन मुसकराई; पर क्रोध का अभिनय करती हुई बोली—

"राजन्! आप क्या अपना वचन भूल गये? मालूम होता है, आपको पुत्र ही से मतलब था, मुझसे नहीं। अब आपको मेरी क्या परवाह! ठीक है। मैं जाती हूं। हां, आपके इस पुत्र को मैं नहीं मारूंगी।" इसके

बाद गंगा अपना परिचय देती हुई बोली—"शान्तनु ! घबराओ मत। मैं वह गंगा हूं जिसका यश ऋषि-मुनि गाते हैं। जिन बच्चों को मैंने बहा दिया वे आठों वसु थे। महर्षि वसिष्ठ ने आठों वसुओं को मर्त्यलोक में जन्म लेने का शाप दिया था। वसुओं ने मुझसे प्रार्थना की थी कि मैं उनकी मां बनूं और जन्मते ही उनको नदी में फेंक दूं। मैंने उनकी प्रार्थना मान ली, तुम्हें लुभाया और उनको जन्म दिया। यह अच्छा ही हुआ कि उन्होंने तुम्हारे जैसे यशस्वी राजा को पिता के रूप में पाया। तुम भी भाग्यशाली हो जो आठों वसु तुम्हारे पुत्र हुए। तुम्हारे इस अन्तिम बच्चे को मैं कुछ दिन पालूंगी और फिर पुरस्कार के रूप में तुम्हें सौंप दूंगी।" यह कहकर गंगादेवी बच्चे को साथ ले ओझल हो गई। यही बच्चा आगे चलकर भीष्म के नाम से विख्यात हुआ।

●

एक दिन आठों वसु अपनी पत्नियों समेत हंसते-खेलते उस पहाड़ी के नजदीक विचरण कर रहे थे जहां वसिष्ठ मुनि का आश्रम था। ऋतु सुहावनी थी और पहाड़ी का दृश्य मनोहर। वसु-दंपति निकुंजों और पहाड़ों पर विचरण करते हुए अपने खेल-कूद में मग्न थे कि इतने में वसिष्ठ मुनि की गाय नन्दिनी अपने बछड़े के साथ चरती हुई उधर से आ निकली। उसके अलौकिक सौंदर्य एवं दैवी छवि को देखकर वसु-पत्नियां मुग्ध हो गईं और उस मोदमयी गाय की प्रशंसा करने लगीं। एक वसु-पत्नी का मन उसको देखकर ललचा गया। उसने अपने पति प्रभास से अनुरोध किया कि यह गाय मुझे पकड़ा दो।

सुनकर प्रभास को हंसी आई। उसने कहा— "प्रिये ! हम तो देवता हैं ! दूध की हमें आवश्यकता ही क्या है ? जानती नहीं हो हम महर्षि वसिष्ठ के तपोवन में हैं और यह उनकी प्यारी गाय नन्दिनी है ? इस गाय का दूध मनुष्य पियें तो चिरंजीवी बन सकते हैं। हम तो खुद ही अमर ठहरे। इसे लेकर क्या करेंगे ? व्यर्थ ही मुनिवर का क्रोध क्यों मोल लें ?"

प्रभास ने हजार समझाया, फिर भी उसकी पत्नी ने न माना। उसने

कहा--"मैं अपने लिए थोड़े ही मांग रही हूं ? मर्त्यलोक में मेरी एक सहेली है, उसीके लिए मांग रही हूं । महर्षि वसिष्ठ अब आश्रम में नहीं हैं । उनके आने से पहले हम इसे भगा ले जायं । क्या मेरे लिए तुम इतना भी नहीं कर सकते ?"

प्रभास पत्नी का अनुरोध टाल न सका । दूसरे वसुओं की सहायता से नन्दिनी और उसके बछड़े को वह भगा ले गया ।

वसिष्ठ जब आश्रम लौटे तो हवन-सामग्री देने वाली गाय और बछड़े को न पाया । गाय की खोज में उन्होंने सारा वन-प्रदेश छान डाला, पर वह न मिली । तब मुनि ने अपने ज्ञान-चक्षु से देखा तो उन्हें वसुओं की करतूत का पता लगा । वसुओं की इस धृष्टता पर वसिष्ठ का प्रशान्त मन भी क्रुद्ध हो उठा । चूंकि वसुओं ने देवता होकर मनुष्य के-से लालच से काम लिया था इसलिए मुनि ने शाप दिया कि आठों वसु मनुष्य-लोक में जन्म लें ।

मुनि का तपोबल ऐसा था कि उनके शाप देते ही वसुओं के मन में घबराहट पैदा हो गई । बेचारे भागे आये और ऋषि के सामने गिड़गिड़ाने और उनको मनाने लगे ।

तब वसिष्ठ बोले---"मेरा शाप झूठा नहीं हो सकता । तुम लोगों को मर्त्य-लोक में जन्म तो लेना ही पड़ेगा । फिर भी प्रभास को छोड़कर बाकी सबके लिए इतना कर सकता हूं कि वे पृथ्वी में जन्म लेते ही विमुक्त हो जायं । प्रभास चूंकि तुम्हें उभारने वाला था इसलिए उसे काफी दिन मर्त्य-लोक में जीवित रहना होगा । हां, वह बड़ा यशस्वी होगा ।"

इतना कहकर मुनि शांत हो गये और अपनी क्रोध-विक्षत तपस्या में फिर ध्यान दिया ।

मुनि के आश्रम से लौटते हुए वसुओं ने अपने मन में सोचा कि चलो, मुनि ने इतनी कृपा तो की । वहां से वे गंगादेवी के पास गये और उसके सामने अपना दुखड़ा रोया । गंगा से उन्होंने प्रार्थना की कि पृथ्वी में तुम्हीं हमारी माता बनो और उत्पन्न होते ही हमें जल में डुबोकर मुक्त कर दो ।

गंगा ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्हींकी प्रार्थनानुसार गंगा ने यशस्वी शान्तनु को लुभाया और सात बच्चों को नदी में प्रवाहित किया था।

●

गंगा चली गई तो शान्तनु का मन विरक्त हो गया। उन्होंने भोग-लालसा छोड़ दी और राज-काज में दिल लगाया।

एक दिन राजा शिकार खेलते-खेलते गंगा के तट पर गये तो एक अलौकिक दृश्य देखा। किनारे पर देवराज जैसा एक सुन्दर और गठीला युवक खड़ा गंगा की बहती हुई धारा पर बाण चला रहा था। बाणों की बौछार से गंगा की प्रचण्ड धारा एकदम रुकी हुई थी। देख कर शान्तनु दंग रह गये।

इतने में ही राजा के सामने स्वयं गंगा आ खड़ी हुई। गंगा ने युवक को अपने पास बुलाया और राजा से बोली-- "राजन्, यही तुम्हारा और मेरा आठवां पुत्र देवव्रत है। महर्षि वसिष्ठ से इसने वेदों और वेदांगों की शिक्षा प्राप्त की है। शास्त्र-ज्ञान में शुक्राचार्य और रण-कौशल में परशुराम ही इसका मुकाबला कर सकते हैं। यह जितना कुशल योद्धा है, उतना ही चतुर राजनीतिज्ञ भी है। तुम्हारा पुत्र अब तुम्हारे सुपुर्द है। इसे साथ ले जाओ।"

गंगादेवी ने देवव्रत का माथा चूमा और आशीर्वाद देकर राजा के साथ उसे विदा किया। तेजस्वी पुत्र को पाकर राजा प्रफुल्लित मन से नगर को लौटे। थोड़े ही दिन में देवव्रत राजकुमार के पद को सुशोभित करने लगे।

: २ :

भीष्म-प्रतिज्ञा

चार वर्ष बीत गए। एक दिन राजा शान्तनु जमुना तट की तरफ घूमने गए तो वातावरण को अनैसर्गिक सुगन्धि से भरा पाया। उन्हें

आश्चर्य हुआ कि ऐसी मनोहारिणी सुवास कहां से आती होगी। इस बात का पता लगाने के लिए वह जमुना तट पर इधर-उधर खोजने लगे कि इतने में अप्सरा-सी सुन्दर एक तरुणी खड़ी दिखाई दी। राजा को मालूम हुआ कि उसी सुन्दरी की कमनीय देह से यह सुवास निकल रही है और सारे वन-प्रदेश को सुवासित कर रही है।

तरुणी का नाम सत्यवती था। पराशर मुनि ने उसे वरदान दिया था कि उसके सुकोमल शरीर से दिव्य गन्ध निकलती रहेगी।

गंगा के वियोग के कारण राजा के मन में जो विराग छाया हुआ था वह इस सौरभमयी कामिनी को देखते ही हवा में उड़ गया। उस अलौकिक सुन्दरी को पत्नी बनाने की इच्छा उनके मन में बलवती हो उठी। उन्होंने सत्यवती से प्रेम-याचना की। राजा की प्रेम-याचना के उत्तर में सत्यवती बोली—"मेरे बाप मल्लाहों के सरदार हैं। उनकी अनुमति ले लो तो मैं साथ चलने को तैयार हूं।"

उसकी मीठी बोली उसके सौंदर्य के अनुरूप ही थी।

पर केवट-राज बड़े चतुर निकले। राजा शान्तनु ने जब अपनी इच्छा उनपर प्रकट की तो दाशराज ने कहा—"जब लड़की है तो इसका विवाह भी किसी-न-किसी से करना ही होगा। और इसमें सन्देह नहीं कि आपके जैसा सुयोग्य वर इसको और कहां मिलेगा? पर मुझे एक बात का वचन देना पड़ेगा।"

राजा न कहा—"जो मांगोगे दूंगा, यदि वह मेरे लिए अनुचित न हो।"

केवटराज बोले—"मेरी लड़की का पुत्र आपके बाद हस्तिनापुर के राज-सिंहासन पर बैठे। क्या इस बात का आप मुझे वचन दे सकते हैं?"

केवटराज की शर्त राजा शान्तनु को नागवार लगी। काम-वासना से राजा की सारी देह विदग्ध हो रही थी। फिर भी उनसे ऐसा अन्याय-पूर्ण वचन देते न बना। गंगा-सुत को छोड़कर अन्य किसीको राजगद्दी पर बिठाने की कल्पना तक उनसे न हो सकी। निराश और उद्विग्न मन से नगर को लौट आए। किसीसे कुछ कह भी न सके। पर चिन्ता उनके मन

को कीड़े की तरह खाने जाने लगी। वह दिन-पर-दिन दुबले होने लगे।

●

देवव्रत ने देखा कि पिता के मन में कोई-न-कोई व्यथा समाई हुई है। एक दिन उसने शान्तनु से पूछा—"पिताजी, संसार का कोई ऐसा सुख नहीं जो आपको न हो। फिर भी इधर कुछ दिन से आप शोकातुर प्रतीत हो रहे हैं। आपका चेहरा पीला पड़ रहा है और शरीर दुबला हो रहा है। आपको किस बात की चिन्ता है?"

शान्तनु को सच्ची बात कहते ज़रा झेंप आई। फिर भी कुछ-न-कुछ तो बतलाना ही था। बोले—"बेटा! तुम मेरे एकमात्र पुत्र हो। और युद्ध का तो मानो तुम्हें व्यसन-सा होगया है। किसी-न-किसी दिन तुम युद्ध में जाओगे अवश्य। और संसार में किसी बात का ठिकाना नहीं है। परमात्मा न करे तुम पर कुछ बीत जाय तो फिर वंश का क्या होगा? इसीलिए तो शास्त्रज्ञ कहते हैं कि एक पुत्र का होना-न-होना बराबर है। मुझे केवल इसी बात की चिन्ता है कि वंश की यह कड़ी बीच ही में न टूट जाय।"

यद्यपि शान्तनु ने गोलमोल बातें बनाईं फिर भी कुशाग्र-बुद्धि देवव्रत ने ताड़ लिया कि पिता की चिन्ता का क्या कारण है। उन्होंने राजा के सारथी से पूछ कर पता लगा लिया कि उस दिन जमुना के किनारे केवटराज से क्या बात हुई थी। यह जानकर देवव्रत केवटराज के पास गए और अपने पिता के लिए सत्यवती को मांगा।

केवटराज ने वही शर्त दुहराई जो उन्होंने शान्तनु के सामने रक्खी थी।

देवव्रत ने कहा—"यदि तुम्हारी आपत्ति का कारण यही है तो मैं वचन देता हूं कि मैं राज्य का लोभ नहीं करूंगा। सत्यवती का ही पुत्र मेरे पिता के बाद राजा बनेगा।"

लेकिन केवटराज इससे सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने दूर की सोची। बोले—"आर्यपुत्र, निःसन्देह आप बड़े वीर हैं। आपने आज एक ऐसा कार्य किया है जो राजवंशों के इतिहास में निराला है। अब आप ही मेरी कन्या के पिता बन जायं और इसे ले जाकर राजा शान्तनु

को ब्याह दें। मेरे मन में एक और सन्देह है। उसे भी दूर कर दें तो फिर मुझे कोई आपत्ति न होगी।

"इस बात का तो मुझे पूरा भरोसा है कि आप अपने वचन पर अटल रहेंगे। किन्तु आपकी सन्तान से मैं वही आशा कैसे रख सकता हूं? आप जैसे वीर का पुत्र भी तो वीर ही होगा! बहुत संभव है कि वह मेरे नाती से राज्य छीनने का प्रयत्न करे। इसके लिए आपके पास क्या समाधान है?"

केवटराज का प्रश्न लाजवाब था। उसे संतुष्ट करने का यही मतलब हो सकता था कि देवव्रत अपने भविष्य का बलिदान कर दें। पितृभक्त देवव्रत विचलित न हुए। सोच-समझकर गंभीर स्वर में उन्होंने यह भयंकर प्रतिज्ञा की--"मैं जीवन भर ब्याह न करूंगा--ब्रह्मचारी रहूंगा, ताकि मेरे सन्तान ही न हो।"

किसी को आशा न थी कि तरुण राजकुमार ऐसा कठोर व्रत धारण करेंगे। खुद दाशराज के रोमांच हो आया।

देवताओं ने फूल बरसाये। दिशायें "धन्य भीष्म, धन्य भीष्म" के घोष में गूंज उठीं। भयंकर कार्य करने वाले को भीष्म कहते हैं। देवव्रत ने भयंकर प्रण किया था, इसलिए उस दिन से भीष्म ही उनका नाम पड़ गया। दाशराज ने सानन्द अपनी पुत्री को देवव्रत के साथ विदा किया।

सत्यवती से शान्तनु के दो पुत्र हुए--चित्रांगद और विचित्रवीर्य। शान्तनु के देहावसान पर चित्रांगद और उनके मारे जाने पर विचित्रवीर्य हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठे। विचित्रवीर्य के दो रानियां थीं--अम्बिका और अम्बालिका। अम्बिका के पुत्र थे धृतराष्ट्र और अम्बालिका के पाण्डु। धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव कहलाये और पाण्डु के पाण्डव।

महात्मा भीष्म शान्तनु के बाद से लेकर कुरुक्षेत्र-युद्ध के अन्त तक उस विशाल राजवंश के सम्मान्य कुलनायक और पूज्य बने रहे। शांतनु के बाद कुरुवंश का क्रम यह रहा--

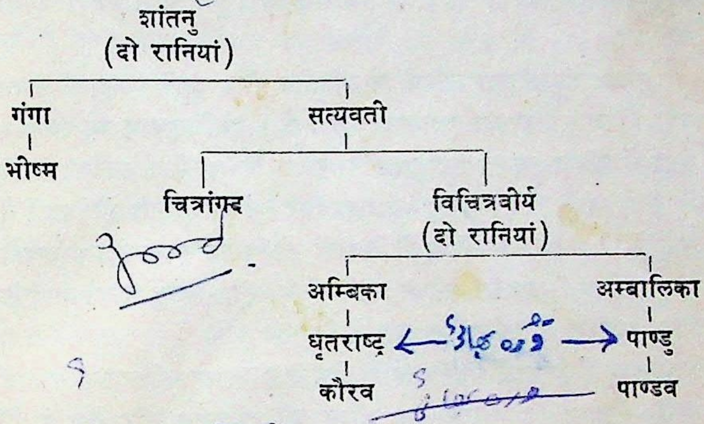
शांतनु
(दो रानियां)
गंगा
भीष्म
सत्यवती
चित्रांगद
विचित्रवीर्य
(दो रानियां)
अम्बिका
अम्बालिका
धृतराष्ट्र
पाण्डु
कौरव
पाण्डव
Good

Very good

: ४ :

अम्बा और भीष्म

सत्यवती के पुत्र चित्रांगद बड़े ही वीर पर स्वेच्छाचारी थे। एक बार किसी गन्धर्व के साथ हुए युद्ध में वह मारे गए। उनके कोई पुत्र न था, इसलिए उनके छोटे भाई विचित्रवीर्य हस्तिनापुर की राजगद्दी पर बैठे। विचित्रवीर्य की आयु उस समय बहुत छोटी थी। इस कारण उनके बालिग होने तक राज-काज भीष्म को ही संभालना पड़ा।

जब विचित्रवीर्य जवान हो चले तो भीष्म को उनके विवाह की चिन्ता हुई। इसी समय उन्हें खबर मिली कि काशीराज की कन्याओं का स्वयंवर होने वाला है। यह जानकर भीष्म बड़े खुश हुए और स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए काशी रवाना हो गये।

काशीराज की कन्याएं अपूर्व सुन्दरियां थीं। उनके रूप और गुण का यश दूर-दूर तक फैला हुआ था। इसलिए देश-विदेश के असंख्य राजकुमार उनके स्वयंवर में भाग लेने के लिए आये हुए थे।

स्वयंवर-मण्डप उनकी भीड़ से खचाखच भरा हुआ था। बड़ी स्पर्द्धा लगी थी।

भीष्म की प्रतिष्ठा क्षत्रियों में अद्वितीय थी। उनके महान् त्याग तथा भीषण प्रतिज्ञा का हाल सब जानते थे। इसलिए जब वह स्वयंवर मंडप में प्रविष्ट हुए तो राजकुमारों ने सोचा कि वह सिर्फ स्वयंवर देखने के लिए आये होंगे। परन्तु जब स्वयंवर में सम्मिलित होनेवालों में उन्होंने भी अपना नाम दिया तो बिचारों को निराश होना पड़ा। उनको क्या पता था कि दृढ़व्रत भीष्म अपने लिए नहीं, किन्तु अपने भाई के लिए स्वयंवर में सम्मिलित हुए हैं!

सभा में खलबली मची। चारों ओर से भीष्म पर फब्तियां कसी जाने लगीं--"माना कि भारत-श्रेष्ठ भीष्म बड़े बुद्धिमान और विद्वान् हैं, किंतु साथ ही बूढ़े भी तो हैं। स्वयंवर से इनसे मतलब? इनके प्रण का क्या हुआ? क्या इन्होंने मुफ्त ही में यश कमाया था? जीवन-भर ब्रह्मचारी रहने की इन्होंने जो प्रतिज्ञा की थी क्या वह झूठी ही थी?" इस भांति सब राजकुमारों ने भीष्म की हंसी उड़ाई, यहां तक कि काशीराज की कन्याओं ने भी वृद्ध भीष्म की तरफ से दृष्टि फेर ली और उनकी परवाह किये बिना आगे को चल दीं।

अभिमानी भीष्म इस अवहेलना को न सह सके। मारे क्रोध के उनकी आंखें लाल हो गईं। उन्होंने सभी इकट्ठे राजकुमारों को युद्ध के लिए ललकारा और अकेले ने तमाम राजकुमारों को तितर-बितर कर दिया। तीनों राजकन्याओं को बलपूर्वक लाकर रथ पर बिठा लिया और हस्तिनापुर की तरफ घोड़े दौड़ा दिये। सौभ देश का राजा शाल्व बड़ा ही स्वाभिमानी था। काशीराज की सबसे बड़ी कन्या अम्बा उस पर रीझी हुई थी और उसको मन में पति मान लिया था। शाल्व ने भीष्म के रथ का पीछा किया और उसको रोकने का प्रयत्न किया। इसपर भीष्म और शाल्व के बीच घोर युद्ध छिड़ गया। शाल्व बड़ा वीर था अवश्य, परन्तु धनुष के धनी भीष्म के आगे कब तक

ठहर सकता था ? भीष्म ने उसे हरा कर ही छोड़ा; किंतु काशीराज की कन्याओं की प्रार्थना स्वीकार कर उन्होंने उसे जीता ही छोड़ दिया ।

भीष्म काशीराज की कन्याओं को लेकर हस्तिनापुर पहुंचे । विचित्रवीर्य के ब्याह की सारी तैयारी हो जाने के बाद जब कन्याओं को विवाह-मण्डप में ले जाने का समय आया तो काशीराज की जेठी लड़की अम्बा एकांत में भीष्म से मुस्कराती हुई बोली—

"गांगेय, आप बड़े धर्मज्ञ हैं । मेरी एक शंका है, उसे आप ही दूर कर सकते हैं । मैंने अपने मन में सौभ-देश के राजा शाल्व को पति मान लिया था । उसके बाद ही आप बलपूर्वक मुझे यहां ले आये थे । आप सब शास्त्र जानते हैं । मेरे मन की बात जानने के बाद अब मेरे बारे में जो उचित समझें, करें ।"

धर्मात्मा भीष्म को अम्बा की बात जंची । उन्होंने अम्बा को उसकी इच्छानुसार उचित प्रबन्ध के साथ शाल्व के पास रवाना कर दिया और अम्बा की दोनों बहनों—अम्बिका और अम्बालिका का विचित्रवीर्य के साथ विवाह कर दिया ।

अम्बा अपने मनोनीत वर सौभराज शाल्व के पास गई और सारा वृत्तान्त कह सुनाया । उसने कहा—

"राजन् ! मैं आपको अपना पति मान चुकी हूं । मेरे अनुरोध से भीष्म ने मुझे आपके यहां भेजा है । आप शास्त्रोक्त विधि से मुझे अपनी पत्नी स्वीकार कर लें ।"

पर शाल्व ने न माना । उसने अंबा से कहा— "कई राजकुमारों के सामने भीष्म ने मुझे युद्ध में पराजित किया और तुम्हें बलपूर्वक हर ले गये थे । मैं खूब अपमानित हो चुका हूं । इसके बाद मैं तुम्हें कैसे स्वीकार कर सकता हूं ? तुम्हारे लिए उचित यही है कि तुम भीष्म के पास ही चली जाओ और उनकी सलाह के मुताबिक काम करो ।" यह कह कर सौभराज शाल्व ने प्रणय-कामिनी अंबा को भीष्म के पास वापस लौटा दिया ।

विचारी अंबा हस्तिनापुर लौट आई और भीष्म को सब हाल कह सुनाया। उन्होंने विचित्रवीर्य से कहा--"वत्स, राजा शाल्व अंबा को स्वीकार नहीं करता। इससे विदित होता है कि उसकी इच्छा अंबा को पत्नी बनाने की न थी। अब इसके साथ तुम्हारे ब्याह कर लेने में कोई आपत्ति नहीं रही।" पर विचित्रवीर्य अंबा से ब्याह करने को राजी न हुए, आखिर क्षत्रिय जो ठहरे! बोले--"भाई साहब, इसका मन एक बार राजा शाल्व पर रीझ चुका है और यह उन्हें मन में पति मान चुकी है। क्षत्रिय होकर ऐसी स्त्री से मैं कैसे ब्याह करूं?"

विचारी अंबा पर 'माया मिली न राम' वाली कहावत सार्थक हो गई। अब उसने और कोई रास्ता न देख भीष्म ही को आ घेरा। बोली-- "मैं दोनों तरफ से गई। मेरा कोई सहारा न रहा। आप ही मुझे हर लाये। अतः यह आप ही का कर्त्तव्य है कि मेरे साथ ब्याह कर लें।"

भीष्म ने उस चंचल युवती को अपनी प्रतिज्ञा की याद दिलाई और कहा-- "अपनी प्रतिज्ञा को मैं नहीं तोड़ सकता।" उन्होंने कर्त्तव्य से प्रेरित होकर विचित्रवीर्य को दुबारा आग्रह किया कि अंबा से ब्याह कर लो, पर उन्होंने न माना। तो भीष्म ने अंबा को समझा कर कहा कि सौभराज शाल्व ही के पास जाओ और फिर प्रार्थना करो। लेकिन अंबा को दुबारा शाल्व के पास जाते लज्जा आई। उसने भीष्म से बहुत आग्रह किया कि उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करलें। कई वर्ष तक वह भीष्म के ही महल में रही भी; किन्तु भीष्म अपनी प्रतिज्ञा से टस-से-मस न हुए।

लाचार होकर अंबा फिर शाल्व के पास गई और उसने बहुत मिन्नतें कीं। लेकिन दूसरे की जीती हुई कन्या को स्वीकार करने से सौभराज ने साफ इन्कार कर दिया।

कमल-नयनी अम्बा इसी भांति छः साल तक हस्तिनापुर और सौभ-देश के बीच ठोकरें खाती फिरती रही। रो-रोकर विचारी के आंसू

तक सूख गये। उसके दग्ध हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गये। फिर भी उसको पूछने वाला कोई न रहा। भीष्म ही को उसने अपने इस सारे दुःख का कारण समझा। उनपर उसे बहुत क्रोध आया। प्रतिहिंसा की आग उसके मन में जलने लगी।

भीष्म से बदला लेने की इच्छा से उसने कई राजाओं को अपना दुखड़ा सुनाया और भीष्म से लड़कर उनका वध करने की प्रार्थना की। पर राजा लोग तो भीष्म के नाम से डरते थे। किसीमें इतना साहस न था कि भीष्म का युद्ध में सामना करे।

जब मनुष्यों से उसकी कामना पूरी न हो सकी तो अम्वा ने भगवान कार्त्तिकेय का ध्यान करके घोर तपस्या की। अन्त में उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर कार्त्तिकेय प्रकट हुए और सदा ताजा रहने वाले कमल के फूलों की एक माला अम्बा के हाथ में देते हुए कहा-- "जो इसे पहनेगा वह भीष्म का शत्रु होगा।"

माला पाकर अंबा बहुत खुश हुई। उसने सोचा कि अब मेरी इच्छा पूरी होगी। माला लेकर वह फिर कई राजाओं के द्वार पर गई और प्रार्थना की कि कोई भी भगवान कार्त्तिकेय का दिया हुआ यह हार पहन ले और भीष्म से युद्ध करे। पर किसी क्षत्रिय में इतनी हिम्मत न थी कि महान् पराक्रमी भीष्म से शत्रुता मोल ले।

अब अंबा कुछ निराश हुई। लेकिन फिर भी हिम्मत न हारी। उसने सुना था कि पांचाल के राजा द्रुपद बड़े प्रतापी वीर हैं। अम्बा उसके पास गई और भीष्म से लड़ने के लिए प्रार्थना की। जब उन्होंने भी न माना तो उसकी आशा पर एकदम पानी फिर गया। हताश हो द्रुपद के ही महल के द्वार पर माला टांग कर चली गई। उसके उद्विग्न हृदय को कहीं शान्ति न मिली। मानो व्यथा ही उसकी सहेली बन गई।

क्षत्रियों से एकदम निराश होकर अंबा ने तपस्वी ब्राह्मणों की शरण ली और उनसे कहा कि भीष्म ने कैसे उसके जीवन को सुख से रहित

और अपमानपूर्ण बना दिया है ।

तपस्वियों ने कहा---"बेटी, परशुराम के पास जाओ और तुम्हारी इच्छा वे अवश्य पूरी करेंगे ।" ऋषियों की सलाह पर अंबा क्षत्रिय-दमन परशुराम के पास गई ।

अंबा की करुण कहानी सुनकर परशुराम का हृदय पिघल गया । उन्होंने दयार्द्र स्वर में कहा--- "काशीराज-कन्ये, अब तुम मुझसे क्या चाहती हो ? यदि तुम्हारी यही इच्छा है कि मैं शाल्व से तुम्हारा ब्याह करा दूं तो मैं प्रस्तुत हूं । शाल्व मेरा प्रिय है । वह मेरा कहा अवश्य मानेगा ।"

अंबा ने कहा---"ब्राह्मण-वीर, मैं ब्याह करना नहीं चाहती । मेरी प्रार्थना केवल यह है कि आप भीष्म से युद्ध करें और भीष्म ही के वध की मैं आपसे भीख मांगती हूं ।"

परशुराम को अंबा की प्रार्थना पसंद आई । क्षत्रियों के शत्रु जो ठहरे ! बड़े उत्साह के साथ भीष्म के पास गये और उन्हें युद्ध के लिए ललकारा । दोनों कुशल योद्धा थे और धनुष-विद्या के मर्मज्ञ भी । दोनों ही जितेंद्रिय थे--- ब्रह्मचारी थे । समान योद्धाओं की टक्कर थी । कई दिन तक युद्ध होता रहा, फिर भी हार-जीत का निश्चय न हो सका । अन्त में परशुराम ने हार मान ली और उन्होंने अंबा से कहा- "जो कुछ मेरे बस में था कर चुका । अब तुम्हारे लिए यही उचित है कि भीष्म ही की शरण लो ।"

●

अंबा के क्षोभ और शोक की सीमा न रही । निराश होकर वह हिमालय पर चली गई और कैलासपति परमेश्वर को लक्ष्य करके कठोर तपस्या आरंभ की । कैलासनाथ उससे प्रसन्न हुए और उसे दर्शन देकर बोले--- "पुत्री, अगले जन्म में तुम्हारे हाथों भीष्म की मृत्यु होगी ।" यह कहकर कैलासपति अन्तर्द्धान हो गये ।

अंबा भीष्म से जितनी जल्दी हो सके बदला लेने के लिए उत्कंठित

हो उठी। स्वाभाविक मृत्यु तक ठहरना भी उसको दूभर मालूम हुआ। उसने एक भारी चिता जलाई। क्रोध के कारण उसकी आंखें अग्नि ही के समान प्रज्वलित हो उठीं। जब उसने धधकती हुई आग में कूदकर प्राणों की आहुति दी तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो अग्नि से अग्नि भेंट रही हो।

महादेव के वरदान से अंबा दूसरे जन्म में राजा द्रुपद की कन्या हुई। पिछले जन्म की बातें उसे भली भांति याद थीं। जब वह जरा बड़ी हुई तो खेल-खेल में भवन के द्वार पर टंगी हुई वह कमल के फूलों की माला, जो अंबा को भगवान कार्त्तिकेय से प्राप्त हुई थी, उठाकर अपने गले में डाल ली। कन्या की इस बात को देखकर राजा द्रुपद घबरा उठे। सोचा––इस पगली कन्या के कारण भीष्म का बैर क्यों मोल लूं? यह सोचकर राजा द्रुपद ने उसे अपने घर से निकाल दिया।

अंबा ऐसी बातों से कब विचलित होने वाली थी? उसने वन में जाकर फिर तपस्या की और तपोबल से स्त्री-रूप छोड़कर पुरुष बन गई। अपना नाम उसने शिखण्डी रख लिया।

जब कौरवों तथा पाण्डवों के बीच कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध हुआ तो शिखण्डी अर्जुन का सारथी बना। भीष्म के विरुद्ध लड़ते समय शिखण्डी ने ही अर्जुन का रथ चलाया था। शिखण्डी रथ के आगे बैठा था और अर्जुन ठीक उसके पीछे। ज्ञानी भीष्म को यह बात मालूम थी कि अंबा ने ही शिखण्डी का रूप धारण कर लिया है। इसलिए किसी भी हालत में उसपर बाण चलाना उन्होंने अपनी वीरोचित प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझा। शिखण्डी को आगे करके अर्जुन ने भीष्म पितामह पर धावा किया और अन्त में उनपर विजय पा ही ली। जब भीष्म आहत होकर पृथ्वी पर गिरे तब जाकर अंबा का क्रोध शांत हुआ।

: ५ :

कच और देवयानी

एक बार देवताओं और असुरों के बीच इस बात पर लड़ाई छिड़ी कि तीनों लोकों पर किसका आधिपत्य हो। देवताओं के गुरु थे बृहस्पति और असुरों के शुक्राचार्य। वेद-मन्त्रों पर बृहस्पति का पूर्ण अधिकार था। शुक्राचार्य का ज्ञान सागर जैसा अथाह था। इन्हीं दो ब्राह्मणों के बुद्धि-बल से देवासुर-संग्राम होता रहा।

शुक्राचार्य को मृत-संजीवनी विद्या का ज्ञान था, जिसके सहारे युद्ध में जितने भी असुर मारे जाते उनको फिर से जिला देते थे। इस तरह युद्ध में जितने असुर खेत रहते वे शुक्राचार्य की संजीवनी विद्या से जी उठते और फिर मोर्चे पर आ डटते। उधर देवताओं के पास यह विद्या न थी। देव-गुरु बृहस्पति संजीवनी विद्या नहीं जानते थे। इस कारण देवता सोच में पड़ गये। उन्होंने आपस में इकट्ठे होकर मंत्रणा की और एक युक्ति खोज निकाली। वे सब देव-गुरु बृहस्पति के पुत्र कच के पास गये और उनसे बोले—"गुरुपुत्र! तुम हमारा एक काम बना दो तो बड़ा उपकार हो। तुम अभी जवान हो और तुम्हारा सौन्दर्य मन को लुभाने वाला है। तुम हमारा काम आसानी से कर सकोगे। काम यह है कि तुम शुक्राचार्य के पास ब्रह्मचारी बनकर जाओ और उनकी खूब सेवा-टहल द्वारा उनके विश्वास-पात्र बनकर उनकी सुन्दरी कन्या का प्रेम प्राप्त करो और फिर शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या सीख लो।"

कच ने देवताओं की प्रार्थना मान ली।

शुक्राचार्य असुरों के राजा वृषपर्वा की राजधानी में रहते थे। कच वहां पहुंचकर असुर-गुरु के घर गया और आचार्य को दण्डवत करके

बोला--"आचार्य, मैं अंगिरा मुनि का पोता और बृहस्पति का पुत्र हूं। मेरा नाम कच है। आप मुझे अपना शिष्य स्वीकार करने की कृपा करें। मैं आपके अधीन पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा।"

उन दिनों ब्राह्मणों में यह नियम था कि कोई सुयोग्य शिष्य किसी बुद्धिमान आचार्य से शिष्य बनने की प्रार्थना करे तो उसकी प्रार्थना अस्वीकार न की जाय। शर्त केवल यह थी कि शिष्य ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करे।

इस कारण विपक्ष का होने पर भी शुक्राचार्य ने कच की प्रार्थना मान ली। उन्होंने कहा-- "बृहस्पति-पुत्र, तुम अच्छे कुल के हो। तुम्हें मैं अपना शिष्य स्वीकार करता हूं। इससे बृहस्पति भी गौरवान्वित होंगे।"

कच ने ब्रह्मचर्य-व्रत की दीक्षा ली और शुक्राचार्य के यहां रहने लगा। वह बड़ी तत्परता के साथ शुक्राचार्य और उनकी कन्या देवयानी की सेवा-शुश्रूषा करने लगा। शुक्राचार्य अपनी पुत्री को बहुत चाहते थे। कच देवयानी को प्रसन्न रखने का हमेशा प्रयत्न करता। उसकी इच्छाओं का बराबर ध्यान रखता। इसका असर देवयानी पर भी हुआ। वह कच के प्रति आसक्त होने लगी, पर कच अपने ब्रह्मचर्य-व्रत पर दृढ़ रहा। इस तरह कई वर्ष बीत गए।

असुरों को जब पता चला कि देव-गुरु बृहस्पति का पुत्र कच शुक्राचार्य का शिष्य बना हुआ है तो उनको भय हुआ कि कहीं शुक्राचार्य से वह संजीवनी-विद्या न सीख ले। अतः उन्होंने कच को मार डालने का निश्चय किया।

एक दिन कच जंगल में आचार्य की गायें चरा रहा था कि असुर उस पर टूट पड़े और उसके टुकड़े-टुकड़े करके कुत्तों को खिला दिया। सांझ हुई तो गायें अकेली घर लौटीं।

जब देवयानी ने देखा कि गायों के साथ कच नहीं आया है तो उसके मन में शंका पैदा हो गई। उसका दिल धड़कने लगा। वह पिता के पास दौड़ी गई और बोली--"पिताजी, सूरज डूब गया। गायें भी

: ५ :

कच और देवयानी

एक बार देवताओं और असुरों के बीच इस बात पर लड़ाई छिड़ी कि तीनों लोकों पर किसका आधिपत्य हो। देवताओं के गुरु थे बृहस्पति और असुरों के शुक्राचार्य। वेद-मन्त्रों पर बृहस्पति का पूर्ण अधिकार था। शुक्राचार्य का ज्ञान सागर जैसा अथाह था। इन्हीं दो ब्राह्मणों के बुद्धि-बल से देवासुर-संग्राम होता रहा।

शुक्राचार्य को मृत-संजीवनी विद्या का ज्ञान था, जिसके सहारे युद्ध में जितने भी असुर मारे जाते उनको फिर से जिला देते थे। इस तरह युद्ध में जितने असुर खेत रहते वे शुक्राचार्य की संजीवनी विद्या से जी उठते और फिर मोर्चे पर आ डटते। उधर देवताओं के पास यह विद्या न थी। देव-गुरु बृहस्पति संजीवनी विद्या नहीं जानते थे। इस कारण देवता सोच में पड़ गये। उन्होंने आपस में इकट्ठे होकर मंत्रणा की और एक युक्ति खोज निकाली। वे सब देव-गुरु बृहस्पति के पुत्र कच के पास गये और उनसे बोले— "गुरुपुत्र ! तुम हमारा एक काम बना दो तो बड़ा उपकार हो। तुम अभी जवान हो और तुम्हारा सौन्दर्य मन को लुभाने वाला है। तुम हमारा काम आसानी से कर सकोगे। काम यह है कि तुम शुक्राचार्य के पास ब्रह्मचारी बनकर जाओ और उनकी खूब सेवा-टहल द्वारा उनके विश्वास-पात्र बनकर उनकी सुन्दरी कन्या का प्रेम प्राप्त करो और फिर शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या सीख लो।"

कच ने देवताओं की प्रार्थना मान ली।

शुक्राचार्य असुरों के राजा वृषपर्वा की राजधानी में रहते थे। कच वहां पहुंचकर असुर-गुरु के घर गया और आचार्य को दण्डवत करके

बोला--"आचार्य, मैं अंगिरा मुनि का पोता और बृहस्पति का पुत्र हूं। मेरा नाम कच है। आप मुझे अपना शिष्य स्वीकार करने की कृपा करें। मैं आपके अधीन पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा।"

उन दिनों ब्राह्मणों में यह नियम था कि कोई सुयोग्य शिष्य किसी बुद्धिमान आचार्य से शिष्य बनने की प्रार्थना करे तो उसकी प्रार्थना अस्वीकार न की जाय। शर्त केवल यह थी कि शिष्य ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करे।

इस कारण विपक्ष का होने पर भी शुक्राचार्य ने कच की प्रार्थना मान ली। उन्होंने कहा-- "बृहस्पति-पुत्र, तुम अच्छे कुल के हो। तुम्हें मैं अपना शिष्य स्वीकार करता हूं। इससे बृहस्पति भी गौरवान्वित होंगे।"

कच ने ब्रह्मचर्य-व्रत की दीक्षा ली और शुक्राचार्य के यहां रहने लगा। वह बड़ी तत्परता के साथ शुक्राचार्य और उनकी कन्या देवयानी की सेवा-शुश्रूषा करने लगा। शुक्राचार्य अपनी पुत्री को बहुत चाहते थे। कच देवयानी को प्रसन्न रखने का हमेशा प्रयत्न करता। उसकी इच्छाओं का बराबर ध्यान रखता। इसका असर देवयानी पर भी हुआ। वह कच के प्रति आसक्त होने लगी, पर कच अपने ब्रह्मचर्य-व्रत पर दृढ़ रहा। इस तरह कई वर्ष बीत गए।

असुरों को जब पता चला कि देव-गुरु बृहस्पति का पुत्र कच शुक्राचार्य का शिष्य बना हुआ है तो उनको भय हुआ कि कहीं शुक्राचार्य से वह संजीवनी-विद्या न सीख ले। अतः उन्होंने कच को मार डालने का निश्चय किया।

एक दिन कच जंगल में आचार्य की गायें चरा रहा था कि असुर उस पर टूट पड़े और उसके टुकड़े-टुकड़े करके कुत्तों को खिला दिया। सांझ हुई तो गायें अकेली घर लौटीं।

जब देवयानी ने देखा कि गायों के साथ कच नहीं आया है तो उसके मन में शंका पैदा हो गई। उसका दिल धड़कने लगा। वह पिता के पास दौड़ी गई और बोली--"पिताजी, सूरज डूब गया। गायें भी

अकेली वापस आ गईं। आपका अग्निहोत्र भी समाप्त हो गया। फिर भी न जाने क्यों कच अभी तक नहीं लौटा। मुझे शक है कि जरूर उस पर कोई-न-कोई विपत्ति आ गई होगी। उसके बिना मैं कैसे ज़िऊंगी ?" कहते-कहते देवयानी की आंखें भर आईं।

अपनी प्यारी बेटी की व्यथा शुक्राचार्य से न देखी गई। उन्होंने संजीवनी-विद्या का प्रयोग किया और मृत कच का नाम पुकार कर बोले—"आओ, कच! मेरे प्रिय शिष्य, आओ!" संजीवन-मन्त्र की शक्ति ऐसी थी कि शुक्राचार्य के पुकारते ही मरे हुए कच के शरीर के टुकड़े कुत्तों के पेट फाड़कर निकल आये और जुड़ गये। कच फिर सजीव हो उठा और गुरु के सामने हाथ जोड़कर आ खड़ा हुआ। उसके मुख पर आनन्द की झलक थी।

देवयानी ने पूछा—"क्यों कच! क्या हुआ था? किसलिए इतनी देर हुई?"

कच ने सरल भाव से उत्तर दिया—"जंगल में गायें चराने के बाद लकड़ी का गट्ठा सिर पर रखे आ रहा था कि जरा थकावट मालूम हुई। एक बरगद के पेड़ की छाया में तनिक देर विश्राम करने बैठा। गायें भी पेड़ की ठंडी छांह में खड़ी हो गईं। इतने में कुछ असुरों ने आकर पूछा—"तुम कौन हो?" मैंने उत्तर दिया—"मैं बृहस्पति का पुत्र कच हूं।" उन्होंने तुरन्त मुझपर तलवार का वार किया और मुझे मार डाला। न जाने कैसे फिर जीवित हो गया हूं! बस इतनी ही बात है।"

कुछ दिन और बीत गये। एक बार कच देवयानी के लिए फूल लाने जंगल आया। असुरों ने वहीं उसे घेर लिया और खत्म कर दिया और उसके टुकड़ों को पीसकर समुद्र में बहा दिया।

इधर देवयानी कच की बाट जोह रही थी। जब शाम होने पर भी वह न लौटा तो घबराकर उसने अपने पिता से कहा। शुक्राचार्य ने पहले की भांति संजीवन-मन्त्र का प्रयोग किया। कच समुद्र के पानी से जीवित निकल आया और सारी बातें देवयानी को कह सुनाईं।

16831

असुर इस प्रकार इस ब्रह्मचारी के पीछे हाथ धोकर पड़ ही गये। उन्होंने तीसरी बार भी कच की हत्या कर डाली, उसके मृत शरीर को जला कर भस्म कर दिया और उसकी राख मदिरा में घोलकर स्वयं शुक्राचार्य को पिला दी। शुक्राचार्य को मदिरा का बड़ा व्यसन था। असुरों की दी हुई सुरा बिना देखे-भाले पी गये। कच के शरीर की राख उनके पेट में पहुंच गई।

सन्ध्या हुई, गायें घर लौट आईं; पर कच न आया। देवयानी फिर पिता के पास आंखों में आंसू भर कर बोली--"पिताजी! कच को पापियों ने फिर मार डाला मालूम होता है। उसके बिना मैं पलभर भी जी नहीं सकूंगी।"

शुक्राचार्य बेटी को समझाते हुए बोले--"मालूम होता है, असुर कच के प्राण लेने पर तुले हुए हैं। चाहे मैं कितनी ही बार उसे क्यों न जिलाऊं, आखिर वे उसे मारकर ही छोड़ेंगे। किसी की मृत्यु पर शोक करना तुम जैसी समझदार लड़की को शोभा नहीं देता। तुम मेरी पुत्री हो। तुम्हें किस बात की कमी है! सारा संसार तुम्हारे आगे सर झुकाता है। फिर तुम्हें सोच किस बात का है? व्यर्थ शोक न करो।"

शुक्राचार्य ने हजार समझाया, किन्तु देवयानी न मानी। उस तेजस्वी ब्रह्मचारी पर वह जान देती थी। उसने कहा--'पिताजी, अंगिरा का पोता और बृहस्पति का बेटा कच कोई ऐसा-वैसा युवक नहीं है। वह अटल ब्रह्मचारी है। तपस्या ही उसका धन है। वह यत्नशील था और कार्य-कुशल भी। ऐसे युवक के मारे जाने पर मैं उसके बिना कैसे जी सकती हूं? मैं भी उसी का अनुकरण करूंगी।" यह कह कर शुक्र-कन्या ने अनशन शुरू किया--खाना-पीना छोड़ दिया।

असुरों पर शुक्राचार्य को बड़ा क्रोध आया। वे इस निश्चय पर पहुंचे कि असुरों का अब भला नहीं जो ऐसे ब्राह्मण को मारने पर तुले हुए हैं। यह निश्चय कर उन्होंने कच को जिलाने के लिए संजीवन-मन्त्र पढ़ा और पुकार कर बोले--"वत्स, आ जाओ।"

उनके पुकारते ही कच जीवित हो उठा और आचार्य के पेट के अन्दर से बोला--"भगवन्, मुझे अनुगृहीत करें ।"

अपने पेट के भीतर से कच को बोलते हुए सुनकर शुक्राचार्य बड़े अचरज में पड़ गये और पूछा--"हे ब्रह्मचारी ! मेरे पेट के अन्दर तुम कैसे पहुंचे ? क्या यह असुरों की करतूत है ? अभी बताओ। मैं इन पापियों का सत्यानाश कर दूंगा और देवताओं के पक्ष में चला जाऊंगा। जल्दी बताओ ।" क्रोध के मारे शुक्राचार्य के ओंठ फड़कने लगे ।

कच ने शुक्राचार्य के पेट के अन्दर से ही सारी बातें बता दीं ।

महानुभाव, तपोनिधि तथा असीम महिमा वाले शुक्राचार्य को जब यह ज्ञात हुआ कि मदिरा-पान के ही कारण उन्हें यह धोखा खाना पड़ा तो अपने ही ऊपर उनको बड़ा क्रोध आया। तत्काल मनुष्य मात्र की भलाई के लिए यह अनुभव-वाणी उनके मुंह से निकल पड़ी--"जो मन्दबुद्धि अपनी नासमझी के कारण मदिरा पीता है धर्म उसी क्षण उसका साथ छोड़ देता है । वह सभी की निन्दा और अवज्ञा का पात्र बन जाता है। यह मेरा निश्चित मत है। आज से लोग इस बात को शास्त्र मान लें और इसी पर चलें ।"

इसके बाद शुक्राचार्य ने शांत होकर अपनी पुत्री से पूछा--"बेटी, यदि मैं कच को जिलाता हूं तो मेरी मृत्यु हो जाती है; क्योंकि उसे मेरा पेट चीरकर ही निकलना पड़ेगा । बताओ, तुम क्या चाहती हो?"

यह सुनकर देवयानी रो पड़ी। आंसू बहाती हुई बोली--"हाय, अब मैं क्या करूं ? कच के बिछोह का दुःख मुझे आग की तरह जला देगा और फिर आपकी मृत्यु के बाद मैं जीवित रह ही न सकूंगी। हाय, मैं तो दोनों तरफ से मरी ।"

शुक्राचार्य कुछ देर सोचते रहे । उन्होंने दिव्य दृष्टि से जान लिया कि क्या बात है। वह कच से बोले--"बृहस्पति-पुत्र कच, अब तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी । देवयानी के लिए तुम्हें जिलाना ही पड़ेगा । साथ ही मुझे भी जीवित रहना होगा । इसके लिए केवल एक ही उपाय है

और वह यह कि तुम्हें संजीवनी विद्या सिखा दूंगा। तुम मेरे पेट के अन्दर ही वह सीख लो। फिर मेरा पेट फाड़कर निकल आओ। उसके बाद उसी विद्या से तुम मुझे जिला देना।"

कच के मन की मुराद पूरी हो गई। उसने शुक्राचार्य के कहे अनुसार संजीवनी विद्या सीख ली और पूर्णिमा के चन्द्र की भांति आचार्य का पेट फाड़कर निकल आया। मूर्त्तिमान बुद्धि जैसे ज्ञानी शुक्राचार्य धड़ाम से मृत होकर गिर पड़े। थोड़ी ही देर में कच ने मन्त्र पढ़कर उनको जिला दिया। देवयानी के आनन्द की सीमा न रही।

शुक्राचार्य जी उठे तो कच ने उनके आगे दण्डवत् की और अश्रुधारा से उनके पांव भिगोते हुए बोला—"अविद्वान् को विद्या पढ़ाने वाले आचार्य माता और पिता के समान हैं। आपने मुझे एक नई विद्या प्रदान की। इसके अलावा अब आपकी कोख ही से मानो मेरा जन्म हुआ, सो आप सचमुच मेरे लिए मां के समान हैं।"

इसके बाद कई वर्ष तक कच शुक्राचार्य के पास ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता रहा। व्रत समाप्त होने पर गुरु से आज्ञा लेकर देवलोक लौटने को प्रस्तुत हुआ तो देवयानी ने उससे कहा—"अंगिरा मुनि के पौत्र कच, तुम शीलवान हो, ऊंचे कुल के हो। इन्द्रिय-दमन करके तुमने तपस्या की और शिक्षा प्राप्त की। इस कारण तुम्हारा मुखमण्डल सूर्य की भांति तेजस्वी है। जब तुम ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर रहे थे तब मैंने तुमसे स्नेहपूर्ण व्यवहार किया था, अब तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम भी वैसा ही व्यवहार मुझसे करो। तुम्हारे पिता बृहस्पति मेरे लिए पूज्य हैं। सो तुम अब मुझसे यथाविधि ब्याह कर लो।" यह कहकर शुक्र-कन्या सलज्ज खड़ी रही।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि शुक्र-कन्या ने ऐसी स्वतन्त्रता से बातें कीं। वह जमाना ही ऐसा था जब शिक्षित ब्राह्मण-कन्यायें निर्भय तथा स्वतन्त्र होती थीं। मन की बात कहते झिझकती न थीं। इस बात की कितनी ही मिसालें हमारे पुराने ग्रंथों में पाई जाती हैं।

देवयानी की बात सुनकर कच ने कहा—"अकलंकिनी, एक तो तुम मेरे आचार्य की बेटी हो सो मेरा धर्म है कि मैं तुम्हें पूज्य समझूं। दूसरे मेरा शुक्राचार्य के पेट से मानो पुनर्जन्म हुआ, इससे मैं तुम्हारा भाई बन गया हूं। तुम मेरी बहिन हो। अतः तुम्हारा यह अनुरोध न्यायोचित नहीं।"

किंतु देवयानी ने हठ नहीं छोड़ा। उसने कहा—"तुम तो बृहस्पति के बेटे हो, मेरे पिता के नहीं। तिस पर मैं शुरू से ही तुमसे प्रेम करती आई हूं। उसी प्रेम और स्नेह से प्रेरित होकर मैंने पिता से तुम्हें तीन बार जिलाया। मेरा विशुद्ध प्रेम तुम्हें स्वीकार करना ही होगा।"

देवयानी ने बहुत अनुनय-विनय की। फिर भी कच ने उसकी बात न मानी। तब मारे क्रोध के देवयानी की भौंहें टेढ़ी हो गईं। विशाल काली-काली आंखें लाल बन गईं।

यह देखकर कच ने बड़े नम्र भाव से कहा—"शुक्र-कन्ये! तुम्हें मैं अपने गुरु से भी अधिक समझता हूं। तुम मेरी पूज्य हो। नाराज न होओ। मुझ पर दया करो। मुझे अनुचित कार्य के लिए प्रेरित न करो। मैं तुम्हारे भाई के समान हूं। मुझे स्वस्ति कहकर विदा करो। आचार्य शुक्रदेव की सेवा-टहल अच्छी तरह और नियमपूर्वक करती रहना। स्वस्ति।" यह कहकर कच वेग से इन्द्रलोक चला गया।

शुक्राचार्य ने किसी तरह अपनी बेटी को समझा-बुझाकर शांत किया।

: ६ :

देवयानी का विवाह

असुर राजा वृषपर्वा की बेटी शर्मिष्ठा और शुक्राचार्य की बेटी देवयानी एक दिन अपनी सखियों के संग बन में खेलने गईं। खेल-कूद के बाद कन्यायें तालाब में स्नान करने लगीं। इतने में हवा चली और

सबकी साड़ियां उलट-पुलट हो गईं। कन्यायें नहाकर बाहर निकल आईं और जो भी कपड़ा हाथ में आया लेकर पहनने लगीं। इस गड़बड़ी में वृषपर्वा की बेटी शर्मिष्ठा ने धोखे से देवयानी की साड़ी पहन ली। देवयानी को विनोद सूझा। उसने शर्मिष्ठा से कहा—"अरी असुर की लड़की! क्या तुम्हें इतना भी पता नहीं कि गुरु-कन्या का कपड़ा शिष्य की लड़की को पहनना नहीं चाहिए? सचमुच तुम बड़ी नासमझ हो!"

देवयानी को अपने ऊंचे कुल का घमंड तो जरूर था, लेकिन यह बात मजाक में ही उसने कही थी। राजकुमारी शर्मिष्ठा को इससे बड़ी चोट लगी। वह क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गई और बोली—"अरी भिखारिन! क्या भूल गई कि मेरे पिताजी के आगे तेरे गरीब बाप हर दिन सिर नवाते हैं और हाथ फैलाते हैं? भिखारी की लड़की होकर तुझे यह घमण्ड! अरी ब्राह्मणी! याद रख कि मैं उस राजा की कन्या हूं जिसके लोग गुण गाते हैं और तू उस दीन ब्राह्मण की बेटी है जो मेरे पिता का दिया खाता है। इस फेर में न रहना कि हम ऊंचे कुल के हैं। मैं उस कुल की हूं जो देना जानता है, लेना नहीं। और तू उस कुल की है जो भीख मांगकर ही निर्वाह करता है। एक दीन ब्राह्मणी की यह मजाल कि मुझे तमीज सिखाये; धिक्कार है तुझे और तेरे कुल को।"

यों असुर-राजकन्या बरस पड़ी। उसके तीखे शब्द-बाण देवयानी से न सहे गये। वह भी क्रुद्ध हो उठी। राजकन्या और गुरुकन्या में देर तक तू-तू मैं-मैं होती रही। आखिर हाथापाई की नौबत आ पहुंची। ब्राह्मणी की कन्या भला असुर-राज की बेटी के आगे कहां ठहर सकती थी? शर्मिष्ठा ने देवयानी के जोर का थप्पड़ लगाया और उसे एक अन्धे कुएं में धकेल दिया। दैवयोग से कुआं सूखा था। उसमें पानी नहीं था। असुर-कन्याओं ने देवयानी को मरी समझा और जल्दी से महल लौट गईं।

देवयानी कुएं में गिरी तो उसे बड़ी चोट आई। वैसे भी थकी हुई

थी। कुआं काफी गहरा था। बिचारी ऊपर चढ़ न सकी और अन्दर पड़ी-पड़ी तड़पती रही।

इतने में भरतवंश के राजा ययाति शिकार खेलते हुए संयोगवश उधर से आ निकले। उन्हें प्यास लगी थी और वे पानी खोजते-खोजते उस कुएं के पास पहुंचे। कुएं के अंदर झांका तो कुछ प्रकाश-सा दीखा। वे एकदम आश्चर्य-चकित हो गये। अंदर उन्होंने बजाय पानी के एक तरुणी को खड़े देखा। उसका कोमल शरीर अंगारों की भांति प्रकाशमान था और उससे सौन्दर्य की आभा फूट रही थी।

"तरुणी! तुम कौन हो? तुमने कुण्डल पहने हैं। तुम्हारे नाखून लाल हैं। तुम किसकी बेटी हो? और किस कुल की हो? कुएं में कैसे गिर पड़ीं?" राजा ने आश्चर्य और अनुकंपा के साथ पूछा।

देवयानी ने दाहिना हाथ बढ़ाते हुए राजा से कहा-- "मैं असुर-गुरु शुक्राचार्य की कन्या हूं। पिताजी को यह मालूम नहीं है कि कुएं में पड़ी हूं। कृपाकर मुझे बाहर निकाल दीजियेगा।" राजा ने उसका दाहिना हाथ पकड़ कर उसे कुएं से बाहर निकाल लिया।

शर्मिष्ठा से अपमानित होने पर देवयानी ने मन में निश्चय कर लिया था कि अब वृषपर्वा के राज्य में अपने पिताजी के पास वापस नहीं जाऊंगी। वहां जाने से बेहतर है कि कहीं वन में चली जाऊं। उसने ययाति से अनुरोध-पूर्ण स्वर में कहा-- "मालूम नहीं आप कौन हैं? पर ऐसा लगता है कि आप बड़े शक्तिशाली, यशस्वी और चरित्रवान् हैं। आप कोई भी हों, मेरा दाहिना हाथ ग्रहण कर चुके हैं। अतः आपको मैंने अपना पति मान लिया है। आप मुझे स्वीकार करें।"

ययाति ने उत्तर दिया-- "हे तरुणी! तुम ब्राह्मणी हो, शुक्राचार्य की बेटी, जो संसार भर के आचार्य होने योग्य हैं। मैं ठहरा साधारण क्षत्रिय। मैं तुम से ब्याह कैसे करूं? इसलिए, देवी, मुझे आज्ञा दो और तुम भी घर चली जाओ।"

यह कहकर राजा ययाति देवयानी से विदा होकर चल दिये।

उस जमाने में कोई ऊंचे कुल का पुरुष निचले कुल की कन्या से विवाह कर लेता तो उसे अनुलोम विवाह कहते थे। निचले कुल के पुरुष के साथ ऊंचे कुल की कन्या का विवाह प्रतिलोम कहा जाता था। प्रतिलोम विवाह मना किया गया था ; क्योंकि स्त्री के कुल को कलंक न लगने देना उन दिनों जरूरी समझा जाता था। यही कारण था कि ययाति ने देवयानी की प्रार्थना अस्वीकार कर दी।

ययाति के चले जाने पर देवयानी वहीं कुएं के पास सांप की फुंफकार की भांति आहें भरती और सिसकियां लेती हुई खड़ी रही। शर्मिष्ठा की बातों-रूपी वाणों ने उसके हृदय को छेद डाला था। वह घर नहीं जाना चाहती थी।

शुक्राचार्य अपनी बेटी को प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। जब देवयानी देर तक वापस न आई तो वे घबराये। उन्होंने फौरन अपनी एक नौकरानी को लड़की की तलाश में भेज दिया। नौकरानी अपनी कुछ सहेलियों को साथ लिये उस जंगल में खोजने चली गई, जहां देवयानी अपनी सखियों के साथ खेलने गई थी। आखिर एक पेड़ के नीचे देवयानी को खड़े देखा। उसकी आंखें बहुत रोने के कारण एकदम लाल हो गई थीं। मुख मलिन था और क्रोध के कारण ओठ कांप रहे थे।

देवयानी का यह हाल देखकर सखियां घबरा गईं और बड़ी आतुर होकर उन्होंने पूछा कि क्या बात हुई है ?

देवयानी के मुख से मानो चिनगारियां निकलीं ! उसने कहा—"पिताजी से जाकर कहना कि उनकी बेटी देवयानी वृषपर्वा के राज्य के अन्दर कदम न रक्खेगी।"

देवयानी का हाल जानकर शुक्राचार्य बड़े दुःखी हुए। वे बेटी के पास दौड़े आये और उसे गले लगा लिया। दोनों खूब रोये। थोड़ी देर बाद आचार्य शुक्र शान्त हुए और अपनी बेटी को प्यार से दुलाराया, फिर मृदुल स्वर में समझाते हुए बोले— "बेटा, लोग अपने ही किये का फल

भोगते हैं। बुराई का बुरा और भलाई का नतीजा भला हुआ ही करता है। किसी दूसरे की बुराई से हमें कुछ हानि नहीं पहुंच सकती। सो तुम किसी पर नाराज न होना। इसे अपने ही दोष का परिणाम समझना।"

अपमानित देवयानी को ऐसी बातों से शांति नहीं मिली। वह बोली--"पिताजी, मुझमें दोष हो सकते हैं; लेकिन चाहे दोष हों या गुण, उनकी जिम्मेदारी सिर्फ मुझ पर ही है। दूसरों का उनसे कोई मतलब नहीं। तब वृषपर्वा की लड़की ने क्यों कहा कि तेरा बाप राजाओं की चापलूसी करता है, भिखारी ह। पिताजी, क्या यह बात सच है? आप चापलूसी करने वाले हैं? वृषपर्वा के आगे सिर नवाते हैं? भिखारी की तरह हाथ फैलाते हैं? एक मूर्ख असुर की लड़की ने मेरा इतना अपमान किया था! फिर भी मैं चुप रही। प्रतिवाद नहीं किया। ऊपर से उस दानवी ने मुझे मारा-पीटा और कुएं में धकेल कर चली गई। फिर भी आप कहते हैं कि मैं घर वापस लौट आऊं। पिताजी, आप ही बताइए कि इतना अपमानित होने के बाद शर्मिष्ठा के पिता के राज्य में मैं कैसे रहूं?" यह कहते-कहते देवयानी फूट-फूट कर रोने लगी।

शुक्राचार्य देवयानी को समझाते हुए बोले-- "बेटी, वृषपर्वा की कन्या ने असत्य कहा। तुम किसी चापलूस की बेटी नहीं हो, न ही तुम्हारा पिता भीख मांग कर गुजर करता है; बल्कि तुम उस पिता की बेटी हो जिसका सारा संसार गुण गाता है। इस बात को देवेन्द्र जानता है। भरतवंश का राजा ययाति जानता है और खुद वृषपर्वा जानता है। अपने मुंह अपनी प्रशंसा करते हुए किसी भी समझदार और योग्य व्यक्ति को बुरा लगता है। अतः मैं अधिक कुछ नहीं कहूंगा। तुम मेरे कुल के यशोरूपी प्रकाश को बढ़ाने वाली नारी-मणि हो। तुम शांत होओ, घर चलो।"

इसी प्रसंग में फिर देवयानी को समझाते हुए वे बोले--"बेटी, जिसने दूसरों की कड़ुवी बातें सह लीं उसने मानो सारे संसार पर विजय पा ली।

मनुष्य के मन में जो क्रोध है वह अड़ियल घोड़े के समान है। घोड़े की बागडोर हाथ में पकड़ने भर से कोई घुड़सवार नहीं हो जाता। चतुर घुड़सवार वह है जो क्रोध रूपी घोड़े पर काबू पा सके। सांप जैसे कैंचुली को निकाल देता है वैसे ही जो क्रोध को मन से निकाल सके वही पुरुष कहला सकता है। दूसरों के हजार निन्दा करने पर भी जो दुःखी नहीं होता, वही अपने यत्न में सफल हो सकेगा। जो हर महीने यज्ञ करते हुए सौ बरस तक दीक्षित रहे, उससे भी बढ़ कर श्रेय उसी को है जिसने क्रोध पर विजय पा ली हो। जो बात-बात पर बिगड़ता है उसे क्या नौकर, क्या मित्र, क्या पत्नी, क्या भाई सब छोड़ कर चले जाते हैं। धर्म और सचाई तो एकदम ही उसका साथ छोड़ देती है। समझदार लोग बालकों की बातों पर ध्यान नहीं दिया करते।"

यह उपदेश सुनकर देवयानी ने नम्रभाव से कहा—"पिताजी, मैं यद्यपि उम्र में छोटी ही हूं, फिर भी धर्म का कुछ मर्म जानती हूं। क्षमा बड़ा धर्म है, यह मुझे मालूम है। फिर भी जिनमें शील नहीं, जो कुल की मर्यादा नहीं जानते उनके पास रहना कहां का धर्म है? समझदार लोग ऐसे लोगों के साथ कभी नहीं रहते जो कुलीनों की निन्दा करते हैं, उच्च कुल की इज्जत करना नहीं जानते। जिनमें शील नहीं, जिनका व्यवहार सज्जनोचित नहीं, वे चाहे संसार भर के धनी हो, फिर भी चाण्डाल ही समझे जाते हैं। सज्जनों को ऐसे लोगों से दूर ही रहना चाहिए। तलवार के घाव पर मलहम लग सकता है; किन्तु शब्दों का घाव जीवन भर नहीं भर सकता। वृषपर्वा की कन्या की बातों से मेरे सारे शरीर में आग-सी लग गई है। जैसे पीपल की लकड़ी रगड़ खाकर जल उठती है वैसे ही मेरा मन जल रहा है। अब मैं शान्त कैसे होऊं?"

देवयानी की ये बातें सुनकर शुक्राचार्य के माथे पर बल पड़ गये। वे वहां से सीधे असुर-राज वृषपर्वा की सभा में गये। उनका मुंह क्रोध से लाल हो रहा था। वृषपर्वा को सिंहासन पर बैठे देखकर बोले—"राजन्! पाप का फल तत्काल ही चाहे न मिले, पर मिलता जरूर है और

वह पापी के वंश की जड़ें तक काट देता है। और तुम पाप के रास्ते चल पड़े हो। बृहस्पति का पुत्र कच, ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता हुआ, प्रेम से मेरी सेवा-टहल करके शिक्षा पा रहा था। उस निर्दोष ब्राह्मण को तुमने मरवाया। तब भी मैं चुप रहा। पर अब क्या देखता हूं कि मेरी प्यारी बेटी देवयानी को, जो कि आत्माभिमान को प्राणों से भी अधिक समझती है, तुम्हारी लड़की ने अपमानित किया और मारपीट कर कुएं में धकेल दिया! यह अपमान देवयानी के लिए असहनीय है। उसने निश्चय किया है कि वह तुम्हारे राज्य में नहीं रहेगी। और तुम जानते हो कि वह मुझे प्राणों से अधिक प्रिय है। उसके बिना मैं यहां नहीं रह सकता। इस कारण मैं भी तुम्हारा राज्य छोड़कर जा रहा हूं।"

आचार्य की बातें सुन कर वृषपर्वा तो हक्का-बक्का रह गया। वह नम्रतापूर्वक बोला—"गुरुदेव, मैं निर्दोष हूं। आपने जो-कुछ कहा, उन बातों से मैं सर्वथा अपरिचित हूं। आप मुझे छोड़ जायंगे तो मैं पल भर भी जी नहीं सकता। आग में कूदकर मर जाऊंगा।"

शुक्राचार्य दृढ़तापूर्वक बोले—"तुम और तुम्हारे दानव-गण चाहे आग में जल मरो, चाहे समुद्र में डूब मरो, जब तक मेरी प्राणप्यारी बेटी का दुःख दूर न होगा मेरा मन शांत नहीं होगा। जाकर मेरी बेटी को समझाओ। अगर वह मान गई तो मैं यहां रह सकता हूं, वरना नहीं।"

राजा वृषपर्वा सारे परिवार को साथ लेकर देवयानी के पास गया और उसके पांव पकड़ कर क्षमा मांगी।

देवयानी दृढ़ता के साथ बोली—"तुम्हारी लड़की शर्मिष्ठा ने मेरा बुरी तरह से अपमान किया और मुझे भिखमंगे की बेटी कहा। इस कारण उसे मेरी नौकरानी बनकर रहना मंजूर हो और पिताजी जहां मेरा ब्याह करें वहां मेरी दासी बनकर मेरे साथ जाने को राजी हो तो मैं तुम्हारे राज्य में रहूंगी, अन्यथा नहीं।"

असुरराज को देवयानी की शर्त माननी पड़ी। उसने अपनी बेटी शर्मिष्ठा को बुला भेजा और उसे सारी बातें समझाईं।

शर्मिष्ठा ने अपना कसूर कबूल किया। उसने शर्म से आंखें नीची करके धीरे. से कहा--- "सखी देवयानी की इच्छा पूरी हो। ऐसा न हो कि मेरे अपराध के कारण पिताजी आचार्य को गंवा बैठें। गुरु-पुत्री की दासी बनकर रहना मुझे स्वीकार है।" तब कहीं देवयानी का क्रोध शांत हुआ और वह पिता के साथ नगर लौटी।

इसके कई दिन बाद एक बार देवयानी की राजा ययाति से जंगल में दुबारा भेंट हुई। देवयानी ने उनपर अपना प्रेम प्रकट किया और कहा---"जब एक बार आप मेरा दाहिना हाथ पकड़ चुके हैं तो फिर आप मेरे पति के ही समान हैं। आप मुझे अपनी पत्नी स्वीकार कर लें।" परन्तु ययाति ने न माना। उन्होंने कहा--- "क्षत्रिय होकर ब्राह्मण-कन्या से ब्याह करने की मैं कैसे हिम्मत करूं?" तब देवयानी उन्हें अपने साथ लेकर पिता के पास गई और ब्याह के लिए पिता की अनुमति लेकर ही मानी। ब्राह्मण की लड़की देवयानी का राजा ययाति के साथ बड़ी धूमधाम से ब्याह हुआ।

ययाति और देवयानी का ब्याह इस बात का सबूत है कि आम रिवाज न होते हुए भी प्रतिलोम विवाह उन दिनों हुआ करते थे। शास्त्रों में यह जरूर कहा जाता था कि अमुक कार्य उचित है और अमुक नहीं; किन्तु जब सबकी पसंदगी से कोई विवाह हो जाता था तो शास्त्रोक्त न होने पर भी प्रायः लोग उसे सही मान लिया करते थे।

देवयानी ययाति के रनवास में आई और शर्मिष्ठा उसकी दासी बनकर उसके साथ रही। इस प्रकार ययाति और देवयानी कई वर्ष तक सुख-चैन से रहे।

इस बीच में एक दिन शर्मिष्ठा ने राजा ययाति को अकेला पाकर उनसे प्रार्थना की कि मुझे भी अपनी पत्नी बना लीजिए। ययाति ने उसकी प्रार्थना मान ली और उसके साथ गुप्तरूप से ब्याह कर लिया। देवयानी को इस बात का पता न चलने दिया; लेकिन चोरी आखिर कहां तक छिपती?

अंत में देवयानी को एक दिन पता चल ही गया कि शर्मिष्ठा उसकी सौत बनी हुई है। यह जानकर वह मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गई, रोती-पीटती अपने पिता के पास दौड़ गई और शिकायत की कि राजा ययाति ने वचन-भंग किया है। उसने शर्मिष्ठा को अपनी पत्नी बना लिया है।

यह सुनकर शुक्राचार्य गुस्से में आगये। उन्होंने शाप दिया कि ययाति इसी घड़ी बूढ़े हो जायं।

उनका शाप देना था कि ययाति को बुढ़ापे ने आ घेरा। वह अभी अधेड़ उम्र के ही थे। जवानी उनकी बीत नहीं चुकी थी कि इतने में अचानक बुढ़ापा आ गया। वे शुक्राचार्य के पास दौड़े गये, उनसे क्षमा मांगी और शाप-मुक्ति के लिए बहुत अनुनय-विनय की।

शुक्राचार्य को उनके हाल पर दया आई। सोचा--आखिर मेरी कन्या को इसी ने कुएं से बचाया था। सान्त्वनापूर्ण स्वर में बोले--"राजन! तुम शाप-वश बूढ़े तो हो गये। इसका निवारण तो मेरे पास है नहीं, पर एक बात है। अगर कोई पुरुष अपनी जवानी तुम्हें दे दे और तुम्हारा बुढ़ापा अपने ऊपर ले ले तो तुम फिर से जवान बन सकते हो।" यह युक्ति बताकर शुक्राचार्य ने बूढ़े ययाति को आशीर्वाद देकर बिदा किया।

: ७ :

ययाति

राजा ययाति पाण्डवों के पूर्वजों में थे। ऐसे कुशल योद्धा कि कभी लड़ाई के मैदान में उनकी हार नहीं हुई थी। बड़े ही शीलवान थे, पितरों और देवताओं की पूजा बड़ी श्रद्धा के साथ करते और सदा प्रजा की भलाई में लगे रहते। इससे उनका यश बहुत दूर-दूर तक फैला

हुआ था ।

ऐसे कर्त्तव्यशील राजा जवानी बीतने से पहले ही शापवश रंग-रूप बिगाड़ने और दुःख देने वाले बुढ़ापे को प्राप्त हुए । जो बुढ़ापे को पहुंच चुके हैं वे ही अनुभव कर सकते हैं कि बुढ़ापा कैसी बुरी बला है। तिस पर ययाति की तो अभी जवानी की दुपहरी भी न हो पाई थी कि अचानक उन्हें बुढ़ापे का दुःख सहना पड़ा। उनकी ग्लानि का पूछना क्या ?

राजा ययाति की भोग-लालसा अभी छूटी नहीं थी। उनके पांचों पुत्र अभी सुन्दर और जवान थे। अस्त्र-विद्या में निपुण थे और गुणवान भी थे । ययाति ने अपने पांचों बेटों से एक-एक करके प्रार्थना की कि अपनी जवानी थोड़े दिन के लिए मुझे दे दो। उन्होंने कहा—"प्यारे पुत्रो, तुम्हारे नाना शुक्राचार्य के शाप से मुझे अचानक ही बुढ़ापे ने दबा लिया है । अभी तक मैंने भोग-विलास की तरफ ज्यादा ध्यान नहीं दिया । नियमपूर्वक कर्त्तव्य करने में ही मैंने अपना सारा समय बिता दिया। मुझ बूढ़े पर दया करो और अपनी जवानी कुछ समय के लिए मुझे दे दो। जो मेरा बुढ़ापा ले लेगा और मुझे अपनी जवानी दे देगा वही मेरे राज्य का अधिकारी होगा। मैं उसकी जवानी लेकर कुछ दिन भोग-विलास की इच्छा पूरी कर लेना चाहता हूं ।"

राजा की इस प्रार्थना के उत्तर में बड़े बेटे ने कहा—"पिताजी, आप यह क्या मांग रहे हैं ? अगर मैं आपको अपनी जवानी देकर आपका बुढ़ापा खुद ले लूं तो नौकर-चाकर और युवतियां मेरी हंसी नहीं उड़ायेंगी ? यह मुझसे नहीं हो सकता । मुझसे ज्यादा आपको मेरे भाई पर प्यार है । उसीसे क्यों नहीं मांगते ?"

दूसरे बेटे ने कहा—"बुढ़ापा आदमी को कमजोर बना देता है। रंग-रूप बिगाड़ देता है। बुद्धि भी बूढ़े की स्थिर नहीं रहती। आप मुझे कहते हैं कि ऐसा बुढ़ापा ले लूं। क्षमा कीजियेगा, पिताजी। मुझ में इतनी हिम्मत नहीं है ।"

तीसरे बेटे ने भी इसी तरह साफ इन्कार कर दिया। उसने कहा—"बूढ़ा न हाथी पर चढ़ सकता है, न घोड़े पर ही सवार हो सकता है। उसकी जवानी लड़खड़ाती है। ऐसा बुढ़ापा लेकर मैं क्या करूं? इससे तो मौत ही अच्छी। नहीं पिताजी, मैं आपकी बात मान नहीं सकता।"

जब इस तरह तीन बेटों ने इन्कार कर दिया तो राजा निराश से हो गये। उन्हें बड़ा क्रोध आया। फिर भी उन्होंने चौथे बेटे से बड़ी अनुनय-पूर्वक कहा—"प्यारे पुत्र, मैं असमय में ही बूढ़ा हो गया हूं। तुम थोड़े दिन के लिए मेरा बुढ़ापा अपने ऊपर ले लो और अपनी जवानी मुझे दे दो। कुछ दिन सुख-भोग करने के बाद मैं अपना बुढ़ापा वापस ले लूंगा और तुम्हारी जवानी लौटा दूंगा। इतनी दया तो मुझ पर करो!"

चौथे बेटे ने कहा—"क्षमा कीजियेगा, पिताजी। बुढ़ापा पराधीनता का ही तो दूसरा नाम है। बूढ़े को बात-बात पर दूसरों का मुंह ताकना पड़ता है। अकेला चलते हुए भी वह लड़खड़ाता है। शरीर का मैल दूर करने तक के लिए उसे दूसरों का सहारा लेना पड़ता है। मैं अपनी स्वाधीनता खोना नहीं चाहता।"

चारों बेटों से कोरा जवाब पाकर राजा ययाति के शोक-संताप की सीमा न रही। पांचवें बेटे पुरु से उन्होंने रुद्ध-कण्ठ से प्रार्थना की—"बेटा पुरु, तुमने कभी मेरी बात नहीं टाली। अब तुम्हीं मेरी रक्षा कर सकते हो। शुक्राचार्य के शाप से मुझे असमय में बूढ़ा होना पड़ा है। जरा देखो तो, सारे शरीर पर झुर्रियां पड़ी हैं। शरीर कांप रहा है। बाल एकदम पक गये हैं। इतना उपकार अपने पिता का करो कि मेरा बुढ़ापा कुछ समय के लिए ले लो और अपनी जवानी मुझे दे दो। जरा भोग की प्यास बुझा लूं, फिर तुम्हें तुम्हारी जवानी वापस दे दूंगा। अपने भाइयों की तरह तुम भी नाहीं न कर देना।"

पिता की यह प्रार्थना सुनकर पुरु से न रहा गया। उसका जी भर आया। वह बोला—"पिताजी! आपकी आज्ञा सिर आंखों पर है।

मैं खुशी-खुशी अपनी जवानी आपको दे देता हूं और आपका बुढ़ापा तथा राज-काज संभालने का बोझ अपने ऊपर ले लेता हूं।" ययाति ने यह सुनते ही पुत्र को प्रेम से गले लगा लिया।

उसी समय पुत्र की जवानी ययाति को प्राप्त हो गई। पुरु बूढ़ा हो गया और राज-काज संभालने लगा।

जवानी पाकर ययाति दोनों पत्नियों से बहुत दिन तक रति-क्रीड़ा करते रहे। जब पत्नियों से जी नहीं भरा तो यक्षराज कुबेर के नन्दन-वन में किसी अप्सरा के साथ कई वर्ष तक सुख भोगते रहे—इतने पर भी ययाति की प्यास नहीं बुझ सकी। उनकी कामवासना कम नहीं हुई; बल्कि भोग की इच्छा दिन-पर-दिन बढ़ती ही गई।

तब ययाति अपने बेटे पुरु के पास लौट आये और उससे कहा—"प्रिय पुत्र! मैंने अनुभव करके जान लिया है कि कामवासना वह आग है, जो विषय-भोग से नहीं बुझती। मैंने धर्म-ग्रन्थों में पढ़ा तो था कि जैसे घी डालने से आग बुझने के बजाय प्रबल हो उठती है वैसे ही विषय-भोग से लालसा बढ़ती ही जाती है, कम नहीं होती। इसकी सचाई अब मुझे मालूम हुई। धन-दौलत और स्त्रियों के पाने से मनुष्य की लालसा कभी शान्त नहीं होती। वासनाएं तभी शान्त होती हैं जब मनुष्य इच्छाओं को अपने काबू में रक्खे। जिसमें न राग है, न द्वेष, वही शांति प्राप्त करता है। इसी स्थिति को ब्राह्मी-स्थिति कहते हैं।"

बेटे को यह उपदेश देकर ययाति ने अपना बुढ़ापा उससे वापस ले लिया और पुरु को जवानी लौटा दी। पुरु को राजगद्दी पर बिठाकर वृद्ध ययाति वन में चले गए। वहां बहुत दिन तक तपस्या की और स्वर्ग सिधारे।

: ८ :

✓ विदुर

महर्षि माण्डव्य का आश्रम नगर के बाहर किसी वन में था। माण्डव्य स्थिर-चित्त, सत्यवादी एवं शास्त्रज्ञ थे। आश्रम में ही रहते और तपस्या में समय बिताते थे। एक दिन वे आश्रम के बाहर एक पेड़ के नीचे बैठे ध्यान कर रहे थे कि इतने में कुछ डाकू डाके का माल लिये उधर से आ निकले। राजा के सिपाही उनका पीछा कर रहे थे, इसलिए डाकू छिपने की जगह खोजते-खोजते उधर आये। आश्रम पर उनकी दृष्टि पड़ी तो सोचा कि इसमें छिपकर जान बचा लें। तेजी से आश्रम के भीतर घुस गये और डाके का माल एक कोने में गाड़ कर दूसरे कोने में छिप रहे। इतने में उनका पीछा करते हुए राजा के सैनिक भी वहां आ पहुंचे।

ध्यान-मग्न बैठे माण्डव्य मुनि को देखकर सिपाहियों के सरदार ने उनसे पूछा—"इस रास्ते कोई डाकू आये हैं? आये हैं तो किस रास्ते गए हैं? जल्दी बताइए। वे राज्य में डाका डालकर आये हैं। हमें उनका पीछा करना है।" पर मुनि तो ध्यान में लीन थे। उन्होंने कुछ सुना ही नहीं। जवाब क्या देते!

सरदार ने दुबारा जरा डपट कर पूछा। फिर भी मुनि ने सुना नहीं। वे चुप रहे। इतने में कुछ सिपाहियों ने आश्रम के अन्दर तलाश करके देख लिया कि डाकू वहीं छिपे हुए हैं और डाके का माल भी आश्रम में ही गड़ा हुआ है। सैनिकों ने अपने सरदार को भी आश्रम में बुला लिया और डाकुओं को पकड़ कर हथकड़ी पहना दी।

सिपाहियों के सरदार ने मन में सोचा—"अच्छा, यह बात है? अब समझा कि ऋषि ने चुप्पी क्यों साध ली थी।" उसने माण्ड्व्य को डाकुओं

का सरदार समझ लिया और सोचा कि उन्हीं की प्रेरणा से डाका डाला गया है। इस विचार से उसने सिपाहियों को वहीं ऋषि की रखवाली के लिए छोड़ दिया और राजा के दरबार में जाकर सारी बातें कह सुनाई ।

जब राजा ने सुना कि कोई ब्राह्मण डाकुओं का सरदार बना हुआ है और मुनि के वेष में लोगों को धोखा देता है तो उसे बहुत क्रोध आया। बिना विचारे ही आज्ञा दे दी कि उस दोषी दुरात्मा को अभी सूली पर चढ़ा दो। मारे क्रोध के राजा को यह भी सुध न रही कि जरा जांच-पड़ताल तो कर लें।

निर्दोष माण्डव्य को सैनिकों के सरदार ने तुरन्त सूली पर चढ़ा दिया और उनके आश्रम में जो डाके का माल पाया गया उसे राजा के हवाले कर दिया।

महर्षि माण्डव्य तपस्या में लीन थे और उसी लीनावस्था में ही सूली पर चढ़ा दिये गये थे। तपस्या के कारण सूली का प्रभाव उनपर न पड़ सका। बहुत दिन तक वे जीवित रहे और सूली का दुःख सहते रहे। जब यह समाचार और तपस्वियों को मालूम हुआ तो आस-पास के जंगलों के कितने ही तपस्वी लोग माण्डव्य के पास आ पहुंचे और उनकी सेवा करने लगे।

तपस्वियों ने ऋषि मांडव्य से पूछा—"महर्षि, आप तो बड़े पुण्यात्मा हैं! आपको किस कारण यह दारुण दुःख भोगना पड़ा है?"

शांति के साथ माण्डव्य ने कहा—"राजा संसार का रक्षक माना जाता है। जब उसी की आज्ञा से मुझे यह दण्ड मिला है तो मैं किसे दोष दूं ?"

उधर राजा को खबर पहुंची कि महर्षि माण्डव्य सूली पर चढ़ाये जाने पर भी, भूखे-प्यासे रहते हुए भी, जीवित हैं। वन के रहने वाले बहुत-से ऋषि-मुनि उनकी सेवा में लगे हैं। यह खबर पाकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और भय भी। तुरन्त अपने परिवार के लोगों को

साथ में लेकर वन में गया। जब सूली पर माण्डव्य को जीवित बैठे देखा तो सन्न रह गया। उसे अपनी भूल मालूम हुई। उसने फौरन आज्ञा दी कि मुनि को सूली पर से उतार दिया जाय। मुनि के उतरने पर वह उनके परों में गिर पड़ा और गिड़गिड़ाकर बोला--"अनजान में मुझसे यह भारी भूल हो गई है। कृपा करके मुझे क्षमा कर दें।"

माण्डव्य को राजा पर क्रोध तो आया, पर उन्होंने उसे क्षमा कर दिया और वे धर्मदेव के पास गये। धर्म को अपने आसन पर बैठे देखकर बोले--"धर्मदेव! कृपया यह तो बतायें कि मैंने कौन-सा ऐसा पाप किया जो मुझे यह दारुण दुःख भोगना पड़ा?"

माण्डव्य की तपस्या का बल धर्मराज जानते थे। उन्होंने बड़ी नम्रता के साथ ऋषि की आवभगत की और उसके बाद बोले--"महर्षि, आपने टिड्डियों और चिड़ियों को पकड़ कर सताया था। इसी पाप के फलस्वरूप आपको यह कष्ट भोगना पड़ा। आप जानते ही हैं कि जैसे थोड़े-से दान का बहुत फल मिलता है वैसे ही थोड़े से पाप का भी दण्ड बहुत मिल जाता है।"

धर्मराज की बात सुनकर माण्डव्य को अचरज हुआ। पूछा--"मैंने ऐसा पाप कब किया था?"

धर्मदेव ने कहा--"बचपन में।"

यह सुनकर माण्डव्य को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा--"बचपन में नासमझी से मैंने जो पाप किया उसका तुमने न्यायोचित मात्रा से अधिक दंड दिया। इस अन्याय के लिए मैं शाप देता हूं कि तुम मर्त्यलोक में मनुष्य-योनि में जन्म लो।"

इस प्रकार माण्डव्य के शाप-वश विचित्रवीर्य की रानी अंबालिका की दासी की कोख से धर्मदेव का जन्म हुआ। वे ही आगे चलकर विदुर के नाम से प्रख्यात हुए।

विदुर धर्मदेव के अवतार थे। धर्म-शास्त्र तथा राजनीति में उनका ज्ञान अथाह था। वे बड़े निस्पृह थे। क्रोध उन्हें छू तक नहीं गया था,

संसार के बड़े-बड़े लोग उनको महात्मा कहकर पूजते थे। उनका सुयश सारे संसार में फैला हुआ था। युवावस्था में ही पितामह भीष्म ने उनके विवेक तथा ज्ञान से प्रभावित होकर उन्हें राजा धृतराष्ट्र का प्रधान मंत्री नियुक्त कर दिया था।

तीनों लोकों में महात्मा विदुर जैसा धर्म-निष्ठ या नीतिमान कोई नहीं था। जिस समय धृतराष्ट्र ने जुआ खेलने की अनुमति दी थी, विदुर ने धृतराष्ट्र से बहुत आग्रह-पूर्वक निवेदन किया––"राजन्, मेरे प्रभु! मुझे यह काम ठीक नहीं जंचता। इस जुए के खेल के कारण आपके बेटों में आपसी बैर-भाव बढ़ेगा। इस कुचाल को रोक दीजिये।"

धृतराष्ट्र विदुर की बात से प्रभावित हो गये और अपने बेटे दुर्योधन को अकेले में बुलाकर उसे इस कुचाल से रोकने का प्रयत्न किया।

प्रेम के साथ वह बेटे से बोले–– "गांधारी के लाल! इस जुए के खेल को विदुर ठीक नहीं समझता। इस विचार को तुम छोड़ दो। विदुर बड़ा बुद्धिमान है, हमेशा हमारा भला चाहता आया है। उसका कहा मानने में हमारी भलाई है। भूत तथा भविष्य की बातें जानने वाले बृहस्पति ने जितने शास्त्र के ग्रंथ रचे हैं, विदुर ने उन सबका ज्ञान प्राप्त किया है। यद्यपि विदुर मुझसे उमर में छोटा है फिर भी हमारे कुल का वही प्रधान समझा जाता है। वत्स! जुआ खेलने का विचार छोड़ दो। विदुर कहता है कि उससे विरोध बहुत बढ़ेगा। उसका कहना है कि यह राज्य के नाश का कारण हो जायेगा, छोड़ दो इस विचार को।"

इस तरह कई मीठी बातों से धृतराष्ट्र ने अपने बेटे को सही रास्ते पर लाने का प्रयत्न किया; किंतु दुर्योधन न माना। बूढ़े धृतराष्ट्र अपने बेटे को बहुत प्यार करते थे। इस कमजोरी के कारण उसका अनुरोध वे टाल न सके और युधिष्ठिर को जुए के खेल के लिए न्यौता भेजना ही पड़ा।

धृतराष्ट्र पर बस न चला तो विदुर युधिष्ठिर के पास गये। उनको

जुआ खेलने जाने से रोकने का प्रयत्न किया। इस खेल की बुराइयां बताईं। युधिष्ठिर ने चाचा विदुर की बातें ध्यानपूर्वक सुनीं और बड़े आदर के साथ बोले—"चाचाजी! मैं भी यह जानता हूं, पर जब धृतराष्ट्र बुला रहे हों तो मैं कैसे इन्कार करूं? युद्ध या खेल के लिए बुलाये जाने पर न जाना क्षत्रिय का धर्म तो नहीं है।" कह कर युधिष्ठिर कुल की मर्यादा रखने के लिए जुआ खेलने गए।

: ६ :

कुन्ती

यदुवंश के प्रसिद्ध राजा शूरसेन श्रीकृष्ण के पितामह थे। इन राजा शूरसेन के पृथा नाम की कन्या थी। उसके रूप और गुणों की कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। शूरसेन के फुफेरे भाई कुन्तीभोज के कोई सन्तान न थी। शूरसेन ने कुन्तीभोज को वचन दिया था कि उसकी जो पहली संतान होगी उसे कुन्तीभोज को गोद दे देंगे। उसी के अनुसार शूरसेन ने पृथा कुंतीभोज को गोद दे दी। कुंतीभोज के यहां आने पर पृथा का नाम कुंती पड़ गया।

कुंती के बचपन में एक बार दुर्वासा ऋषि कुंतीभोज के यहां पधारे। कुन्ती एक वर्ष तक बड़ी सावधानी व सहनशीलता के साथ उनकी सेवा-शुश्रूषा करती रही। उसके सेवा-भाव से दुर्वासा ऋषि प्रसन्न हुए और एक दैवी मन्त्र का उसे उपदेश दिया और बोले—"कुन्तीभोज-कन्ये, यह मंत्र पढ़कर तुम जिस किसी भी देवता का ध्यान करोगी, वह तुम्हारे सामने प्रकट होगा तथा अपने ही समान एक तेजस्वी पुत्र तुम्हें प्रदान करेगा।"

महर्षि दुर्वासा ने दिव्य ज्ञान से यह मालूम कर लिया था कि कुंती को अपने पति से कोई संतान नहीं होगी। इसी कारण उन्होंने

उसे ऐसा वर दिया। कुंती बालिका ही थी। उत्सुकतावश उसे यह जानने की इच्छा हुई कि जो मंत्र मिला है उसका प्रयोग करके क्यों न देखा जाय ?

आकाश में भगवान् सूर्य अपनी प्रकाशमान किरणें फैला रहे थे। कुंती ने उन्हीं का ध्यान कर के मंत्र पढ़ा। तुरन्त ही क्या देखती है कि आकाश में बादल छा गये। वह आश्चर्य के साथ इस दृश्य को देख रही थी कि इतने में स्वयं भगवान् सूर्य एक सुन्दर युवक के रूप में उसके सामने आ खड़े हुए। उनकी कान्ति में ऐसा आकर्षण था कि मन एकाएक उनकी ओर खिंचा जाता था। इस अद्भुत् घटना को देखकर कुंती चकित रह गई और घबराहट के साथ पूछा— "भगवन् ! आप कौन हैं ?"

सूर्य ने कहा— "प्रिये ! मैं आदित्य हूं। तुमने मेरा आह्वान करके मंत्र पढ़ा था, इसलिए तुम्हें पुत्र-दान देने आया हूं।" कुंती भय से कांपती हुई बोली— "भगवन् ! मैं अभी कन्या हूं। पिता के अधीन हूं। कौतूहलवश दुर्वासा मुनि के पढ़ाये हुए मंत्र का प्रयोग कर बैठी। मुझ नादान लड़की का अपराध क्षमा कर दें।"

परन्तु मंत्र के खिंचाव के कारण लोक-निन्दा से सूर्य वापस न जा सके। उन्होंने डरती हुई बालिका कुंती को प्रेम से समझाया और धीरज बंधाकर बोले— "राज-कन्ये ! डरो मत। मैं तुम्हें वर देता हूं कि तुम्हें कोई कलंक न लगेगा। मेरे साथ संयोग होने के बाद भी तुम कुंआरी ही रहोगी।"

अन्त में कुंती ने मान लिया। सारे संसार को प्रकाश तथा जीवन देने वाले सूर्य के संयोग से कुमारी कुंती ने सूर्य के ही समान तेजस्वी एवं सुन्दर बालक को जन्म दिया। स्वाभाविक कवच और कुण्डलों से शोभित वही बालक आगे चलकर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कर्ण के नाम से विख्यात हुआ। बालक के जन्मते ही सूर्य के वरदान से कुंती फिर कुमारी हो गई।

अब कुंती को लोक-निन्दा का डर हुआ। बहुत सोचने के बाद उसने बच्चे को छोड़ देना ही उचित समझा। बच्चे को एक सन्दूक में बड़ी सावधानी के साथ रखकर उसे गंगा की धारा में बहा दिया। वह पेटी नदी में तैरती हुई आगे निकल गई। बहुत आगे जाकर अधिरथ नाम के एक सारथी की नजर उस पर पड़ी। उसने पेटी निकाली और खोलकर देखा तो उसमें एक सुन्दर बच्चा पड़ा मिला। अधिरथ निःसंतान था। बालक पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उसे घर जाकर अपनी स्त्री को दे दिया। सूर्य-पुत्र कर्ण इस तरह एक सारथी के घर में पलने लगा।

इधर कुंती विवाह के योग्य हुई। राजा कुंतीभोज ने उसका स्वयंवर रचा। कुंती की अनुपम सुन्दरता और मधुर गुणों का यश दूर तक फैला हुआ था। उससे ब्याह करने की इच्छा से देश-विदेश के अनेक राजकुमार स्वयंवर में आये। हस्तिनापुर के राजा पाण्डु भी स्वयंवर में शरीक हुए थे। राजकुमारी कुंती हाथ में वरमाला लिये मंडप में आई तो उसकी निगाह एक राजकुमार पर पड़ी जो अपने तेज से दूसरे सारे राजकुमारों के तेज को फीका कर रहा था। कुंती ने उसी के गले में वरमाला डाल दी। वह राजकुमार भरतश्रेष्ठ महाराजा पांडु थे। महाराजा पांडु कुंती से ब्याह करके उसे हस्तिनापुर ले गये।

उन दिनों राजवंशों में एक से अधिक ब्याह करने की प्रथा प्रचलित थी। ऐसे ब्याह भोग-विलास के लिए नहीं, बल्कि वंश-परम्परा को चालू रखने की इच्छा से किये जाते थे। इसी रिवाज के अनुसार पितामह भीष्म की सलाह से पांडु ने मद्रराज की कन्या माद्री से भी ब्याह कर लिया।

: १० :

पाण्डु का देहावसान

एक दिन महाराज पाण्डु ने शिकार खेलते-खेलते एक हिरन पर तीर चलाया। वह हिरन न था, बल्कि हिरन का रूप लिये हुए एक ऋषि थे। तीर की चोट से ऋषि के प्राण निकल गये। मरने से पहले ऋषि ने क्रुद्ध होकर पाण्डु को शाप दिया कि पत्नी से सम्भोग करते ही तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। ऋषि के शाप से पाण्डु को बड़ा दुःख हुआ। साथ ही अपनी भूल से बड़े खिन्न होकर नगर लौटे और पितामह भीष्म तथा विदुर के हाथों राज्य का भार सौंप कर अपनी पत्नियों के साथ बन में चले गए और वहां व्रती ब्रह्मचारी का-सा जीवन व्यतीत करने लगे।

बन में रहते हुए महाराज पाण्डु को इस बात की चिन्ता हुई कि मेरे पीछे वंश का अन्त न हो जाय। उनके अनुरोध से कुन्ती और माद्री ने महर्षि दुर्वासा के दिये मंत्र का प्रयोग करके देवताओं के अनुग्रह से पांचों पाण्डवों को जन्म दिया। वन में ही पांचों का जन्म हुआ और वहीं तपस्वियों के संग वे पलने लगे। अपनी दोनों स्त्रियों तथा बेटों के साथ महाराज पाण्डु कई बरस बन में रहे।

वसन्त की ऋतु थी। लताएं रंग-बिरंगे फूलों से लदी थीं। चिड़ियां चहक रही थीं। सारा बन ही आनन्द में डूबा हुआ-सा प्रतीत हो रहा था। महाराज पाण्डु माद्री के साथ प्रकृति की इस उद्गारमय सुषमा को निहार रहे थे। हठात् उनके मन में ऋतु के प्रभाव से कामवासना सजग हो उठी। उन्होंने माद्री से सम्भोग करना चाहा। माद्री ने बहुत रोका, परन्तु पांडु ने न माना। कामवश बुद्धि खो बैठे और माद्री से सम्भोग कर ही लिया। ऋषि के शाप से सम्भोग करते ही उनकी

मृत्यु हो गई ।

पति की मृत्यु का मैं ही कारण बनी, यह सोचकर माद्री को महा दुःख हुआ । अतः पाण्डु के दाहकर्म के साथ आप भी जलती चिता पर लेट गई और प्राण-त्याग कर दिया ।

इस दुर्घटना से कुंती और पांचों पाण्डवों के शोक की सीमा न रही । ऐसा प्रतीत हुआ कि यह दुःख उनसे सहा न जायगा । पर वन के ऋषि-मुनियों ने बहुत समझा-बुझाकर उनको शान्त किया और उन्हें हस्तिनापुर ले जाकर पितामह भीष्म के हवाले किया । युधिष्ठिर की उम्र उस समय सोलह वर्ष की थी ।

हस्तिनापुर के लोगों ने जब ऋषियों के मुंह से सुना कि वन में पाण्डु की मृत्यु हो गई तो उनके शोक और सन्ताप की सीमा न रही । भीष्म, विदुर आदि बन्धुजनों ने यथा-विधि श्राद्ध-कर्म किया । सारे राज्य के लोगों ने ऐसा शोक मनाया मानो उनका कोई सगा मर गया हो ।

पोते की मृत्यु पर विचार करती हुई सत्यवती को समझाते हुए व्यासजी बोले— "अतीत सुखकर ही रहा । भविष्य में बड़े दुःख तथा संकट की संभावना है । पृथ्वी की जवानी बीत चुकी है । अब वह समय आने वाला है जो छल-प्रपंच एवं पापों से भरा होगा । भरतवंश पर बड़ी विपत्ति पड़ने वाली है । तुम्हारे लिए अच्छा यही होगा कि अपने वंश की दुर्गति को देखो ही नहीं । बन में जाकर तपस्या करो । वही श्रेयस्कर होगा ।"

सत्यवती व्यासजी की यह बात मानकर अपनी दोनों विधवा पुत्र-वधुओं—अम्बिका और अम्बालिका को साथ लेकर बन में चली गई । तीनों वृद्धाएं थोड़े दिन तक तपस्या करती रहीं और बाद में स्वर्ग सिधार गईं । मानो अपने कुल में जो छल-प्रपंच तथा अन्याय होने वाले थे उन्हें न देखना ही उन्होंने उचित समझा ।

: ११ :

भीम

पांचों पाण्डव तथा धृतराष्ट्र के एक सौ बेटे हस्तिनापुर में एक साथ रहने लगे। खेल-कूद में, हंसी-मजाक में सब साथ ही रहते। पाण्डु का पुत्र भीम शारीरिक बल में सब से बढ़कर था। हर खेल में वह दुर्योधन और उसके भाइयों को खूब तंग किया करता, उनको खूब मारता-पीटता और बाल पकड़ कर खींचता। कभी आठ-दस बच्चों को लेकर पानी में डुबकी मार लेता और इतनी देर तक उनको पानी के अन्दर ही दबाये रखता कि बेचारों का दम घुटने लग जाता। कभी कौरव पेड़ पर चढ़कर कोई फल खाते या खेलते तो भीम पेड़ को जोर से लात मार कर हिला देता और वे बालक पेड़से ऐसे गिरते जैसे पके हुए फल। भीम के ऐसे खेलों से बच्चे बहुत तंग आ जाते और उनका सारा शरीर छोटे-मोटे घावों से भरा रहता। यद्यपि भीम मन में किसी से बैर नहीं रखता था और बचपन के उत्साह के कारण ही ऐसा करता था, फिर भी दुर्योधन तथा उनके भाइयों के मन में भीम के प्रति द्वेषभाव दिन-पर-दिन बढ़ने लगा।

इधर सभी बालक उचित समय आने पर कृपाचार्य से अस्त्र-विद्या के साथ-साथ अन्य विद्याएं भी सीखने लगे। सब प्रकार की विद्या सीखने में भी पाण्डव कौरवों से आगे रहने लगे। इससे कौरव और खीजने लगे। दुर्योधन पाण्डवों को हर प्रकार नीचा दिखाने का प्रयत्न करता। भीम से तो उसकी जरा भी नहीं पटती थी।

एक बार सब कौरवों ने आपस में सलाह करके यह निश्चय किया कि भीम को गंगा में डुबोकर मार डाला जाय और उसके मरने पर युधिष्ठिर-अर्जुन आदि को कैद करके जेल में बन्द कर दिया जाय।

दुर्योधन ने यह सोचा कि ऐसा करने से सारे राज्य पर उनका ही अधिकार हो जायगा ।

एक दिन दुर्योधन ने धूमधाम से जल-क्रीड़ा का प्रबन्ध किया और पांचों पाण्डवों को उसके लिए न्योता दिया। बड़ी देर तक खेलने व तैरने के बाद सबने भोजन किया और अपने-अपने डेरों में जाकर सो रहे। दुर्योधन ने भीम के भोजन में विष मिलवा दिया था। सब लोग खूब खेले-तैरे थे सो थक-थकाकर सो गये। भीम को विष के कारण गहरा नशा आया और वह डेरे पर भी न पहुंचने पाया। नशे में चूर होकर गंगा किनारे रेती में ही पड़ गया। ऐसी ही हालत में दुर्योधन ने उसके दोनों हाथों व पैरों को लताओं और बेलों से बांधकर गंगा में डुबो दिया।

भीम का लताओं से जकड़ा हुआ शरीर जल की धारा में बहता-बहता दूर चला गया। पानी में ही कुछ विषैले सांपों ने उसे काटा। सांपों के विष के प्रभाव से भीम के शरीर से भोजन के विष का प्रभाव दूर हो गया और वह जल्दी ही होश में आगया। विष के इस प्रकार शमन हो जाने से भीम का शारीरिक बल और बढ़ गया ।

इधर दुर्योधन मन-ही-मन यह सोचकर खुश हो रहा था कि भीम का तो काम तमाम हो गया। जब युधिष्ठिर वगैरा जगे और भीम को न पाया और पूछ-ताछ की तो दुर्योधन ने झूठ-मूठ समझा कर कह दिया कि वह तो कभी का नगर की ओर चला गया। युधिष्ठिर ने उसकी बात पर विश्वास कर लिया और चारों भाई अपने महलों में वापस आगये। लेकिन वहां युधिष्ठिर ने देखा कि भीम का कहीं पता नहीं। वह चिंतित होगए। कुंती के पास जाकर पूछा—"मां! आपने भीम को कहीं देखा? वह तो खेल कर हम से पहले ही यहां आ गया था। यहां से कहीं और तो नहीं गया? आपने उसे देखा?"

यह सुनकर कुन्ती भी घबरा गई। तब चारों भाइयों ने मिलकर वह सारा जंगल, जहां जल-क्रीड़ा की थी, छान डाला। पर भीम का कहीं पता नहीं चला। अंत में निराश हो दुःखी हृदय से घर लौटे ।

इतने में क्या देखते हैं कि भीम झूमता-झामता आ रहा है। पाण्डवों और कुन्ती के आनन्द क्या कहना! युधिष्ठिर, कुन्ती आदि ने भीम को गले से लगा लिया।

यह सब देख कुन्ती बड़ी चिन्तित हुई। उसने विदुर को अकेले में बुला भेजा और उनसे बोली––"दुष्ट दुर्योधन जरूर कुछ-न-कुछ चाल चल रहा है। राज्य के लोभ से वह भीम को मार डालना चाहता है। मुझे बड़ी चिंता हो रही है।"

राजनीति-कुशल विदुर कुन्ती को समझाते हुए बोले–"तुम्हारा कहना है सही। पर कुशल इसी में है कि इस बात को अपने मन में ही रखना। प्रकट रूप से दुर्योधन की निन्दा न करना; नहीं तो इससे उसका द्वेष और बढ़ेगा। तुम्हारे पुत्रों का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। वे चिरंजीवी होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं। तुम निश्चिंत रहो।"

इस घटना से भीम बहुत उत्तेजित हो गया था। उसे समझाते हुए पर साथ ही सावधान करते हुए युधिष्ठिर ने कहा––"भाई भीम, अभी समय नहीं है। तुम्हें अपने आपको संभालना होगा। इस समय हम पांचों भाइयों को यही चाहिए कि किसी प्रकार एक दूसरे की रक्षा करते हुए जीवित रहें।"

उधर भीम के वापस आ जाने पर दुर्योधन को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसका हृदय और जलने लगा। द्वेष और ईर्ष्या उसके मन को खाये जाने लगी। लंबी सांस लेकर वह रह गया। ईर्ष्या की आग में जलते रहने के कारण उसका शरीर सूखने लगा।

: १२ :

कर्ण

धृतराष्ट्र के बेटे कौरवों तथा पाण्डु पुत्र पाण्डवों ने पहले कृपाचार्य से और बाद में द्रोणाचार्य से अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा पाई। जब उनको विद्या में काफी निपुणता प्राप्त हो गई तो एक बड़ा समारोह किया गया जिसमें सबने अपने-अपने कौशल का प्रदर्शन किया। सभी नगरवासी इस समारोह में शामिल हुए थे। उसमें तरह-तरह के खेल हुए थे। हरेक राजकुमार यही चाहता था कि मैं ही सबसे बढ़कर निकलूं। लाग-डांट बड़े जोर की थी। पर तीर चलाने में पाण्डु-पुत्र अर्जुन का कोई सानी न था। अर्जुन ने धनुष विद्या में कमाल का खेल कर दिखाया। उसकी अद्भुत चतुरता को देख सारे दर्शक और उपस्थित राजवंश के लोग दंग रह गए। यह देखकर दुर्योधन का मन ईर्ष्या की आग में और जलने लगा।

अभी खेल हो ही रहा था कि इतने में रंग-भूमि के द्वार पर किसी के खम ठोंकते हुए आने का शब्द सुनाई दिया। दर्शक और खिलाड़ी राजकुमारों का ध्यान उधर चला गया और उत्सुकता से उधर देखने लगे। क्या देखते हैं कि एक रोबीला और तेजस्वी युवक धीर-गंभीर चाल से रंगभूमि की ओर चला आ रहा है। दर्शकों ने उसे रास्ता दे दिया और वह रंगभूमि में आकर अर्जुन के सामने खड़ा हो गया।

यह युवक और कोई नहीं, अधिरथ द्वारा पोषित कुन्ती-पुत्र कर्ण ही था। उसके कुन्ती पुत्र होने की बात किसी को मालूम न थी।

रंगभूमि में आते ही उसने अर्जुन को ललकारा—"अर्जुन! जो कुछ करतब तुमने कर दिखाये हैं उससे भी बढ़कर कौशल दिखाने के

लिए मैं तयार हूं ।"

इस चुनौती को सुनकर दर्शक-मंडली में बड़ी खलबली मच गई। पर ईर्ष्या की आग से जलने वाले दुर्योधन को बड़ी राहत मिली। वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने बड़े तपाक से कर्ण का स्वागत किया और उसे छाती से लगा लिया। बोला--

"कहो, कर्ण, कैसे आये ? बताओ, हम तुम्हारे लिए क्या कर सकते ह ?"

कर्ण बोला-- "राजन् ! मैं अर्जुन से द्वन्द्व-युद्ध करने आया हूं और आपसे मित्रता करना चाहता हूं।"

कर्ण की चुनौती को सुनकर अर्जुन को बड़ा क्रोध आया। उसने कहा-- "कर्ण ! जो बिना बुलाये सभा में आते हैं और बिना किसी से पूछे बोलने लगते हैं वे निन्दा के योग्य हैं।"

यह सुन कर कर्ण ने कहा-- "अर्जुन, यह उत्सव केवल तुम्हारे ही लिए नहीं मनाया जा रहा। सभी प्रजा-जन इसमें भाग लेने का अधिकार रखते हैं। क्षत्रियों का धर्म बल का अनुयायी है। व्यर्थ डींग मारने से फायदा क्या ? चलो, तीरों से बातें करें !"

जब कर्ण नें अर्जुन को यों चुनौती दी तो दर्शक लोगों ने तालियां बजाकर कोलाहल मचाया। उनके दो दल बन गए। एक दल अर्जुन को दाद देने लगा और दूसरा कर्ण को। इसी प्रकार वहां इकट्ठी स्त्रियों के भी दो दल बन गये। इससे मालूम होता है कि संसार में 'पार्टीबाजी' की यह प्रथा मुद्दत से चली आई है।

कुन्ती ने कर्ण को देखते ही पहचान लिया और भय और लाज के मारे मूर्च्छित हो गई। उसकी यह हालत देखकर विदुर ने दासियों को बुलाकर उसको सचेत करवाया और मीठे शब्दों में आश्वासन दिया और समझाया। कुंती किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई।

इस बीच कृपाचार्य ने उठकर कर्ण से कहा-- "अज्ञात वीर ! महाराज पाण्डु का पुत्र और कुरुवंश का वीर अर्जुन तुम्हारे साथ द्वन्द्व करने के लिए तैयार है। पर तुम पहले अपना परिचय तो दो ! तुम

कौन हो, किसके पुत्र हो, किस राज-कुल को तुम विभूषित करते हो ? क्योंकि द्वन्द्व-युद्ध बराबर वालों में ही होता है। कुल तथा कुलाचार का परिचय पाये बगैर राजकुमार कभी द्वन्द्व करने को तैयार नहीं होते।"

कृपाचार्य की यह बात सुनकर कर्ण का सिर लज्जा से इस प्रकार झुक गया जैसे वर्षा के जल में भीगा हुआ कमल। कर्ण लज्जा के कारण श्री-विहीन हो गया।

कर्ण को इस तरह लज्जित देखकर दुर्योधन उठ खड़ा हुआ और बोला--"अगर बराबरी की बात है तो मैं आज ही कर्ण को अंगदेश का राजा बनाता हूं।" यह कहकर दुर्योधन ने तुरन्त पितामह भीष्म एवं पिता धृतराष्ट्र से अनुमति लेकर वहीं रंगभूमि में ही राज्याभिषेक की सामग्री मंगाई और कर्ण का राज्याभिषेक करवाया और उसे अंगदेश का राजा घोषित कर दिया।

इतने में बूढ़ा सारथी अधिरथ, जिसने कर्ण को पाला था, लाठी टेकता हुआ और भय के मारे कांपता हुआ सभा में प्रविष्ट हुआ। कर्ण जो अभी-अभी अंगदेश का नरेश बना दिया गया था, उसको देखते ही धनुष नीचे रख कर उठ खड़ा हुआ और पिता मानकर बड़े आदर के साथ उसके आगे सिर नवाया। बूढ़े ने भी 'बेटा' कहकर उसे गले लगा लिया और अभिषेक-जल से भीगे हुए कर्ण के सिर पर आनन्द के आंसू बहाकर उसे और भिगो दिया।

यह देखकर भीम खूब कहकहा मारकर हंस पड़ा और बोला--"सारथी के बेटे, धनुष छोड़कर हाथ में चाबुक लो, चाबुक! वही तुम्हें शोभा देगा। तुम भला अर्जुन के साथ द्वन्द्व युद्ध करने के योग्य हो ?"

इससे सभा में बड़ी खलबली मच गई। इस समय सूरज डूब रहा था। सभा विसर्जित हो गई। मशाल और दियों की रोशनी में दर्शक वृन्द तरह-तरह से शोर मचाते हुए चले गए। अपनी-अपनी पसन्द के अनुसार कुछ लोग अर्जुन की, कुछ कर्ण की और कुछ दुर्योधन की जय बोलते जाते थे।

इस घटना के बहुत काल बाद एक बार देवराज इन्द्र बूढ़े ब्राह्मण के वेश में अंग-नरेश कर्ण के पास आये और उसके पैदायशी कवच और कुण्डल की भीख मांगी । देवराज इन्द्र को डर था कि युद्ध में कर्ण की शक्ति से कहीं मेरे पुत्र अर्जुन पर विपत्ति न आ जाय । इस कारण कर्ण की ताकत कम करने की इच्छा से उन्होंने दानवीर कर्ण से यह भीख मांगी थी ।

इससे पहले कर्ण को उसके पिता सूर्यदेव ने चेता दिया था कि तुम्हें धोखा देने के लिए इन्द्र ऐसी चाल चलने वाले हैं, परन्तु कर्ण इतना दानी था कि किसी के कुछ मांगने पर वह नाहीं कर नहीं सकता था । इस कारण यह जानते हुए भी कि भिखारी के वेश में इन्द्र मुझ से चाल चल रहे हैं, दानवीर कर्ण ने तलवार से अपनी पसली चीरकर और अपने कान काटकर पैदायशी कवच और कुण्डल निकाल कर ब्राह्मण को दे दिए ।

इस अद्भुत दानवीरता को देखकर देवराज इन्द्र भी चकित हो गए और कर्ण की प्रशंसा करते हुए बोले––"कर्ण, तुमने आज वह काम किया है जो और किसी के बूते का नहीं था । तुमसे मैं बहुत प्रसन्न हूं । तुम जो भी वरदान मांगो दूंगा ।"

कर्ण ने देवराज से कहा––"आप प्रसन्न हैं तो शत्रुओं का संहार करने वाला अपना 'शक्ति' नामक शस्त्र मुझे प्रदान करें ।"

बड़ी प्रसन्नता के साथ शस्त्र कर्ण को देते हुए देवराज ने कहा––"युद्ध में तुम जिस किसीको लक्ष्य करके इसका प्रयोग करोगे वह अवश्य मारा जायगा । परन्तु एक ही बार तुम इसका प्रयोग कर सकोगे । तुम्हारे शत्रु को मारने के बाद यह मेरे पास वापस आ जायगा ।" इतना कह कर इन्द्र चले गए ।

एक बार कर्ण को परशुरामजी से ब्रह्मास्त्र का मंत्र सीखने की इच्छा हुई । उसे यह पता था कि परशुरामजी ब्राह्मणों को छोड़कर और किसीको शिष्य नहीं बनाते इसलिए वह ब्राह्मण के वेश में परशुरामजी के पास गया और प्रार्थना की कि मुझे शिष्य स्वीकार करने की कृपा करें । परशुरामजी ने उसे ब्राह्मण समझ कर शिष्य बना

लिया। इस तरह धोखे से कर्ण ने ब्रह्मास्त्र चलाना सीख लिया।

एक दिन परशुराम कर्ण की जांघ पर सिर रख कर सो रहे थे। इतने में एक भौंरा कर्ण की जांघ के नीचे घुस गया और काटने लगा। कीड़े के काटने से कर्ण को बहुत पीड़ा हुई। जांघ से लहू की धारा बहने लगी; पर कर्ण ने जरा भी जांघ को हिलाया-डुलाया नहीं——इस भय से कि कहीं गुरुदेव की नींद न खुल जाय। जब खून से परशुराम की देह भीगने लगी तो उनकी नींद खुली। उन्होंने देखा कि कर्ण की जांघ से जोरों से खून बह रहा है। यह देख परशुराम बोले—— "बेटा, सच बताओ तुम कौन हो ? इतनी शारीरिक पीड़ा सहते हुए स्थिर रहना ब्राह्मण के बूते का नहीं है। केवल क्षत्रिय ही यह पीड़ा सह सकता है।"

अब कर्ण से असली बात छिपाते न बनी। उसने कबूल किया कि वह ब्राह्मण नहीं, बल्कि सूत-पुत्र है।

यह जानकर परशुराम को बड़ा क्रोध आया। क्षत्रियों के तो वे दुश्मन थे ही। उन्होंने उसी घड़ी कर्ण को शाप देते हुए कहा——"चूंकि तुमने अपने गुरु को ही धोखा दिया इसलिए जो ब्रह्मास्त्र-विद्या तुमने मुझसे सीखी है, वह अन्त समय में तुम्हारे काम न आयेगी। ऐन वक्त पर तुम उसे भूल जाओगे और रणक्षेत्र में तुम्हा रथ का पहिया पृथ्वी में धंस जायगा।"

परशुराम का यह शाप झूठा न हुआ। जीवन-भर कर्ण को उनकी सिखलाई हुई ब्रह्मास्त्र विद्या याद रही। पर कुरुक्षेत्र के मैदा में अर्जुन से युद्ध करते समय कर्ण को वह याद न रही।

दुर्योधन के घनिष्ट मित्र कर्ण ने अन्त समय तक कौरवों का साथ न छोड़ा। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भीष्म तथा आचार्य द्रोण के आहत हो जाने के बाद दुर्योधन ने कर्ण को ही कौरव सेना का सेनापति बनाया था। कर्ण ने दो दिन तक युद्ध का अद्भुत कुशलता के स संचालन किया। आखिर जब शाप-वश उसके रथ का पहिया ज में धंस गया और वह धनुष-बाण रखकर जमीन में धंसा पहि

निकालने का प्रयत्न करने लगा तब अर्जुन ने उस महारथी को मारा। माता कुन्ती के दुःख का पार न रहा।

: १३ : ✓

द्रोणाचार्य

आचार्य द्रोण महर्षि भारद्वाज के पुत्र थे। उन्होंने पहले अपने पिता के पास वेद-वेदांगों का अध्ययन किया और बाद में धनुर्विद्या भी सीख ली। पांचाल-नरेश का पुत्र द्रुपद भी द्रोण के साथ भारद्वाज-आश्रम में शिक्षा पा रहा था। दोनों में गहरी मित्रता थी। कभी-कभी राजकुमार द्रुपद उत्साह में आकर द्रोण से यहांतक कह देता था कि पांचाल देश का राजा बन जाने पर आधा राज्य तुम्हें दे दूंगा।

शिक्षा समाप्त होने पर द्रोणाचार्य ने कृपाचार्य की बहन से ब्याह कर लिया। उससे उनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम उन्होंने अश्वत्थामा रखा। द्रोण अपनी स्त्री और बेटे को बड़ा प्रेम करते थे।

द्रोण बड़े गरीब थे। वह चाहते थे कि किसी तरह धन प्राप्त किया जाय और स्त्री-पुत्र के साथ सुख से रहा जाय। उन्हें खबर लगी कि परशुराम अपनी सारी संपत्ति गरीब ब्राह्मणों को बांट रहे हैं तो दौड़े-दौड़े उनके पास गये। लेकिन उनके पहुंचने तक परशुराम अपनी सारी संपत्ति वितरण कर चुके थे और वन-गमन की तैयारी कर रहे थे।

द्रोण को देखकर वह बोले—"ब्राह्मण-श्रेष्ठ! आपका स्वागत हो। मेरे पास जो कुछ था वह मैं बांट चुका। अब यह मेरा शरीर और मेरी धनुर्विद्या ही बाकी बची है। बताइये, मैं क्या करूं?"

तब द्रोण ने उनसे सारे अस्त्रों का प्रयोग, उपसंहार तथा रहस्य सिखाने की प्रार्थना की। परशुराम ने यह स्वीकार किया और द्रोण को धनुर्विद्या की पूरी शिक्षा दी।

कुछ समय बाद राजकुमार द्रुपद के पिता का देहान्त हो गया और द्रुपद के पांचाल देश की राजगद्दी पर बैठने की खबर द्रोणाचार्य को लगी। यह सुनकर द्रोण बड़े प्रसन्न हुए और राजा द्रुपद से मिलने पांचाल देश को चल पड़े। उन्हें द्रुपद की, गुरु के आश्रम में लड़कपन में की गई, बातचीत याद थी। सोचा, यदि आधा राज्य न भी देगा तो भी कम-से-कम कुछ धन तो जरूर ही देगा।

यह आशा लेकर द्रोणाचार्य राजा द्रुपद के पास पहुंचे और बोले—"मित्र द्रुपद, मुझे पहचानते हो न? मैं हूं तुम्हारा लड़कपन का मित्र द्रोण।"

ऐश्वर्य के मद में भूले हुए राजा द्रुपद को द्रोणाचार्य का आना बहुत बुरा लगा और द्रोण का अपने साथ मित्र का-सा व्यवहार करना भी अखरा। वह उसपर गुस्सा हो गया और बोला—"ब्राह्मण, तुम्हारा यह व्यवहार सज्जनोचित नहीं। मुझे मित्र कहकर पुकारने का तुम्हें साहस कैसे हुआ? सिंहासन पर बैठे हुए एक राजा के साथ एक गरीब, दरिद्र व प्रजाजन की मित्रता कभी हुई है? तुम्हारी बुद्धि कितनी कच्ची है! लड़कपन में लाचारी के कारण हम दोनों को जो साथ रहना पड़ा, उसके आधार पर तुम द्रुपद से मित्रता का दावा करने लगे! दरिद्र की धनी के साथ, मूर्ख की विद्वान् के साथ और कायर की वीर के साथ मित्रता कहीं हो सकती है? मित्रता बराबरी की हैसियतवालों में ही होती है। जो किसी राज्य का स्वामी न हो, वह किसी राजा का मित्र कभी हो नहीं सकता।"

द्रुपद की इन कठोर गर्वोक्तियों को सुनकर द्रोणाचार्य बड़े लज्जित हुए और उन्हें क्रोध भी बहुत आया। फिर भी मन-ही-मन कुछ निश्चय करके वहां से बिना कुछ कहे-सुने चल दिये। वह हस्तिनापुर पहुंचे और वहां अपनी पत्नी के भाई (अपने साले) कृपाचार्य के यहां गुप्त-रूप से रहने लगे।

●

एक रोज हस्तिनापुर के राजकुमार नगर के बाहर कहीं गेंद खेल रहे

थे कि इतने में उनकी गेंद एक अंधे कुएं जा गिरी। युधिष्ठिर उसको निकालने का प्रयत्न करने लगे तो उनकी अंगूठी भी कुएं के हवाले हो गई। सभी राजकुमार कुएं के चारों ओर खड़े हो गए और पानी के अन्दर चमकती हुई अंगूठी को झांक-झांककर देखने लगे।

इतने में काला-काला-सा एक ब्राह्मण उधर से आ निकला और कुछ देर तक राजकुमारों का यह खेल देखता रहा। इसके बाद उनसे बोला-- "राजकुमारो! तुम क्षत्रिय हो, भरतवंश के दीपक हो, तुम लोगों से इतना भी नहीं हो सका कि एक गेंद कुएं से निकाल लेते। बोलो, मैं गेंद निकाल दूं तो तुम मुझे क्या दोगे?"

"ब्राह्मण-श्रेष्ठ! यदि आप गेंद निकाल दें तो कृपाचार्य के घर में आपके भोजन का प्रबन्ध किया जा सकता है।" युधिष्ठिर ने हंसते हुए कहा।

तब द्रोणाचार्य ने मुस्कराते हुए पास में पड़ी हुई एक सींक उठा ली और उसपर मंत्र का प्रयोग कर उसे पानी में फेंका। सींक गेंद को ऐसे जाकर लगी जैसे तीर। और फिर इस तरह लगातार कई सींकें मंत्र पढ़-पढ़कर वे कुएं में डालते गए। सींकें एक-दूसरे के सिर से चिपकती गईं। जब आखिरी सींक का सिरा कुएं के बाहर तक पहुंचा, तो द्रोणाचार्य ने उसे पकड़कर खींच लिया और गेंद बाहर आ गई।

सब राजकुमार आश्चर्य से इस ब्राह्मण का करतब देख रहे थे। जब गेंद निकल आई तो मारे खुशी के उछलने-कूदने लगे। उनके आनन्द की सीमा न रही। उन्होंने ब्राह्मण से विनती की कि युधिष्ठिर की अंगूठी भी निकाल दीजिए। द्रोण ने तुरन्त धनुष चढ़ाया और कुएं में तीर मारा। बाण पल भर में अंगूठी को अपनी नोक में लिये ऊपर आ गया। द्रोणाचार्य ने अंगूठी कुमारों को दे दी।

यह चमत्कार देखकर राजकुमारों को और भी ज्यादा अचरज हुआ। उन्होंने द्रोण के आगे आदरपूर्वक सिर नवाया और हाथ जोड़ कर पूछा— "महाराज! हमारा प्रणाम स्वीकार कीजिए। हमें अपना परिचय दीजिए, आप कौन हैं? हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं। हमें आज्ञा कीजिए।"

द्रोण ने कहा--"राजकुमार ! यह सारी घटना बताकर पितामह भीष्म से मेरा परिचय प्राप्त कर लेना ।"

राजकुमारों ने जाकर पितामह भीष्म को सारी बात कह सुनाई और उनसे पूछा कि पितामह, बताइए यह ब्राह्मण कौन थे ? भीष्म ताड़ गए कि हो-न-हो वे सुप्रसिद्ध द्रोणाचार्य ही होंगे । यह विचार करके उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया कि अब आगे राजकुमारों की अस्त्र-शिक्षा द्रोणाचार्य के ही हाथों पूरी की जाय । यह सोच कर बड़े सम्मान के साथ उन्होंने द्रोण का स्वागत किया और राजकुमारों को आदेश दिया कि आगे वे धनुर्विद्या गुरु द्रोण से ही सीखा करें ।

राजकुमारों की शिक्षा कुछ समय बाद पूरी हो गई । द्रोणाचार्य ने उनसे गुरु-दक्षिणा के रूप में पांचाल-राज द्रुपद को कैद कर लाने के लिए कहा । उनकी आज्ञानुसार पहले दुर्योधन और कर्ण ने द्रुपद के राज्य पर धावा किया; पर पराक्रमी द्रुपद ने उनकी खूब खबर ली और वे हार कर वापस आ गये । फिर द्रोण ने अर्जुन को भेजा । अर्जुन ने पांचालराज की सेना को तहस-नहस कर दिया और राजा द्रुपद को उनके मंत्री सहित कैद करके आचार्य के सामने ला खड़ा किया ।

द्रोणाचार्य के मलिन मुख-मण्डल पर मुस्कराहट की लहर दौड़ गई । उन्होंने कैदी द्रुपद से कहा--"हे वीर ! डरो नहीं । किसी प्रकार की विपत्ति की आशंका न करो । लड़कपन में तुम्हारी-हमारी मित्रता थी । साथ-साथ खेले-कूदे, उठे-बैठे । बाद में जब तुम राजा बन गये तो ऐश्वर्य के मद में आकर तुमने मुझे धोखा दिया और मेरा अपमान किया । तुम्हें याद है न, तुमने कहा था कि राजा के साथ राजा ही मित्रता कर सकता है ? इसी कारण मुझे युद्ध करके तुम्हारा राज्य छीनना पड़ा । परन्तु मैं तो तुम्हारे साथ मित्रता ही बरतना चाहता हूं, इसलिए आधा राज्य तुम्हें वापस लौटा देता हूं; क्योंकि मेरे मित्र बनने के लिए भी तो तुम्हें राज्य चाहिए न ! मित्रता तो बराबरी की हैसियत वालों में ही हो सकती है न !"

द्रोणाचार्य ने यों व्यंग-बाणों से राजा द्रुपद से काफी बदला ले लिया। द्रुपद बड़ा अपमानित हुआ और लज्जा के मारे सिर झुकाये खड़ा रहा। द्रोणाचार्य का भी जी भर आया और उन्होंने द्रुपद को आधा राज्य भी लौटा दिया और बड़े सम्मान के साथ विदा किया।

•

इस प्रकार राजा द्रुपद का गर्व तो चूर हो गया; लेकिन उसके साथ ही द्रोणाचार्य के प्रति उनके मन में बैर-भाव बढ़ा। राज्य लौटने पर राजा द्रुपद ने कई कठोर व्रत रखे और यह कामना की कि मेरे एक ऐसा पुत्र हो जो द्रोण को मार सके और ऐसी एक कन्या हो जो अर्जुन से ब्याही जा सके। आखिर उनकी कामना पूरी हुई। उनके धृष्टद्युम्न नामक एक बेटा हुआ और द्रौपदी नामकी एक बेटी। आगे चलकर कुरुक्षेत्र की रण-भूमि में अजेय द्रोणाचार्य इसी धृष्टद्युम्न के हाथों मारे गये थे।

: १४ :

लाख का घर

भीमसेन का शरीर-बल और अर्जुन की युद्ध-कुशलता देख-देखकर दुर्योधन की जलन दिन-पर-दिन बढ़ती ही गई। वह पांडवों के निश्चित नाश का उपाय सोचने लगा। इस कुमन्त्रणा में उसका मामा शकुनि और कर्ण उसके सलाहकार बने हुए थे।

बूढ़े धृतराष्ट्र बुद्धिमान थे। अपने भतीजों से उनका स्नेह तो काफी था, परन्तु अपने पुत्रों से उतना ही अधिक उनको मोह था। दृढ़ निश्चय की उनमें कमी थी। किसी बात पर वे दृढ़ नहीं रह सकते थे। इस कारण यह जानते हुए भी कि दुर्योधन कुबुद्धि की राह चल रहा है, उन्होंने उसका ही साथ दिया। अपने बेटे पर अंकुश रखने की शक्ति उनमें न थी। दुर्योधन पाण्डवों के विनाश की कोई-न-कोई चाल चलता ही रहता

था। विदुर गुप्त रूप से पाण्डवों की सहायता करते रहते थे जिससे पांडवों के प्राण सुरक्षित रहें।

इधर दिनों-दिन पाण्डवों की लोकप्रियता बढ़ती ही जाती थी। चौराहों पर, सभा-समाजों में, जहां कहीं भी लोग इकट्ठे होते, पाण्डवों के गुणों की प्रशंसा ही सुनने में आती। लोग कहते कि राजगद्दी पर बैठने के योग्य तो युधिष्ठिर ही हैं।

"धृतराष्ट्र तो जन्म के अंधे थे। इस कारण उनके छोटे भाई पांडु ही सिंहासन पर बैठे थे। उनकी अकाल मृत्यु हो जाने और पाण्डवों के बालक होने के कारण उस समय के लिए धृतराष्ट्र ने राज-काज सम्हाला। अब जब युधिष्ठिर बड़े हो गये हैं तो फिर धृतराष्ट्र आगे राज्य को कैसे अपने अधीन रख सकते हैं? पितामह भीष्म का भी कर्त्तव्य है कि वे धृतराष्ट्र से राज्य का भार युधिष्ठिर को दिला दें। युधिष्ठिर ही कौरवों तथा सारी प्रजा के साथ न्याय-पूर्वक व्यवहार कर सकेंगे।" ज्यों-ज्यों पांडवों की यह लोक-प्रियता दुर्योधन के देखने में आती, ईर्ष्या की आग से वह और भी जोर से जलने लगता।

एक रोज धृतराष्ट्र को अकेले में पाकर दुर्योधन बड़े प्रेम से बोला--"पिताजी, पुरवासी लोग तरह-तरह की बातें करते हैं--आपके बारे में भी और स्वयं पितामह भीष्म के बारे में भी। लोग अब उनको सम्मान की निगाह से कम देखते हैं। लोग आंदोलन कर रहे हैं कि युधिष्ठिर को जल्दी ही राज-सिंहासन पर बिठा दिया जाय। इस कारण हम पर बड़ी विपत्ति आने की संभावना है। जन्म से अन्धे होने के कारण आप बड़े होते हुए भी राज्य से वंचित ही रह गये। राज्य-सत्ता आपके छोटे भाई के हाथ में चली गई। अब यदि युधिष्ठिर को राजा बना दिया गया तो फिर सात पीढ़ियों तक हम राज्य की आशा नहीं कर सकेंगे। युधिष्ठिर के बाद उसीका बेटा राजा बनेगा। फिर हम कहीं के न रहेंगे। हो सकता है कि हमें भीख मांगने को मजबूर होना पड़े। ऐसे जीवन से तो नरक अच्छा! पिताजी, हमसे यह अपमान न सहा जायगा।"

यह सुनकर राजा धृतराष्ट्र सोच में पड़ गए। बोले—"बेटा, तुम्हारा कहना ठीक है। फिर भी युधिष्ठिर के विरुद्ध कुछ करना भी तो कठिन है। युधिष्ठिर धर्मानुसार चलता है, सबसे समान स्नेह करता है, अपने पिता के समान ही गुणवान् है। इस कारण प्रजाजन भी उसे चाहते हैं। इसीसे उसकी सहायता करने वालों की भी कमी नहीं है। हमारे जितने भी मंत्री हैं उन सबका पांडु ने बड़ा उपकार किया था। सेना-नायकों, सैनिकों और उनके बाल-बच्चों की इतनी सहायता की थी कि अभी तक उसका आभार मानते हैं। जो भी पांडु के गुणों से परिचित हैं वे अवश्य ही युधिष्ठिर का साथ देंगे। इस कारण पांडवों पर विजय पाना हमारे लिए सम्भव नहीं। उलटे यदि हम धर्म के विरुद्ध कुछ कर बैठे तो पुरवासी सब हमारे विरुद्ध हो जायेंगे और हमें और हमारे भाई-बन्धुओं को उखाड़ फेंकेंगे। जनता इतनी दूर न गई तो भी राज्य छोड़ कर तो हमें जरूर ही चला जाना पड़ेगा। लोक-निन्दा और अपयश के पात्र होंगे सो अलग।"

यह सुन दुर्योधन सांत्वना के स्वर में बोला—"पिताजी, आप नाहक घबरा रहे हैं। चिन्ता की तो बात ही कोई नहीं है। पितामह भीष्म किसीके पक्ष में न रहेंगे। द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा मेरे मित्र हैं—वे मेरा ही साथ देंगे। आचार्य अपने बेटे को छोड़कर विपक्ष में नहीं जायेंगे। विदुर चाचा हमारा साथ न दें तो न सही पर हमारे विरुद्ध कुछ करने की शक्ति तो उनमें भी नहीं है। इसलिए पिताजी, मेरा कहा मानकर एक काम कीजिए। आपको और कुछ नहीं करना है, सिर्फ पांडवों को किसी-न-किसी बहाने वारणावत के मेले में भेज दीजिए। इतनी-सी बात से, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं, हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं होगा। यहां पांडवों की बढ़ती देखकर मेरा जी जल रहा है। यह दुःख मेरे लिए असह्य हो उठा है। मेरी नींद हराम हो गई है। अगर ऐसी ही परिस्थिति रही तो फिर मैं अधिक दिन जी नहीं सकूंगा। आप शीघ्र ही इन शत्रुओं को वारणावत भेज देने की स्वीकृति दें ताकि यहां

हम अपनी ताक़त बढ़ा सकें।"

●

इस बीच अपने पिता पर और अधिक प्रभाव डालने के इरादे से दुर्योधन ने कुछ कूटनीतिज्ञों को अपने पक्ष में मिला लिया। बारी-बारी से वे बूढ़े धृतराष्ट्र के पास जाने और पांडवों के विरुद्ध उन्हें उभारने लगे। इनमें कणिक नाम का ब्राह्मण मुख्य था, जो शकुनि का मंत्री था। उसने धृतराष्ट्र को राजनीति की चालों का भेद बताते हुए कितने ही उदाहरणों एवं प्रमाणों से अपनी दलीलों की पुष्टि की। अन्त में बोला--"राजन्! जो ऐश्वर्यवान् है, वही संसार में श्रेष्ठ माना जाता है। यह बात ठीक है कि पाण्डव आपके भतीजे हैं; परन्तु वे बड़े शक्ति-सम्पन्न भी हैं। इस कारण अभी से चौकन्ने हो जाइए। आप पाण्डु-पुत्रों से अपनी रक्षा कर लीजिए, वरना पीछे पछताइयेगा।"

धृतराष्ट्र ध्यान से सुन रहा था। कणिक बोलता गया--"मैंने जो कुछ कहा, उसके लिए मुझसे नाराज न होइएगा। राजनीति के जानकार लोगों का मत है कि राजा को हमेशा अपने बल का प्रदर्शन करते रहना चाहिए। किसीको यहां तक मौका न देना चाहिए कि वह राजा की ताकत को कम कर सके। राज-काज की बातें हमेशा गुप्त ही रखनी चाहिए। किसी भी कार्य को शुरू करने पर उसे अच्छी तरह पूरा किये बिना बीच में ही न छोड़ना चाहिए। शत्रु की ताकत थोड़ी ही क्यों न हो, तत्काल ही उसका नाश कर देना चाहिए। कभी-कभी छोटी-सी चिनगारी सारे जंगल को जला देती है। इस कारण शत्रु को कमजोर समझकर लापरवाह नहीं रहना चाहिए। वश में आये शत्रु का तुरन्त वध कर देना चाहिए। उसपर दया न करनी चाहिए। इसलिए, राजन्! पाण्डु के पुत्रों से आप अपना बचाव कर लीजिए। वे बड़े ताकतवर हैं।"

कणिक की बातों पर धृतराष्ट्र विचार कर ही रहे थे कि दुर्योधन ने आकर कहा--"पिताजी, मैंने राजकीय कर्मचारियों को प्रलोभनों एवं धन से संतुष्ट कर लिया है। मुझे सन्देह नहीं कि वे हमारी ही सहायता

करेंगे। मैंने सब मंत्रियों को भी अपनी तरफ कर लिया है। आप अगर किसी तरह पाण्डवों को समझाकर वारणावत भेज दें तो फिर नगर और राज्य हमारे हाथ आ जायेंगे। सभी प्रजाजन हमारे पक्ष में आ जायेंगे। जब राज्य पर हमारा शासन पक्का हो जायगा तब फिर पाण्डव बड़ी खुशी से लौट आ सकते हैं। फिर हमें उनसे कोई खतरा नहीं रहेगा।"

दुर्योधन और उसके साथी धृतराष्ट्र को रात-दिन इसी तरह कुछ-न-कुछ पाण्डवों के विरुद्ध सुनाते रहते और उस पर अपना प्रभाव डालते रहते। आखिर धृतराष्ट्र का निश्चय कमजोर पड़ा और उनको लाचार होकर अपने बेटे की सलाह माननी पड़ी। पाण्डवों को वारणावत भेज देने की तैयारियां होने लगीं। दुर्योधन के मंत्रियों ने वारणावत की सुन्दरता और खूबियों के बारे में पाण्डवों को बहुत ललचाया। कहा कि वारणावत में एक भारी मेला होने वाला है जिसकी शोभा देखते ही बनेगी। उनकी बातें सुन-सुन कर खुद पाण्डवों को वारणावत जाने की उत्सुकता हुई, यहां तक कि उन्होंने स्वयं जाकर धृतराष्ट्र से इस बात के लिए अनुमति मांगी।

धृतराष्ट्र स्नेह का दिखावा करते हुए मीठे स्वर में बोले—"ठीक है, तुम्हारी इच्छा है तो जरूर मेले में हो आओ। वारणावत के लोग भी तुम्हें देखने के लिए उत्सुक हो रहे हैं। उनकी भी इच्छा पूरी हो जायगी।"

धृतराष्ट्र की अनुमति पाकर पाण्डव बड़े खुश हुए और भीष्म आदि से विदा लेकर अपनी माता के साथ वारणावत के लिए रवाना हुए।

पाण्डवों के चले जाने की खबर पाकर दुर्योधन के आनन्द की सीमा न रही। वह अपने दोनों साथियों, कर्ण एवं शकुनि के साथ बैठकर पाण्डवों तथा कुन्ती का काम तमाम करने का उपाय सोचने लगा। उसने अपने मंत्री पुरोचन को बुलाकर गुप्त रूप से कुछ सलाह की, कुछ तै किया और पुरोचन ने यह सारा काम पूर्ण सफलता के साथ पूरा करने का वचन दिया और उसी क्षण वारणावत के लिए रवाना हो गया।

बड़े वेग से चलने वाले हलके रथ पर बैठकर पुरोचन पाण्डवों से

बहुत पहले वारणावत जा पहुंचा। वहां पहुंचकर उसने पाण्डवों के ठहरने के लिए एक बड़ा और खूबसूरत मकान बनवाया। सन, घी, मोम, तेल, लाख, चरबी आदि जल्दी आग पकड़ने वाली चीजों को मिट्टी में मिलाकर उसने यह सुन्दर भवन बनवाया। दीवारों पर जो रंग लगा था वह भी जल्दी भड़कने वाली चीज का बना था। जहां-तहां कमरों में भी ऐसी ही चीजें गुप्त रूप से भरवा दीं कि जिनको जल्दी ही आग लग सके। पर इतनी खूबी से यह सब प्रबन्ध किया कि देखने वालों को इन बातों का तनिक भी पता नहीं लग सकता था। भवन में ऐसे-ऐसे आसन और पलंग बिछे थे कि देखकर जी ललचा जाता था। ऐसी खूबी से पुरोचन पाण्डवों के लिए वारणावत में ठहरने के लिए भवन बना रहा था। इस बीच अगर पाण्डव वहां जल्दी पहुंच गये तो कुछ समय ठहरने के लिए एक और जगह का प्रबन्ध पुरोचन ने कर रखा था।

दुर्योधन की यह योजना थी कि कुछ दिन तक पाण्डवों को लाख के भवन में आराम से रहने दिया जाय। जब वह पूर्ण रूप से निःशंक हो जायें तब उनके सोते समय भवन में आग लगा दी जाय जिससे एक तो पाण्डव जल कर मर जायेंगे और कौरवों पर कोई दोष भी न लग सकेगा। सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे, ऐसी यह योजना कुशलतापूर्वक दुर्योधन ने बना रक्खी थी।

: १५ :

पाण्डवों की रक्षा

पांचों पाण्डव माता कुन्ती के साथ वारणावत के लिए चल पड़े। जाने से पहले उचित रीति से बड़ों को प्रणाम किया और समवयस्कों से मिले और बिदा ली। उनके हस्तिनापुर छोड़कर वारणावत जाने की खबर पाकर नगर के लोग उनके साथ हो लिये। बहुत दूर जाने के बाद

युधिष्ठिर का कहा मानकर, लेकिन अनमने मन से पुरवासियों को लौट जाना पड़ा। विदुर ने उस समय युधिष्ठिर को गुप्त भाषा में चेतावनी देते हुए कहा--

"राजनीति-कुशल शत्रु की चाल को जो समझ लेता है वही विपत्ति को पार कर सकता है। एक ऐसा तेज हथियार भी है जो किसी धातु का नहीं बना है। ऐसे हथियार से अपना बचाव करने का उपाय जो जान लेता है वह शत्रु से मारा नहीं जा सकता। जो चीज ठंडक दूर करती और जंगलों का नाश करती है, वह बिल के अन्दर रहने वाले चूहे को छू नहीं सकती। सेही जैसे जानवर सुरंग खोदकर जंगली आग से अपना बचाव कर लेते हैं। बुद्धिमान लोग नक्षत्रों से दिशायें पहिचान लेते हैं।"

दुर्योधन के षड्यंत्र और उससे बचने के उपाय के बारे में विदुर ने युधिष्ठिर को इस तरह मार्मिक ढंग से गूढ़ भाषा में बतला दिया जिसमें दूसरे लोग न समझ सकें। युधिष्ठिर ने भी 'समझ लिया' कहकर विदा ली। रास्ते में कुन्ती के पूछने पर युधिष्ठिर ने मां और भाइयों को विदुर की चेतावनी का हाल बता दिया। दुर्योधन की कुमंत्रणा के बारे में जानकर सबके मुख मलिन हो गये। बड़े आनन्द के साथ वारणावत के लिए चले थे, लेकिन यह सुनकर सबके मन में चिंता छा गई।

वारणावत के लोग पांडवों के आगमन की खबर पाकर बड़े खुश हुए और उन्होंने बड़े ठाट से उनका स्वागत किया। जबतक लाख का भवन बनकर तैयार हुआ, पांडव दूसरे घरों में रहे जहां पुरोचन ने पहले से उनके ठहरने का प्रबन्ध कर रक्खा था।

लाख का भवन बनकर तैयार हो गया तो पुरोचन उन्हें उस भवन में ले गया। उसका नाम 'शिवम्' था। शिवम् का मतलब होता है कल्याण करने वाला। जिस भवन को नाशकारी योजना से प्रेरित होकर दुर्योधन ने बनवाया था, उसका नाम पुरोचन ने 'शिवम्' रखा था!

भवन में प्रवेश करते ही युधिष्ठिर ने उसे खूब ध्यान से देखा। विदुर की बातें उन्हें याद थीं। देखने पर युधिष्ठिर को पता लग गया कि

यह घर जल्दी आग लगने वाली भड़कीली चीजों से बना हुआ है। युधिष्ठिर ने भीम को भी यह भेद बता दिया; पर साथ ही उसे सावधान करते हुए कहा—"यद्यपि हमें यह साफ मालूम हो गया है कि यह स्थान खतरनाक है तो भी हमें विचलित न होना चाहिए। पुरोचन को इस बात का जरा भी पता न लगे कि उसके षड्यंत्र का भेद हम पर खुल गया है। मौका पाकर हमें निकल जाना होगा। पर अभी ऐसा कोई काम न करना चाहिए जिससे शत्रु के मन में संदेह पैदा होने की जरा भी संभावना हो।"

युधिष्ठिर की इस सलाह को भीमसेन सहित सब भाइयों ने तथा कुंती ने मान लिया और उसी लाख के भवन में रहने लगे। इतने में विदुर का भेजा हुआ एक सुरंग बनाने वाला कारीगर वारणावत नगर में आ पहुंचा। उसने एक दिन पांडवों को अकेले पाकर उन्हें अपना परिचय देते हुए कहा—"आप लोगों की भलाई के लिए हस्तिनापुर से रवाना होते समय विदुर ने युधिष्ठिर को गूढ़ भाषा में जो कुछ उपदेश दिया था वह बात मैं जानता हूं। यही मेरे सच्चे मित्र होने का सबूत है। आप मुझ पर भरोसा रक्खें। मैं आप लोगों की रक्षा का प्रबंध करने के ही लिए आया हूं।"

इसके बाद वह कारीगर महल में पहुंच गया और गुप्त रूप से कुछ दिनों में ही उसने एक सुरंग बना दी। इस रास्ते पांडव महल के अन्दर से नीचे-ही-नीचे महल की चहारदीवारी और गहरी खाई को लांघकर और बचकर बेखटके बाहर निकल सकते थे।

यह काम इतनी खूबी और गुप्त रूप से हुआ कि अन्त तक पुरोचन को इस बात की खबर न होने पाई।

पुरोचन ने लाख के भवन के द्वार पर ही अपने भी रहने के लिए स्थान बनवा लिया था। इस कारण पांडवों को भी सारी रात हथियार लिये चौकन्ने बैठे रहना पड़ता था। कभी-कभी वे शिकार खेलने के बहाने आस-पास के जंगलों में घूम-फिर आते और बन में रास्तों को अच्छी

तरह देख लेते। इससे पड़ौस के प्रदेश और जंगली रास्तों से उनका खासा अच्छा परिचय हो गया। वे पुरोचन से ऐसे हिल-मिलकर व्यवहार करते जैसे उस पर उन्हें कोई संदेह ही न हो, मानों वह उसका घनिष्ठ मित्र हो। सदा हंसते-खेलते रहते। उनके व्यवहार को देखकर किसी को तनिक भी संदेह नहीं हो सकता था कि उनके मन में किसी बात की चिन्ता या आशंका है।

उधर पुरोचन भी कोई शीघ्रता नहीं करना चाहता था। उसने सोचा कि ऐसे अवसर पर, इस ढंग से भवन को आग लगाई जाय कि कोई उसे दोषी न ठहरा सके। दोनों ही पक्ष अपने-अपने दांव खेल रहे थे। इसी तरह कोई एक बरस बीत गया।

एक दिन पुरोचन ने सोचा कि अब काम पूरा करने का मौका आ गया। समझदार युधिष्ठिर उसका रंग-ढंग देखकर ताड़ गये कि पुरोचन क्या सोच रहा है। उन्होंने भी अपने भाइयों से कहा—"पापी पुरोचन ने अब हमें मारने का निश्चय कर लिया मालूम होता है। यही समय है कि हम यहां से भाग निकलें।"

युधिष्ठिर की सलाह से माता कुंती ने उसी रात को एक भारी भोज का प्रबंध किया। नगर के सभी लोगों को भोजन दिया गया। बड़ी धूमधाम रही, मानों कोई बड़ा उत्सव हो। खूब खा-पीकर भवन के सब कर्मचारी गहरी नींद में सो गये। नौकर-चाकर शराब के नशे में चूर थे। पुरोचन भी सो गया।

आधी रात के समय भीमसेन ने भवन में कई जगह आग लगा दी। फिर पांचों भाई और माता कुंती के साथ सुरंग के रास्ते अंधेरे में रास्ता टटोलते-टटोलते बाहर निकल आये। वे भवन से बाहर निकले ही थे कि आग ने सारे भवन को अपनी लपटों में ले लिया। पुरोचन के रहने के मकान में भी आग लग गई।

इधर भवन में आग लगी जानकर सारे नगर के लोग वहां इकट्ठे हो गये और पांडवों के भवन को भयंकर आग की भेंट होते देखकर

बड़ा हाहाकार मचाने लगे। कौरवों के अत्याचार से जनता क्षुब्ध हो उठी और तरह-तरह से कौरवों की निन्दा करने लगी। पापी दुर्योधन और उसके साथी पांडवों को मारने लिए कैसे षड्यंत्र रच रहे हैं, कैसी चालें चल रहे हैं, यह सोचकर लोग क्रोध में आपे से बाहर हो गए।

लोग इस तरह शोर मचाते और हाय-हाय करते देखते रहे और उनके देखते-देखते सारा भवन जलकर राख हो गया। पुरोचन का मकान और स्वयं पुरोचन भी आग में समर्पण हो गये।

वारणावत के लोगों ने तुरन्त ही हस्तिनापुर में खबर पहुँचा दी कि पांडव जिस भवन में ठहराये गए थे, वह जल कर राख हो गया और भवन में कोई भी जीता नहीं बचा।

यह खबर पाकर बूढ़े धृतराष्ट्र को शोक तो जरूर हुआ, परन्तु साथ ही उनको आनन्द भी हो रहा था कि मेरे बेटों के दुश्मन खतम हो गए। उनके मन की इस दोरुखी हालत का भगवान व्यास ने बड़ी सुन्दरता से वर्णन किया है। वे लिखते हैं—"गरमी के दिनों में जैसे गहरे तालाब का पानी सतह पर गरम रहता है; किन्तु गहराई में ठंडा, ठीक उसी तरह धृतराष्ट्र के मन में शोक भी था और आनंद भी।"

धृतराष्ट्र और उनके बेटों ने पांडवों की मृत्यु का बड़ा शोक मनाया। सब गहने उतार दिये। एक मामूली कपड़ा पहने गंगा किनारे गए और पांडवों तथा कुन्ती को तिलांजलि दी। फिर सब मिलकर बड़े जोर-जोर से रोते और विलाप करते घर लौटे।

सब लोग जी भरकर रोये; परन्तु दार्शनिक विदुर ने जीना-मरना तो प्रारब्ध की बात होती है, यह विचार कर शोक को मन ही में दबा लिया। अधिक शोक-प्रदर्शन न किया। इसके अलावा विदुर को यह भी पक्का विश्वास था कि पांडव लाख के भवन से बचकर निकल गये होंगे। इस कारण, यद्यपि दिखावे के लिए दूसरों से मिलकर

वे भी कुछ रोये, फिर भी मन में यही अन्दाजा लगाते रहे कि अभी पांडव किस रास्ते और कितनी दूर गये होंगे और कहां पहुँचे होंगे, इत्यादि। पितामह भीष्म तो मानो शोक के सागर में मग्न थे। पर उनको भी विदुर ने धीरज बंधाया और पांडवों के बचाव के लिए किये गए अपने सारे प्रबन्ध का हाल बताकर उन स्नेह-पूर्ण वृद्ध को चिंता-मुक्त किया।

लाख के घर को जलता छोड़कर पांचों भाई माता कुन्ती के साथ बच निकले और जंगल में पहुँच गए। जंगल में पहुंचने पर भीमसेन ने देखा कि रात भर लगातार जगे होने तथा चिन्ता और भय से पीड़ित रहने के कारण चारों भाई बहुत थके हुए हैं। माता कुन्ती की तो दशा बड़ी ही दयनीय थी। बिचारी थक कर चूर होगई थीं। सो महाबली भीम ने माता को उठाकर अपने कन्धे पर बिठा लिया और नकुल एवं सहदेव को कमर पर ले लिया। युधिष्ठिर और अर्जुन को दोनों हाथों से पकड़ लिया और फिर वह वायु-देव का पुत्र भीम उस जंगली रास्ते में उन्मत्त हाथी के समान झाड़-झंखाड़ और पेड़-पौधों को इधर-उधर हटाता व रौंदता हुआ तेजी से चलने लगा। जब वे सब गंगा के किनारे पहुँचे तो विदुर की भेजी हुई एक नाव तैयार खड़ी मिली। युधिष्ठिर ने मल्लाह से गूढ़ प्रश्न करके जांच लिया कि वह मित्र है और विश्वास करने योग्य है। नाव में बैठकर रातोंरात उन्होंने गंगा पार की और फिर अगले दिन शाम तक तेजी से चलते ही रहे कि किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जायें।

इतने में सूरज डूब गया और रात हो चली। चारों तरफ अँधेरा छा गया। वन-प्रदेश जंगली जानवरों की भयानक आवाज से गूंजने लगा। कुन्ती और पांडव एक तो थकावट के मारे चूर हो रहे थे, ऊपर से प्यास और नींद भी उन्हें सताने लगी। चक्कर-सा आने लगा। एक पग भी आगे बढ़ाना असम्भव हो गया। भीम के सिवाय और सब भाई वहीं जमीन पर बैठ गए। कुन्ती से तो बैठा भी नहीं गया। दीनभाव से बोली, "मैं तो प्यास से मरी जा रही हूं। अब मुझसे बिलकुल नहीं चला

जाता। धृतराष्ट्र के बेटे चाहें तो भले ही मुझे यहां से उठा ले जायें, मैं तो यहीं पड़ी रहूंगी।" यह कहकर कुन्ती वहीं जमीन पर गिरकर बेहोश हो गई। माता और भाइयों का यह हाल देखकर क्षोभ के मारे भीमसेन का हृदय गरम हो उठा। वह उस भयानक जंगल में बेधड़क घुस पड़ा और इधर-उधर घूम-घामकर एक जलाशय का पता लगा ही लिया तथा कमल के पत्तों के दोनों में पानी भर लिया और अपना दुपट्टा भिगोकर उसमें पानी लाकर माता व भाइयों की प्यास बुझाई। पानी पीकर चारों भाई और माता कुन्ती ऐसे सोये कि उन्हें अपनी सुध-बुध तक न रही।

अकेला भीमसेन मन-ही-मन कुछ सोचता हुआ चिंतित भाव से बैठा रहा। उसके निर्दोष मन में यह विचार उठा--"देखो, इस जंगल में कितने ही पेड़-पौधे हैं। वे सब एक दूसरे की रक्षा करते और साथ देते हुए कितने मजे से लहलहा रहे हैं! जब पेड़-पौधे तक हिल-मिल कर प्रेम के साथ रह सकते हैं तो दुरात्मा धृतराष्ट्र और दुर्योधन मनुष्य होकर हमसे इतना वैर-भाव क्यों रखते हैं?"

पांचों भाई माता कुन्ती को साथ लिए अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करते और बड़ी मुसीबतें झेलते हुए उस जंगली रास्ते में आगे बढ़ते ही चले गये। वे कभी माता को उठा कर तेज चलते, कभी थके-मांदे बैठ जाते। कभी एक दूसरे से होड़ लगाकर रास्ता पार करते।

चलते-चलते रास्ते में एक दिन महर्षि व्यास से उनकी भेंट हुई। उनको सबने दण्डवत प्रणाम किया। महर्षि ने उन्हें धीरज बंधाया और सदुपदेशों से उनको सांत्वना दी। कुन्ती जब रो-रोकर अपना दुखड़ा सुनाने लगी तो व्यासजी ने उनसे समझाते हुए कहा--"कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं जो हमेशा धर्म ही के काम करता रहे, ऐसा भी कोई नहीं जो पाप-ही-पाप करता रहे। संसार में हरेक मनुष्य पाप भी करता है और धर्म-कर्म भी। अतः जब किसी पर कोई विपत्ति पड़े तो उसे अपने ही किये का फल मानकर सह लेना चाहिए। अपने-अपने कर्म का फल

हरेक को भोगना ही पड़ेगा, इस कारण दुःखी न हो। धीरज धरकर हिम्मत से सब सह लो।"

कुन्ती को इस प्रकार समझाने के बाद व्यासजी ने पाण्डवों को सलाह दी कि वे ब्राह्मण ब्रह्मचारियों का वेश धरकर एकचक्रा नगरी में जाकर रहें। उनकी सलाह के अनुसार पाण्डवों ने मृगचर्म, वल्कल आदि धारण कर लिये और ब्राह्मणों के वेश में एकचक्रा नगरी जाकर एक ब्राह्मण के घर में रहने लगे।

: १६ :

बकासुर-वध

माता कुन्ती के साथ पांचों पांडव एकचक्रा नगरी में भीख मांगकर अपनी गुजर करते दिन बिताने लगे। ब्राह्मणों के घरों में भीख मांग लेते और जो कुछ मिलता माता के सामने लाकर रख देते। जब भिक्षा के लिए पांचों भाई निकलते तो कुन्ती का जी बड़ा बेचैन हो उठता। वह बड़ी चिन्ता से उनकी बाट जोहती रहती। उनके लौटने में जरा भी देर होती कि कुन्ती के मन में तरह-तरह की आशंकाएं उठने लगतीं।

पांचों भाई भिक्षा में जितना भोजन लाते, माता उसके दो हिस्से कर देती और फिर एक हिस्सा भीमसेन को दे देती और बाकी आधे में से पांच हिस्से करके चारों बेटे और खुद खा लेती थी। तिस पर भी भीमसेन की भूख मिटती न थी। वह तो भूखा ही रहा करता था।

भीमसेन वायुदेव का अंशावतार था। इसलिए उसमें जितनी अमानुषिक ताकत थी उतनी ही अमानुषिक भूख भी थी। यही कारण था कि उसको लोग वृकोदर भी कहते थे। वृकोदर का मतलब है भेड़िये का-सा पेट वाला। भेड़िये का पेट देखने में छोटा होने पर भी मुश्किल से भरता है। भीमसेन के पेट का भी यही हाल था। एकचक्रा नगरी में

भीख मांगने से जो थोड़ा-बहुत अन्न मिल जाता था उससे बिचारे भीम को भला क्या सन्तोष हो सकता था! हमेशा भूखा ही रहने के कारण वह दिन-पर-दिन दुबला होने लगा और उसका शरीर पीला पड़ने लगा।

भीमसेन का यह हाल देखकर कुन्ती और युधिष्ठिर बड़े चिन्तित रहने लगे।

इधर जब थोड़े-से भोजन से पेट न भरने लगा तो भीमसेन ने एक कुम्हार से दोस्ती कर ली और उसे मिट्टी वगैरा खोदने में मदद देकर खुश कर लिया। कुम्हार भीम से बड़ा खुश हुआ और एक बड़ी भारी हांडी उसके लिए बनाकर दे दी। भीम उस हांडी को लेकर भिक्षा के लिए निकलता। उसका भीम-काय शरीर और उसकी वह विलक्षण हांडी देखकर बच्चे तो हंसते-हंसते लोट-पोट हो जाते।

एक दिन चारों भाई भिक्षा के लिए गये। अकेला भीमसेन माता कुन्ती के साथ घर पर रहा। इतने में घर के भीतर से बिलख-बिलख कर रोने की आवाज आई। ऐसा मालूम होता था मानों कोई बड़ी शोकप्रद घटना घट गई हो। कुन्ती का जी भर आया। वह इस दुःख का कारण जानने की इच्छा से ब्राह्मण के घर के भीतर गई। अन्दर जाकर देखा कि ब्राह्मण और उसकी पत्नी आंखों में आंसू भरे सिसकियां लेते हुए एक-दूसरे से बातें कर रहे हैं।

ब्राह्मण बड़े दुःखी हृदय से अपनी पत्नी से कह रहा था--"अभागिनी, कितनी ही बार मैंने तुझे समझाया कि इस अन्धेर नगरी को छोड़कर चले जायं; पर तुमने न माना। कहती रही कि यहीं पैदा हुई, यहीं पली तो यहीं रहूंगी। मां-बाप तथा भाई-बन्धुओं का स्वर्गवास हो जाने पर भी यही हठ करती रही कि यह मेरे बाप-दादे का गांव है, यहीं रहूंगी। बोलो, अब क्या कहती हो?

"फिर तुम मेरे धर्म-कर्म की संगिनी हो, मेरी सन्तान की मां और मेरी पत्नी हो। मेरे लिए भी तुम मां-समान हो और मित्र भी हो। मेरा जीवन-सर्वस्व तुम्हीं हो। कसे तुम्हें मृत्यु के मुंह में भेजकर अकेले

जिऊं ?

"और अपनी बेटी की भी बलि कैसे चढ़ा दूं ? यह तो ईश्वर की दी हुई धरोहर है, जिसे सुयोग्य वर को ब्याह में देना मेरा कर्त्तव्य है। परमात्मा ने हमारे वंश को चलाये रखने के लिए यह कन्या दी है। इसे मौत के मुंह में डालना घोर पाप होगा।

"और पुत्र जो मुझे और हमारे पितरों को तिलांजलि देने तथा श्राद्ध-कर्म करने का अधिकारी है, उसको कैसे काल-कवलित होने दूं ? हाय ! तुमने मेरा कहा न माना ! उसी का फल अब भुगतना पड़ रहा है। और यदि मैं शरीर त्यागता हूं तो फिर इन अनाथ बच्चों का भरण-पोषण कौन करेगा ? हा दैव ! मैं अब क्या करूं ? और कुछ करने से तो अच्छा उपाय यह है कि सभी एक-साथ मृत्यु को गले लगा लें। यही श्रेयस्कर होगा।" कहते-कहते ब्राह्मण सिसक-सिसक कर रो पड़ा।

ब्राह्मण की पत्नी भरे हुए स्वर में बोली—"प्राणनाथ ! पति को पत्नी से जो प्राप्त होना चाहिए, वह मुझसे आपको प्राप्त हो गया। जिस उद्देश्य के लिए पुरुष स्त्री से ब्याह करता है वह मैंने आपके लिए पूरा कर दिया है। मेरे गर्भ से आपके एक पुत्री और एक पुत्र उत्पन्न हो चुके हैं। मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया। मेरे न होने पर भी आप अकेले ही बच्चों को पाल-पोस सकते हैं; किन्तु आपके बिना मुझसे वह नहीं हो सकेगा। इसके अलावा दुष्टों से भरे हुए इस संसार में किसी अनाथ स्त्री का जीना भी मुश्किल है। जैसे चील-कौए बाहर फेंके हुए मांस के टुकड़ों को उठा ले जाने की ताक में मंडराते रहते हैं वैसे ही दुष्ट लोग विधवा स्त्री को हड़प ले जाने की ताक में लगे रहते हैं। घी में भीगे हुए कपड़े पर जैसे कुत्ते टूट पड़ते हैं और चारों तरफ से उसे खींचने लगते हैं वैसे ही पति के मरने पर पत्नी को बदमाश लोग फंसा लेते हैं और वह स्त्री उनके चक्कर में पड़कर ठोकरें खाती फिरती है। आप न रहे तो इन अनाथ बच्चों की देख-भाल भी अकेले मुझसे नहीं हो सकेगी। आपके बिना ये दोनों बच्चे वैसे ही तड़प-तड़पकर प्राण

छोड़ देंगे, जैसे सरोवर का पानी सूख जाने पर मछलियां। इसलिए नाथ, मुझे ही राक्षस के पास जाने दीजिए। पति के जीते-जी पत्नी का स्वर्गवास हो जाय, इससे बड़े भाग्य की बात और क्या हो सकती है! शास्त्र भी तो यही कहते हैं। सो आप मुझे आज्ञा दें। मेरे बच्चों की रक्षा करें। मैं जीवन का सुख भोग चुकी। एक साध्वी नारी का जो धर्म है उसका नियम से पालन करती रही। आपकी सेवा-शुश्रूषा में कोई कसर न रक्खी तो यह निश्चित है कि मुझे स्वर्ग प्राप्त होगा। मुझे मरने का कोई दुःख नहीं है। मेरी मृत्यु के बाद आप चाहें तो दूसरी पत्नी ब्याह सकते हैं। अब मुझे प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दें ताकि मैं राक्षस का भोजन बनूं।"

पत्नी की ये व्यथाभरी बातें सुनकर ब्राह्मण से न रहा गया। उसने स्त्री को छाती से लगा लिया और असहाय-सा होकर दीन स्वर में आंसू बहाने लगा। अपनी पत्नी को प्यार करते हुए वह बोला--"प्रिये, ऐसी बातें न करो। मुझसे सुना नहीं जाता। तुम्हारी जैसी बुद्धिमती पत्नी को छोड़ना मेरे लिए महापाप होगा। समझदार पति का पहला कर्त्तव्य अपनी पत्नी की रक्षा करना है। पति को चाहिए कि कभी स्त्री का साथ न छोड़े। तब फिर मुझसे बड़ा दुरात्मा और पापी कौन होगा, जो तुम्हें राक्षस की बलि चढ़ा दूं और खुद जीता रहूं।"

माता-पिता को इस तरह बातें करते देख ब्राह्मण की बेटी से न रहा गया। उसने करुण स्वर में कहा--"पिताजी, आप मेरी भी बात सुन लें। उसके बाद फिर जो आपको उचित लगे, करें। अच्छा तो यह है कि राक्षस के पास आप मुझे भेज दें। मुझे भेजने से आपको कोई नुक्सान नहीं पहुंचेगा और आप सब बच जायेंगे। जैसे नाव के सहारे नदी पार की जाती है वैसे ही मेरे सहारे इस आफत को पार कर लीजिए। पिताजी, यदि आप मृत्यु के मुंह में पड़ जायें तो फिर मेरा नन्हा-सा भाई तड़प-तड़पकर जान छोड़ देगा। आप मर जायं तो फिर मेरा भी कोई सहारा न रह जायेगा और मुझे बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा। मेरी

समझ से मैं इस योग्य हूं कि इस सारे कुल को मुसीबत से छुटकारा दे सकूं। कुल के बचाव के हित अपनी बलि चढ़ाने से मेरा जीवन भी सार्थक होगा। और नहीं तो कम-से-कम मेरी ही भलाई के विचार से भी आपको मुझी को राक्षस के पास भेजना होगा।"

बेटी की बातें सुनकर माता-पिता दोनों के आंसू उमड़ आये। दोनों ने बेटी को प्यार से गले लगा लिया और बार-बार उसका माथा चूमते हुए वे रोने लगे। लड़की भी रो पड़ी। सबको इस तरह रोते देखकर ब्राह्मण का नन्हा-सा लड़का अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से माता-पिता और बहन को देखते हुए उन्हें समझाने लगा। बारी-बारी से उनके पास जाता और अपनी तोतली बोली में—"बापा, रोओ मत," "मां, रोओ मत," "दीदी, रोओ मत!" कहता हुआ बारी-बारी से उनकी गोद में जा बैठता। जब इस पर भी बड़े लोगों का रोना बन्द न हुआ तो लड़का उठा और पास में पड़ी हुई एक सूखी लकड़ी हाथ में लेकर घुमाता हुआ बोला—"उस राक्षस को मैं इस लकड़ी से इस तरह जोर से मार डालूंगा।" बच्चे की तोतली बोली और वीरता का अभिनय देखकर उस संकट-भरी घड़ी में भी सबको हंसी आ गई और थोड़े क्षण के लिए वे अपना दुःख भूल गये।

कुन्ती खड़े-खड़े यह सब देख रही थी। उन्होंने सोचा कि यही अच्छा मौका है। बोली—"हे विप्रवर, क्या आप कृपा करके मुझे बता सकते हैं कि आप लोगों के इस असमय दुःख का कारण क्या है? मुझसे बन पड़ा तो मैं आपको संकट से छुड़ाने का प्रयत्न कर सकूंगी।"

ब्राह्मण ने कहा—"देवी! आप इस बारे में क्या कर सकेंगी? फिर भी बताने में तो कोई हर्ज है नहीं! सुनिये—इस नगरी के नजदीक एक गुफा है जिसमें बक नामक एक बड़ा अत्याचारी राक्षस रहा करता है। पिछले तेरह वर्ष से इस नगरी के लोगों पर वह बड़े जुल्म ढा रहा है। इस देश का राजा एक क्षत्रिय है जो वेत्रकीय नाम के नगर में रहता है। लेकिन वह इतना निकम्मा है कि प्रजा को राक्षस के अत्याचार से

बचा नहीं रहा है। इससे बकासुर नगर के लोगों को जहां देखता, मार-कर खा जाता था। क्या स्त्रियां, क्या बूढ़े, क्या बच्चे, कोई भी इस राक्षस के अत्याचार से न बच सके। इस हत्याकांड से घबराकर नगर के लोगों ने मिलकर उससे बड़ी अनुनय-विनय की कि कोई-न-कोई नियम बना ले। लोगों ने कहा—"इस तरह मनमानी हत्या करना तुम्हारे भी हक में ठीक नहीं है। मांस, अन्न, दही, मदिरा आदि तरह-तरह की खाने-पीने की चीजें जितनी तुम चाहो उतनी हांडियों में भरकर व बैल-गाड़ियों में रखकर हम तुम्हारी गुफा में प्रति सप्ताह भेज दिया करेंगे। गाड़ी चलाने वाला आदमी व गाड़ी खींचने वाले दो बैल भी तुम्हारे ही खाने के लिए होंगे। इनको छोड़कर औरों को तंग न करने की कृपा करो।" बकासुर ने लोगों की यह बात मान ली और तब से इस सम-झौते के अनुसार यह नियम बना हुआ है कि लोग बारी-बारी से एक-एक आदमी और खाने की चीजें हर सप्ताह उसे पहुंचा दिया करते हैं और उसके बदले में यह बलशाली राक्षस इस देश की बाहरी शत्रुओं और हिंस्र जन्तुओं से रक्षा करता है।

"जिस किसी ने भी इस मुसीबत से देश को छुड़ाने का प्रयत्न किया, उसको तथा उसके बाल-बच्चों तक को इस राक्षस ने तत्काल ही मारकर खा लिया। इस कारण किसी की हिम्मत भी नहीं पड़ती है कि इसके विरुद्ध कुछ करे। देवी, हमारे ऊपर जो राजा बन बठा है उसमें तो इतनी भी शक्ति नहीं कि इस राक्षस के पंजे से हमें छुड़ाये। जिस देश का राजा शक्ति-सम्पन्न न हो उस देश की प्रजा के सन्तान ही न होनी चाहिएं। जब खुद राजा कमजोर हो—देश की रक्षा करने योग्य न हो—तो ब्याह करना ही नहीं चाहिए, न धन ही कमाना चाहिए। राजा उसके योग्य न होने पर पत्नी या संपत्ति का क्या ठिकाना है? हमारी कष्ट-कथा यह है कि इस सप्ताह में उस राक्षस के खाने के लिए आदमी और भोजन भेजने की हमारी बारी है। किसी गरीब आदमी को खरीद कर भेजना चाहूं तो उसके लिए मेरे पास इतना धन भी नहीं है। स्त्री-

बच्चों को अकेले भेजना मुझ से नहीं हो सकता। अब तो मैंने यही सोचा है कि सबको साथ लेकर ही राक्षस के पास पहुंच जाऊंगा। हम सब एक ही साथ उस पापी के पेट में चले जायं यही अच्छा होगा। आपने पूछा सो आपको बता दिया। यह कष्ट दूर करना आपके भी बस में नहीं है, देवी।"

ब्राह्मण की बात का कोई उत्तर देने से पहले कुन्ती ने भीमसेन से कुछ सलाह की। उसने लौटकर कहा--"विप्रवर, आप इस बात की चिन्ता छोड़ दें। मेरे पांच बेटे हैं, उनमें से एक आज राक्षस के पास भोजन ले जायेगा।"

सुनकर ब्राह्मण चौंक पड़ा और बोला--"आप भी कैसी बात कहती हैं? आप हमारे अतिथि हैं। हमारे घर में आश्रय लिये हुए हैं। आपके बेटे को मृत्यु के मुंह में मैं भेजूं, यह कहां का न्याय है? मुझसे यह हो ही नहीं सकता।"

ब्राह्मण को समझाते हुए कुन्ती बोली--"द्विजवर! घबराइये नहीं। जिस बेटे को मैं राक्षस के पास भेजने वाली हूं वह कोई ऐसा-वैसा नहीं है। वह ऐसे मंत्र सीखा हुआ है कि जिसके बल से इस अत्याचारी राक्षस का भोजन बनने के बजाय उसका काम तमाम करके लौट आवेगा। कई बलिष्ठ राक्षसों को उसके हाथों मारे जाते मैं स्वयं देख चुकी हूं। इसलिए आप किसी बात की चिंता न करें। हां, इस बात का ध्यान रखें कि किसीको इस बात की कानों-कान खबर न हो। क्योंकि यदि यह बात फैल गई, तो फिर मेरे बेटे की विद्या आगे काम न देगी।"

माता कुन्ती को डर था कि यदि यह बात फैल गई तो दुर्योधन और उनके साथियों को पता लग जायगा कि पांडव एकचक्रा नगरी में छिपे हुए हैं। इसीसे उसने ब्राह्मण से इस बात को गुप्त रखने का आग्रह किया था।

कुन्ती ने जब भीमसेन को बताया कि उसे बकासुर के पास भोजन-सामग्री लेकर जाना होगा, तो वह फूला न समाया। उसके अंग-अंग में

बिजली-सी दौड़ गई। जब पांचों भाई भिक्षा मांगकर घर लौटे तो युधिष्ठिर ने देखा कि भीमसेन के मुख पर असाधारण आनन्द की झलक है। युधिष्ठिर ने तुरत ही ताड़ लिया कि भीमसेन को कोई बड़ा काम करने का मौका मिला है। माता कुन्ती से उन्होंने पूछा--

"मां, आज भीमसेन बड़ा प्रसन्न दिखाई दे रहा है ? क्या बात है ? कोई भारी काम करने की तो उसने नहीं ठानी है ?"

कुन्ती ने जब सारी बात बताई, तो युधिष्ठिर खीज उठे। बोले-- "यह तुम कैसा दुस्साहस करने चली हो मां ! भीमसेन ही के बल-बूते पर तो जरा निश्चिन्त हो पाये हैं। दुष्टों ने छल-प्रपंच रचकर हमारा जो राज्य छीन लिया है उसे भी तो हम इसीके शौर्य और बल से वापस लेने की आशा कर रहे हैं। अगर भीमसेन न होता, तो लाख के भवन की जलती आग से हम भला बच सकते थे ? ऐसे भीम को--ऐसे अपने पुत्र को--गंवाने की आपको भी खूब सूझी ! लगातार दुःख झेलने के कारण कहीं बुद्धि खो तो नहीं बैठी हो मां !" युधिष्ठिर की इन कड़ी बातों का उत्तर देते हुए कुन्ती बोली--"बेटा, युधिष्ठिर ! इन ब्राह्मण के घर में हमने कई दिन आराम से बिताये। जब इन पर बिपता पड़ी है, तो मनुष्य होने के नाते हमें उसका बदला चुकाना ही चाहिए। मैं बेटा भीम की शक्ति और बल से अच्छी तरह परिचित हूं। तुम इस बात की चिंता मत करो। जो हमें वारणावत से यहां तक उठा लाया, जिसने हिडिंब का वध किया, उस भीम के बारे में मुझे न डर है न चिंता। भीम को बकासुर के पास भेजना हमारा कर्त्तव्य है।"

इसके बाद नियम के अनुसार नगर के लोग मांस, मदिरा, अन्न, दही आदि खाने-पीने की चीजें गाड़ी में रखकर ले आये। गाड़ी में दो काले बैल जुते हुए थे। भीमसेन उछलकर गाड़ी में बैठ गया। शहर के लोग भी बाजे बजाते कुछ दूर तक उसके पीछे-पीछे चले। एक निश्चित स्थान पर लोग रुक गये और अकेला भीमसेन गाड़ी दौड़ाता हुआ आगे गया।

गुफा के नजदीक पहुंच कर भीमसेन ने देखा कि रास्ते में जहां-तहां हड्डियां पड़ी हुई हैं; खून के बहने के चिह्न, मनुष्यों के व जानवरों के बाल व खाल इधर-उधर पड़े हुए हैं। कहीं टूटे हुए हाथ-पांव के टुकड़े हैं तो कहीं धड़ पड़े हुए हैं। चारों तरफ बड़ी बदबू आ रही है। ऊपर बाज और चीलें मंडरा रहीं हैं।

इस वीभत्स दृश्य की तनिक भी परवा न करते हुए भीमसेन ने गाड़ी वहीं खड़ी कर दी और मन-ही-मन कहा—"ऐसा स्वादिष्ट भोजन फिर थोड़े ही मिलेगा! राक्षस के साथ लड़ने के बाद खाना ठीक नहीं रहेगा; क्योंकि मार-धाड़ में ये सभी चीजें बिखर कर नष्ट हो जायेंगी और किसी काम की न रहेंगी। फिर इसके अलावा यह भी बात है कि राक्षस को मारने पर छूत लग जायगी और ऐसी हालत में तो खा भी न सकूंगा, इसलिए यही ठीक है कि इन चीजों को अभी चट कर जाऊं।"

उधर राक्षस बिचारा मारे भूख के तड़प रहा था। जब बहुत देर हो गई तो बड़े क्रोध के साथ गुफा के बाहर आया, तो क्या देखता है कि भीमसेन बड़े आराम से बैठा यह भोजन कर रहा है। यह देख बकासुर की आंखें क्रोध से एकदम लाल हो उठीं। इतने में भीमसेन की भी दृष्टि उस पर पड़ी। उसने हँसते हुए उसका नाम लेकर पुकारा। भीमसेन की यह ढिठाई देखकर राक्षस गुस्से से भर गया और बड़ी तेजी से भीमसेन पर झपटा। उसका शरीर बड़ा लम्बा-चौड़ा था। सिर के तथा मूछों के बाल आग की ज्वाला की तरह लाल थे। मुंह इतना चौड़ा था कि वह उसके एक कान से लेकर दूसरे कान तक फैला हुआ था। स्वरूप इतना भयानक था कि देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते थे।

भीमसेन ने बकासुर को अपनी ओर आते देख तो लिया, फिर भी उसकी तरफ पीठ फेर ली और उसकी कुछ भी परवाह न करके खाने में ही लगा रहा। इतने में राक्षस ने उसकी पीठ पर जोर का घूंसा मारा। परन्तु भीमसेन को मानो कुछ हुआ ही नहीं। वह सामने पड़ी चीजों को खाने ही में मग्न रहा। खाली हाथों काम न बनते देखकर राक्षस

ने एक बड़ा-सा पेड़ जड़से उखाड़ लिया और उसे भीमसेन पर दे मारा। पर भीमसेन ने बायें हाथ पर उसे रोक लिया और दाहिने हाथ से अपना खाना जारी रखा। जब मांस तथा अन्न खत्म हो गया, तो घड़ा भर दही पीकर उसने मुंह पोंछ लिया और तब मुड़कर राक्षस को देखा। भीम का इस प्रकार निबटना था कि दोनों में भयानक मुठभेड़ हो गई। भीमसेन ने बकासुर को ठोकरें मारकर गिरा दिया और कहा --"दुष्ट, राक्षस ! जरा विश्राम तो कर ले।"

थोड़ी देर सुस्ताकर कहा--"अच्छा ! अब उठो फिर !" बकासुर उठकर भीम के साथ लड़ने लगा। फिर भीमसेन ने उसको और ठोकर लगाकर फिर गिरा दिया। इस तरह बार-बार पछाड़ खाने पर भी राक्षस उठकर भिड़ जाता। आखिर भीम ने उसे मुंह के बल गिरा दिया और उसकी पीठ पर घुटनों की मार देकर उसकी रीढ़ तोड़ डाली।

राक्षस पीड़ा के मारे चीख उठा और उसी समय उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। उसके मुंह से खून की धारा बह निकली।

भीमसेन उसकी लाश को घसीट लाया और शहर के फाटक पर ले जाकर पटक दी ; फिर घर जाकर स्नान किया और मां को आकर सारा हाल बताया। माता कुन्ती आनन्द और गर्व के मारे फूली न समाई।

: १७ :

द्रौपदी-स्वयंवर

पांचों पांडव जिस समय एकचक्रा नगरी में ब्राह्मणों के भेस में छिपे तौर पर जीवन बिता रहे थे, उन्हीं दिनों पांचाल-नरेश की कन्या द्रौपदी के स्वयंवर की तैयारियां होने लगीं। एकचक्रा नगरी के रहने वाले ब्राह्मण यह खबर पाकर बड़े प्रसन्न हुए और स्वयंवर का तमाशा देखने तथा दान वगैरा लेने की इच्छा से पांचाल देश जाने को तैयार

हुए। पांडवों की भी इच्छा हुई कि जाकर स्वयंवर में सम्मिलित हों, पर माता कुंती से अनुमति मांगते उन्हें जरा संकोच हुआ।

पर कुंती भी दुनियादारी की बातों में कच्ची नहीं थी। बेटों के रंग-ढंग से उसने भांप लिया कि वे द्रौपदी के स्वयंवर में पांचाल देश जाना चाहते हैं। उसने युधिष्ठिर से कहा—"बेटा! इस नगरी में हम काफी दिन रह चुके हैं। यहां के वनों, उपवनों तथा दूसरे दृश्यों का भी हम काफी आनन्द ले चुके हैं। एक ही जगह रहने और एक ही दृश्य को देखते रहने से मन ऊब जाता है। तिस पर यहां भिक्षान्न भी दिन-पर-दिन कम मिलने लगा है। किसी और जगह चले जायें तो अच्छा होगा। सुनती हूं पांचाल देश की भूमि बड़ी उपजाऊ है। तो फिर वहीं क्यों न चला जाय?"

नेकी और पूछ-पूछ! पाण्डवों ने माता की बात एक स्वर से मान ली और वे पांचाल देश के लिए चल पड़े।

एकचक्रा नगरी के ब्राह्मणों के झुण्ड पांचाल देश के लिए रवाना हुए। पाण्डव भी उनके साथ ही हो लिये और कई दिन चलने के बाद राजा द्रुपद की सुन्दर राजधानी में जा पहुंचे। नगर की सैर करने, राजभवनों को देख लेने के बाद पांचों भाई माता कुंती के साथ किसी कुम्हार की झोंपड़ी में जा टिके। पांचाल देश में भी पाण्डव ब्राह्मण-वृत्ति ही धारण किये रहे। इस कारण कोई उनको पहचान न सका।

●

हालांकि राजा द्रुपद का द्रोणाचार्य के साथ समझौता हो चुका था, तो भी द्रोणाचार्य की शत्रुता का विचार करके द्रुपद सदा चिन्तित रहा करते थे। अतः अपनी शक्ति बढ़ाने तथा द्रोण की शक्ति कम करने के खयाल से पांचाल-नरेश की इच्छा थी कि द्रौपदी का ब्याह धनुष के धनी अर्जुन के साथ हो जाय। पर जब उन्होंने सुना कि पांचों पाण्डव तो वारणावत के लाख के भवन में जलकर मर गये तो राजा द्रुपद के शोक की सीमा न रही। परन्तु शीघ्र ही यह भी उनके सुनने में आया कि

पांडव मरे नहीं, उनके जीते रहने की भी संभावना की जाती है तो राजा द्रुपद की सोई आशा फिर जाग उठी। सोचा, स्वयंवर रच दूं तो शायद पाण्डव किसी तरह आकर उसमें सम्मिलित हो जायंगे।

●

स्वयंवर के लिए मंडप का बड़ा सुन्दर निर्माण हुआ। उसके चारों तरफ राजकुमारों के रहने के लिए सजाये हुए कई भवन बने हुए थे। जी लुभाने वाले खेल-तमाशों एवं प्रदर्शनों का प्रबन्ध किया गया था। दो सप्ताह तक बड़ी धूमधाम के साथ उत्सव मनाया गया।

स्वयंवर-मण्डप में एक बृहदाकार धनुष रक्खा हुआ था जिसकी डोरी फौलादी तारों की बनी थी। ऊपर काफी ऊंचाई पर एक सोने का निशाना टंगा हुआ था। निशाने के नीचे एक चमकदार यन्त्र बड़े वेग के साथ घूम रहा था। राजा द्रुपद ने घोषणा की थी कि 'जो राजकुमार उस भारी धनुष को तानकर डोरी चढ़ाये और ऊपर घूमते हुए गोल यन्त्र के मध्य में से तीर चलाकर ऊपर टंगे हुए निशाने को गिरा दे उसी को द्रौपदी वरमाला पहनायेगी।'

इस स्वयंवर के लिए दूर-दूर से कितने ही क्षत्रिय वीर आये हुए थे। मण्डप में सैकड़ों राजा इकट्ठे हुए थे जिनमें धृतराष्ट्र के सौ बेटे, अंगनरेश कर्ण, श्रीकृष्ण, शिशुपाल, जरासन्ध आदि भी शामिल थे। दर्शकों की भी बड़ी भारी भीड़ थी। सभा में सागर की लहरों के सदृश गंभीर आवाज हो रही थी। बाजे बज रहे थे, शंख आदि का मंगल-सूचक निनाद दिशाओं को गुंजा रहा था। राजकुमार धृष्टद्युम्न घोड़े पर सवार होकर आगे आया। उसके पीछे द्रौपदी हाथी पर सवार होकर आई। उसने मंगल-स्नान करके अपने केश अगरु के सुगन्धित धुंए से सुखा रखे थे। वह रेशमी साड़ी पहने थी। स्वाभाविक सौंदर्य ही मानो उसका भूषण प्रतीत होता था। राजकन्या हाथ में फूलों का हार लिये हाथी पर से उतरी और सभा में पदार्पण किया। एकत्रित राजकुमार उसकी छबि निहार कर आनन्द-मुग्ध हो गए। कनखियों से

उन्हें देखती हुई राजा द्रुपद की कन्या सभा के बीच में से होकर मण्डप में जा पहुंची ।

ब्राह्मणों ने ऊंचे स्वर से मंत्र पढ़कर अग्नि में आहुति दी और "स्वस्ति"–"स्वस्ति" कहकर आशीर्वाद दिये । धीरे-धीरे बाजों का बजना मन्द हो चला । तब राजकुमार धृष्टद्युम्न अपनी बहन का हाथ पकड़कर मण्डप के बीच में ले गया और गंभीर स्वर में घोषणा की––"मंडप में उपस्थित सब वीर सुनें; यह धनुष है, ये बाण हैं, वह निशाना है । जो भी रूपवान, बली, एवं कुलीन व्यक्ति घूमते हुए यन्त्र के बीच में से पांच बाण चलाकर निशाना गिरा देगा, तत्काल ही मेरी बहन उसकी हो जायेगी, यह सत्य है ।"

यह घोषणा करने के बाद धृष्टद्युम्न बारी-बारी से उपस्थित राजकुमारों के नाम एवं कुल का परिचय अपनी बहन को देने लगा।

इसके बाद एक-एक करके राजकुमार उठते और धनुष पर डोरी चढ़ाने जाते व चढ़ाते हुए हारते और अपमानित होकर लौट आते। कितने ही सुप्रसिद्ध वीरों को इस तरह मुंह की खानी पड़ी ।

शिशुपाल, जरासन्ध, शल्य, दुर्योधन जैसे पराक्रमी राजकुमार भी असफल हो गये ।

जब कर्ण की बारी आई तो सभा में आशा की लहर दौड़ गई। सब ने सोचा अंग-नरेश जरूर सफल हो जायेंगे । कर्ण ने धनुष उठाकर खड़ा कर दिया और तानकर प्रत्यंचा भी चढ़ानी शुरू की और अभी डोरी के चढ़ाने में बाल भर की कसर रह गई थी कि इतने में धनुष का डण्डा हाथ से छूट गया और उछल कर उसीके मुंह पर जोर से लगा। अपनी चोट सहलाता हुआ कर्ण अपनी जगह पर जा बैठा ।

इतने में उपस्थित ब्राह्मणों के बीच में से एक तरुण ब्रह्मचारी उठ खड़ा हुआ । ब्राह्मण वेष-धारी अर्जुन को यों खड़ा देखकर सभा में बड़ी हलचल मच गई । लोगों में तरह-तरह की चर्चा होने लगी और सभा में दो पक्ष हो गये। उपस्थित ब्राह्मणों में भी दो दल बन गये। स्वयंवर

के एक दल ने इस ब्रह्मचारी को खूब दाद दी। दूसरे ने उसका विरोध किया।

बहुत से ब्राह्मणों ने चिल्लाकर कहा कि जिस प्रयत्न में कर्ण और शल्य जैसे महारथी हार मान चुके हैं उसमें इस ब्राह्मण ब्रह्मचारी का हारना सारे विप्रकुल के लिए अपमान की बात हो जायगी। कुछ और ब्राह्मणों ने बड़े जोश के साथ उसका प्रतिवाद करते हुए कहा—"इस युवक में ऐसा उत्साह, ऐसा साहस झलक रहा है कि जिससे आशा होती है कि जरूर ही यह जीत जायेगा। जो काम क्षत्रियों से न हो सका, वह शायद इस ब्राह्मण के हाथों हो जाय। ब्राह्मण में शारीरिक बल भले ही कम हो, तपोबल तो है ही! तो इसके इस प्रयत्न करने में कौन-सी आपत्ति हो सकती है?" आदि अनेक चर्चाओं के बाद ब्राह्मण-समूह भी अर्जुन के प्रतियोगिता में भाग लेने के पक्ष में हो गया और सब ब्राह्मणों ने एक स्वर से तथास्तु कहकर अर्जुन को आशीर्वाद दे दिया।

इधर अर्जुन धनुष के समीप जाकर खड़ा हो गया और राजकुमार धृष्टद्युम्न से पूछा—"कुमार, क्या ब्राह्मण भी इस प्रतियोगिता में भाग लेकर लक्ष्य-बेध कर सकते हैं?"

धृष्टद्युम्न ने उत्तर दिया—"द्विजोत्तम, जो कोई भी इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर शर्त के अनुसार लक्ष्य-बेध करेगा, वह चाहे ब्राह्मण हो चाहे क्षत्रिय, वैश्य हो चाहे शूद्र, मेरी बहन उसकी पत्नी हो जायेगी। मैं यह वचन दे चुका हूं। उसे न तोड़ूंगा।"

तब अर्जुन ने भगवान् नारायण का ध्यान करके धनुष हाथ में लिया और डोरी चढ़ा दी। सारी सभा मन्त्र-मुग्ध-सी एकटक देखती रही। अर्जुन के चलाये पांच बाण घूमते हुए यन्त्र के बीच में से होते हुए ठीक लक्ष्य पर जा लगे। निशाना टूटकर गिर पड़ा।

सभा में कोलाहल मच गया। बाजे भी बज उठे। उपस्थित हजारों ब्राह्मणों ने अपने-अपने अंगोछे ऊपर फेंककर आनन्द का प्रदर्शन किया। ब्राह्मण एसे खुश हुए मानो द्रौपदी को उन सबों ने पा लिया। कोला-

हल ऐसा मचा कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता ।

उस समय राजकुमारी द्रौपदी की शोभा कुछ अनूठी हो गई थी। ब्राह्मण-वेष में खड़े अर्जुन को द्रौपदी ने वरमाला पहना दी ।

माता को यह शुभ-समाचार सुनाने के लिए युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव तीनों भाई तेजी से उठकर चले गए। परन्तु भीम नहीं गया । उसे भय था कि निराश राजकुमार कहीं अर्जुन को कुछ कर न बैठें ।

भीमसेन का अनुमान ठीक ही निकला। राजकुमारों ने बड़ी हलचल मचा दी । उन्होंने शोर मचाया--"ब्राह्मणों के लिए स्वयंवर की रीति नहीं होती । यदि इस कन्या को कोई भी राजकुमार पसन्द न था तो उसे चाहिये था कि वह कुंवारी ही रह जाती और चिता पर चढ़ जाती, बनिस्बत इसके कि वह एक ब्राह्मण की पत्नी बने। यह कैसे हो सकता है ? यह तो स्वयंवर की प्रथा पर कुठाराघात करना है। कम-से-कम धर्म की रक्षा के लिए हमें चाहिये कि इस अनुचित ब्याह को न होने दें ।"

राजकुमारों का जोश बढ़ता गया । ऐसा प्रतीत हुआ कि भारी विप्लव मच जायगा । यह हाल देखकर भीमसेन चुपके से बाहर गया; एक पेड़ को जड़ से उखाड़कर ऐसे झंझोड़ा कि उसके सारे पत्ते झड़ गये । फिर उसे मामूली लाठी की तरह कन्धे पर रखकर अर्जुन की बगल में आकर खड़ा हो गया । अर्जुन ब्राह्मण के वेष में मृग-छाला ओढ़े खड़ा था । द्रौपदी उसके मृगचर्म का सिरा पकड़े हुए चुपचाप खड़ी रही।

श्रीकृष्ण, बलराम जैसे राजा लोग विप्लव मचाने वाले राजकुमारों को समझाने लगे । वे समझाते रहे और इस बीच भीम और अर्जुन द्रौपदी को साथ लेकर कुम्हार की कुटिया की ओर चल दिये ।

जब भीम और अर्जुन द्रौपदी को साथ लेकर सभा से जाने लगे तो द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न चुपके से उनके पीछे हो लिया। कुम्हार की कुटिया में जो कुछ हुआ उसे देखकर धृष्टद्युम्न के आश्चर्य की सीमा

न रही। वह तुरन्त लौट आया और अपने पिता से कहा--"पिताजी! मुझे तो ऐसा विश्वास होता है कि हो-न-हो, ये लोग पाण्डव ही हैं। बहन द्रौपदी उस युवक की मृगछाला पकड़े बेखटके जाने लगी तो मैं भी उनके पीछे हो लिया। वे एक कुम्हार की झोंपड़ी में जा पहुंचे। वहां अग्नि-शिखा की भांति एक तेजस्वी देवी बैठी थीं। वहां जो बातें हुईं उनसे मेरा विश्वास हो गया कि वह कुंती देवी ही होनी चाहिए।"

राजा द्रुपद के बुलावा भेजने पर पांचों भाई माता कुंती और द्रौपदी को साथ लिये राज-भवन में पधारे। युधिष्ठिर ने राजा द्रुपद को अपना सही परिचय दे दिया। यह जानकर कि ये पाण्डव हैं, राजा द्रुपद फूले न समाये। "महाबली अर्जुन मेरी बेटी के पति हो गये हैं तो फिर अब द्रोणाचार्य की शत्रुता की मुझे चिन्ता ही न रही!" यह विचार कर उन्होंने संतोष की सांस ली।

किंतु जब युधिष्ठिर ने बताया कि पांचों भाई एक-साथ द्रौपदी से ब्याह करने का निश्चय कर चुके हैं तो पांचाल-राज को बड़ा अचरज हुआ और घृणा भी। पाण्डवों के निश्चय का विरोध करते हुए वह बोले--"यह कैसा अन्याय है! यह विचार किसी भी समय धर्म नहीं माना गया। संसार की प्रचलित रीति के विरुद्ध है। ऐसा अनुचित विचार आपके मन में उठा ही कैसे?"

इसका समाधान करते हुए युधिष्ठिर ने कहा--"राजन्! क्षमा करें। हम में यह बात पक्की हुई है कि जो कुछ प्राप्त हो, सब बांटकर समान रूप से भोगें। भारी विपदा के समय हमने यह निश्चय किया था। हमारी माता का भी यही कहना था। अब हम इससे विमुख नहीं हो सकते।"

राजा द्रुपद ने कहा--"यदि आप, कुंती देवी, धृष्टद्युम्न, द्रौपदी आदि सब इस बात को उचित समझें तो फिर ऐसा ही हो।" और फिर सबकी सम्मति से द्रौपदी के साथ पांचों पाण्डवों का ब्याह हो गया।

: १८ :

इन्द्रप्रस्थ

पांचालराज की कन्या के स्वयंवर में जो कुछ हुआ, उसकी खबर जब हस्तिनापुर पहुंची, तो धर्मात्मा विदुर बड़े खुश हुए। धृतराष्ट्र के पास दौड़े गये और बोले––“धृतराष्ट्र, हमारा कुल शक्ति-सम्पन्न हो गया है। राजा द्रुपद की पुत्री हमारी बहू बन गई है। हमारे भाग्य जाग गये। आज बड़ा सुदिन है।”

अन्धे धृतराष्ट्र अपने बेटे के असीम प्रेम के कारण बुद्धि गंवा बैठे थे। विदुर की बात का उन्होंने उल्टा ही मतलब लगाया। दुर्योधन भी तो स्वयंवर में गया था न! सो उन्होंने समझा कि मेरे ही बेटे दुर्योधन ने द्रौपदी को स्वयंवर में जीत लिया। बोले––“अहोभाग्य! अहोभाग्य!! अभी जाकर बहू द्रौपदी को ले आओ। पांचालराज की बेटी का खूब धूमधाम से स्वागत करने का प्रबन्ध करो। चलो, जल्दी करो।”

तब विदुर ने असली बात उन्हें बता दी और बोले––“भाग्य के बली पाण्डव अभी जीवित हैं। राजा द्रुपद की कन्या को स्वयंवर में अर्जुन ने प्राप्त किया है। पांचों भाइयों ने विधिपूर्वक द्रौपदी के साथ ब्याह कर लिया है। देवी कुन्ती के साथ वे सब द्रुपद के यहां कुशल से हैं।”

विदुर की बातों से धृतराष्ट्र की आशा पर मानों पानी फिर गया। फिर भी अपनी निराशा प्रकट न करके बड़े हर्ष का बहाना करते हुए बोले––“भाई विदुर! तुम्हारी बातों से मुझे असीम आनन्द हो रहा है। क्या सचमुच मेरे प्यारे भाई पाण्डु के पुत्र जीवित हैं? कुशल से तो हैं? मैं कितना शोक मना रहा था, कितना व्याकुल हो रहा

था कि वे जलकर मर गये! तुम्हारी बातों ने अब मेरे तप्त हृदय में मानों अमृत बरसा दिया। आनन्द से मैं फूला नहीं समाता। राजा द्रुपद की बेटी हमारी बहू बन गई है, यह बड़ा ही अच्छा हुआ। हमारे अहोभाग्य!"

उधर दुर्योधन को जब मालूम हुआ कि पांचों पाण्डवों ने लाख के घर की भीषण आग से किसी तरह बचकर और एक बरस तक कहीं छिपे रहने के बाद अब पराक्रमी पांचालराज की कन्या से ब्याह कर लिया है और पहले से भी अधिक शक्तिशाली बन गये हैं तो पांडवों के प्रति उसके मन में ईर्षा की आग अधिक प्रबल हो उठी। पुराना बैर फिर से जाग उठा।

दुर्योधन और दुःशासन ने शकुनि को अपना दुखड़ा सुनाया--"मामा, अब क्या करें? निकम्मे पुरोचन ने हमें कहीं का न रक्खा! हमारी सब चालें बेकार हो गईं। सचमुच हमारे शत्रु पाण्डव होशियारी में हमसे कहीं बढ़े-चढ़े निकले। दैव भी उन्हीं का साथ दे रहा है। मृत्यु तो उनके पास तक नहीं फटकती। तिस पर द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न और शिखण्डी भी उनके साथी बन गये हैं। मामा, हमें अब डर लगने लगा है। आप कुछ-न-कुछ उपाय बताइए।"

कर्ण और दुर्योधन धृतराष्ट्र के पास एकान्त में गये और उनसे दुर्योधन ने कहा, "पिताजी, चाचा से आपने कैसे कहा कि हमारे भाग्य खुल गये हैं? कहीं शत्रु की बढ़ती से भी किसी के भाग्य खुलते हैं? पाण्डव तो हमारे शत्रु हैं। उनकी बढ़ती हमारे नाश ही का कारण बनेगी। हमने कितनी ही चालें चली थीं फिर भी उनका कुछ बिगाड़ न सके। हमारे सब प्रयत्न उलट कर हमपर आफत ढा देंगे, यह भी क्या आप नहीं देखते? चाहे जो हो, हमें चाहिये कि अभी पाण्डवों का नाश कर दें, नहीं तो फिर हमारी ही तबाही हो जायेगी। ऐसा कोई उपाय करें जिससे हम सदा के लिए निश्चिन्त हो जायें।"

धृतराष्ट्र ने कहा--"बेटा, तुम बिलकुल ठीक कहते हो। भैया विदुर

से मैंने जो कहा था, उसका तुम खयाल न करना। बात यह है कि विदुर को हमारे मन की बात मालूम न होनी चाहिए। इसीलिए मैंने उससे ऐसी बातें कीं। अब तुम्हीं बताओ, क्या करना चाहिये?"

दुर्योधन ने कहा--"मुझे तो चिन्ता के कारण आगा-पीछा कुछ भी नहीं सूझता। मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है। कभी कुछ सोचता हूं, कभी कुछ। फिर जो भी सूझता है, आपको बताता हूं, सुनिये। पाण्डव पांचों भाई एक मां के बेटे नहीं हैं। इस बात से लाभ उठाते हुए माद्री के बेटों तथा कुन्ती के बेटों के बीच किसी तरह फूट डाली जा सके--एक दूसरे के विरुद्ध उन्हें उभाड़ा जा सके--तो हमारा काम बन जायेगा। एक उपाय तो यह है। इसके अलावा राजा द्रुपद को बहुत-सा धन देकर किसी तरह अपने पक्ष में कर लेने का प्रयत्न किया जा सकता है। द्रुपद में और पाण्डवों में केवल यही सम्बन्ध है न, कि उनकी बेटी से इन्होंने ब्याह कर लिया है? यह नहीं कहा जा सकता कि केवल इस एक बात के लिए राजा द्रुपद हमारी मित्रता अस्वीकार कर देंगे। धन में वह शक्ति है कि जिससे असम्भव भी सम्भव बन जाता है।"

दुर्योधन की इस बात को कर्ण ने हंसी में ही उड़ा दिया। बोला--"ऐसा सोचना तो बेकार की बातें हैं।"

दुर्योधन ने कहा--"तो हमें कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे पाण्डव यहां आयें ही नहीं, क्योंकि यदि वे इधर आये तो जरूर राज्य पर भी अपना अधिकार जमाना चाहेंगे। अच्छा यही है कि यह न होने दिया जाय। इसके लिए कुछ चतुर ब्राह्मणों को यह आदेश देकर पांचाल देश भेजा जा सकता है कि वहां जाकर तरह-तरह की अफवाहें उड़ायें। पाण्डवों के पास हमारे आदमी एक-एक करके भिन्न-भिन्न रूप से जायें और उनसे कहें कि हस्तिनापुर लौटने से उनपर विपत्ति आने की सम्भावना है। इस तरह पाण्डवों के मन में भय पैदा किया जाय तो वे यहां लौटना नहीं चाहेंगे।"

दुर्योधन की इस युक्ति को भी कर्ण ने ठुकरा दिया।

फिर दुर्योधन ने कहा--"अगर यह न हो सके तो द्रौपदी द्वारा ही पांचों भाइयों में फूट पैदा कराई जा सकती है। प्रचलित रीति और मानव-स्वभाव के विरुद्ध एक स्त्री से पांच आदमियों ने एक साथ ब्याह कर लिया है। इससे हमारा काम और भी आसान होने की सम्भावना है। काम-शास्त्र के निपुण लोगों की सहायता से पाण्डवों के मन में एक-दूसरे पर तरह-तरह के सन्देह उत्पन्न किये जा सकते हैं। मेरा विश्वास है कि इससे हमारा काम अवश्य बन जायेगा। कुछ सुन्दर युवतियों के द्वारा कुन्ती के बेटों का मन फेर लिया जा सकता है। उनके चाल-चलन पर स्वयं द्रौपदी को शंका हो जाये तो उसका मन उनकी तरफ से हट जायेगा। यदि किसी एक पाण्डव के प्रति द्रौपदी का मन मैला हो जाये तो उस पाण्डव को चुपके से हस्तिनापुर ले आया जाय और फिर जो कुछ उपाय करना है उसके द्वारा करा लें।"

इस पर कर्ण को हंसी आ गई। उसने कहा--"दुर्योधन! तुम्हें उलटी ही सूझा करती है। चाल चलने से, प्रपंच रचने से, पाण्डवों को जीतने की आशा करना व्यर्थ है। जब वे यहां पर थे तब उन्हें अनुभव ही क्या था? तब तो वे उतने ही निःसहाय थे जितने पंख उगने से पहले पंछी के बच्चे होते हैं। जब उस निःसहाय अवस्था में भी तुम उनको अपनी चाल में न फंसा सके तो अब वह बात कैसे हो सकती है? अब उन्हें काफी अनुभव प्राप्त हो चुका है। एक शक्ति-संपन्न राजा के यहां उन्होंने शरण ली है। तिस पर उनके प्रति तुम्हारा बैर-भाव उनसे छिपा नहीं। इसीलिए छल-प्रपंच से अब काम नहीं बनेगा। आपस में फूट डालकर उनको हराना भी संभव नहीं। राजा द्रुपद धन के प्रलोभन में पड़ने वाले व्यक्ति नहीं हैं। लालच दिखाकर उनको अपने पक्ष में करने का विचार बेकार है। पांडवों का साथ वे कभी नहीं छोड़ेंगे। राजकुमारी द्रौपदी के मन में पांडवों के प्रति घृणा पैदा हो ही नहीं सकती। ऐसे विचारों की ओर ध्यान देना भी ठीक नहीं। हमारे पास तो केवल एक ही उपाय रह गया है और वह यह कि

पांडवों की ताकत और भी बढ़ने से पहले उन पर धावा बोल दें और युद्ध में उनको कुचल डालें। अगर हम हिचकिचाते रहे तो कितने ही और राजा उनके साथी बन जायेंगे। जब तक यादव सेना के साथ महाराज कृष्ण पांचाल राज्य में पहुंच न जायें तब तक हमें पांडवों पर चढ़ाई कर देनी चाहिए, हमें अचानक द्रुपद के राज्य पर टूट पड़ना चाहिए। तब जाकर हम पांडवों की शक्ति मिटा सकेंगे, अन्यथा नहीं। मैदान में जौहर दिखलाना, अपने बाहु-बल से काम लेना, यही क्षत्रियोचित उपाय है। कुचक्र रचने से काम नहीं बनेगा।"

वीर कर्ण की तथा अपने बेटों की भिन्न-भिन्न बातें सुनकर धृतराष्ट्र कुछ निश्चय नहीं कर सके। वे पितामह भीष्म तथा आचार्य द्रोण को बुलाकर सलाह-मशविरा करने लगे।

●

पांडु-पुत्रों के जीवित रहने की खबर पाकर पितामह भीष्म के मन में भी आनन्द की लहरें उठ रही थीं। धृतराष्ट्र ने उनसे पूछा--"पितामह, खबर मिली है कि पांडु के पुत्र जीवित हैं और पांचाल-राज के यहां कुशल से हैं। अब उनका क्या किया जाये ?"

धर्मात्मा एवं नीतिशास्त्र के ज्ञाता भीष्म ने कहा--"बेटा! वीर पांडवों के साथ संधि करके आधा राज्य उन्हें दे देना ही उचित है। सारे देश के प्रजा-जन यही चाहते हैं और खानदान की इज्जत रखने का भी यही उपाय है। लाख के भवन के जल जाने के बारे में नगर के लोग तरह-तरह की बातें कर रहे हैं। सब लोग तुम्हीं को दोषी ठहरा रहे हैं। यदि अब भी पांडवों को वापस बुला लो और उन्हें आधा राज्य दे दो तो दोष का कलंक मिटा सकोगे। मेरी तो सलाह यही है।"

आचार्य द्रोण ने भी यही सलाह दी। उन्होंने कहा--"राजन्! अभी कुशल राजदूतों को पांचाल देश में भेज दीजिये कि संधि की शर्तें तय कर आयें। फिर पांडवों को यहां बुलाकर बड़े भाई युधिष्ठिर का राज्याभिषेक करके आधा राज्य उन्हें दे दीजिए। यही मुझे भी उचित

लगता है ।"

अंगनरेश कर्ण इस अवसर पर धृतराष्ट्र के दरबार में उपस्थित था । पाण्डवों को आधा राज्य देने की सलाह उसे जरा भी अच्छी न लगी। दुर्योधन के प्रति कर्ण के हृदय में अपार स्नेह था। इस कारण द्रोणाचार्य की सलाह सुनकर उसके क्रोध की सीमा न रही। धृतराष्ट्र से बोला--"राजन्! मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि आप के धन से धनी और आपके सम्मान से प्रतिष्ठित हुए आचार्य द्रोण आपको ऐसी कुमन्त्रणा देने लगे हैं! राजन्! शासकों का कर्त्तव्य है कि मन्त्रणा देने वालों की नीयत को पहले परख लें तब फिर उनकी मन्त्रणा पर ध्यान दें। केवल शब्दों को ही महत्व न देना चाहिए।"

कर्ण की इन बातों से द्रोणाचार्य कुपित हो उठे। गरजकर बोले--"दुष्ट कर्ण! तुम राजा को गलत रास्ता बता रहे हो। तुमने शिष्टता से बातें करना भी नहीं सीखा। यदि राजा धृतराष्ट्र मेरी तथा पितामह भीष्म की सलाह न मानें तो फिर कौरवों का नाश हो कर रहेगा।"

इसके बाद धृतराष्ट्र ने धर्मात्मा विदुर से सलाह ली। विदुर ने कहा--"हमारे कुल के नायक भीष्म तथा आचार्य द्रोण ने जो बताया वही श्रेयस्कर है। वे बड़े बुद्धिमान हैं। सदा हमारी भलाई करते आये हैं। सो उनकी बातों के अनुसार ही कार्य होना चाहिए। जैसे दुर्योधन आदि आपके बेटे हैं वैसे ही पांडव भी हैं। उनकी बुराई सोचने की सलाह जो भी दे, उसे अपने कुल का शत्रु समझियेगा। कम-से-कम अपनी भलाई के लिए भी आपको पांडवों से न्यायोचित व्यवहार करना चाहिए। पांचाल-नरेश द्रुपद, उनके दोनों शक्तिमान पुत्र, यदुवंश के राजा कृष्ण, उनके साथी आदि लोग पांडवों के पक्ष में हैं। इस हालत में पांडवों को युद्ध में हराना संभव भी नहीं हो सकता। कर्ण की सलाह किसी काम की नहीं, उस पर ध्यान न देना ही ठीक है। यों ही हम पर यह दोष लगा हुआ है कि पांडवों को लाख के भवन में ठहरा कर उनको मरवा डालने का हमने प्रयत्न किया। इस धब्बे को

पहले धो डालना ही ठीक होगा। यह जानकर कि पांडव अभी जीवित हैं, हमारी सारी प्रजा आनन्द मना रही है और पांडवों के दर्शन के लिए बड़ी उत्सुक हो रही है। दुर्योधन की बात न सुनिये। कर्ण और शकुनि अभी कल के बच्चे हैं। राजनीति से अनभिज्ञ हैं। उनकी युक्तियां कभी कारगर न हो सकेंगी। इसलिए राजन्, भीष्म के ही आदेशानुसार काम कीजिएगा।"

●

अन्त में धृतराष्ट्र ने पाण्डु के पुत्रों को आधा राज्य देकर सन्धि कर लेने का निश्चय किया और पाण्डवों को द्रौपदी तथा कुन्ती सहित सादर लिवा लाने के लिए विदुर को पांचाल देश भेजा।

विदुर भांति-भांति के रत्न और अमूल्य उपहार साथ लेकर एक शीघ्रगामी रथ पर सवार हो पांचाल देश को रवाना हो गये।

पांचाल देश में पहुंच कर विदुर ने राजा द्रुपद को अमूल्य उपहार भेंट करके उनका सम्मान किया और राजा धृतराष्ट्र की तरफ से अनुरोध किया कि पाण्डवों को द्रौपदी सहित हस्तिनापुर जाने की अनुमति दें।

विदुर का अनुरोध सुनकर राजा द्रुपद के मन में शंका हुई। उनको धृतराष्ट्र पर विश्वास न आया। सिर्फ इतना कह दिया कि पाण्डवों की जैसी इच्छा हो वही करना ठीक होगा।

तब विदुर ने माता कुन्ती के पास जाकर दण्डवत की और अपने आने का कारण उसे सुनाया। कुन्ती के भी मन में शंका हुई कि कहीं पुत्रों पर कुछ आफत न आ जाये। चिन्तित भाव से बोलीं-- "विचित्रवीर्य के पुत्र विदुर! तुम्हीं ने मेरे बेटों की रक्षा की थी। इन्हें अपने ही बच्चे समझना। तुम्हारे ही भरोसे इन्हें छोड़ती हूं और तुम जो कहोगे वही करूंगी।"

विदुर ने उन्हें बहुत समझाया और धीरज देते हुए कहा-- "देवी, आप निश्चिन्त रहें। आपके बेटों का कोई कुछ नहीं बिगाड़

सकेगा। वे संसार में बड़ा यश कमायेंगे और विशाल राज्य के अधीश बनेंगे। बेखटके हस्तिनापुर चलिए।" आखिर द्रुपद राजा ने भी अनुमति दे दी। विदुर के साथ कुन्ती और द्रौपदी समेत पाण्डव हस्तिनापुर के लिए रवाना हो गये।

●

उधर हस्तिनापुर में पाण्डवों के स्वागत की बड़ी धूम-धाम से तैयारियां होने लगीं। गलियों में पानी छिड़का गया था और रंग-बिरंगे फूल बिछाये गये थे। सारा नगर सजाया गया था। जब पांचों पाण्डव कुन्ती और द्रौपदी के साथ नगर में प्रविष्ट हुए तो लोगों के आनन्द का पार न रहा।

जैसा कि पहले ही निश्चय हो चुका था, युधिष्ठिर का यथा-विधि राज्याभिषेक हुआ और आधा राज्य पाण्डवों के अधीन किया गया। राज्याभिषेक के उपरान्त युधिष्ठिर को आशीर्वाद देते हुए धृतराष्ट्र ने कहा--"बेटा! भैया पांडु ने इस राज्य को अपने बाहु-बल से बहुत विस्तृत किया था। मेरी कामना यही है कि उन्हीं के समान यशस्वी बनो और सुख से रहो। तुम्हारे पिता पांडु मेरा कहा कभी नहीं टालते थे--प्रेम-भाव से उसे मानते थे। तुमसे भी मुझे वही आशा है। मेरे अपने बेटे बड़े दुरात्मा हैं। एक साथ रहने से संभव है तुम दोनों के बीच वैर बढ़े। इस कारण मेरी सलाह है कि तुम खांडवप्रस्थ को अपनी राजधानी बना लेना और वहीं से राज करना। इससे तुममें और मेरे बेटों में शत्रुता होने की संभावना न रहेगी। खांडवप्रस्थ वह नगरी है जो पुरु, नहुष, ययाति जैसे हमारे प्रतापी पूर्वजों की राजधानी रही है। हमारे वंश की पुरानी राजधानी खांडवप्रस्थ को फिर से बसाने का यश और श्रेय तुम्हीं को प्राप्त हो!"

धृतराष्ट्र के मीठे बचन मान कर पांडवों ने खांडवप्रस्थ के भग्नाविशेषों पर जो कि उस समय तक निर्जन वन ही बन चुका था, निपुण शिल्पकारों से एक नये नगर का निर्माण कराया। सुन्दर भवनों, अभेद्य दुर्गों आदि से सुशोभित उस नगर का नाम इन्द्रप्रस्थ रखा गया।

इन्द्रप्रस्थ की शान एवं सुन्दरता ऐसी थी कि सारा संसार उसकी प्रशंसा करते न थकता था। अपनी इस राजधानी में द्रौपदी और माता कुंती के साथ पांचों पांडव तेईस बरस तक सुखपूर्वक जीवन बिताते हुए न्यायपूर्वक राज करते रहे।

: १९ :

सारंग के बच्चे

पशु-पक्षियों में भी मनुष्य जैसे व्यवहार का आरोप करना पौराणिक आख्यायिकाओं की एक खूबी है। पुराणों के पशु-पक्षी भी मनुष्य की-सी बोली बोलते हैं और लौकिक न्याय एवं दार्शनिक सिद्धांत तक के उपदेश देने लगते हैं; परन्तु साथ ही हर प्राणी के अपने स्वभाव की भी झांकी स्थान-स्थान पर पाई जाती है।

स्वाभाविकता एवं कल्पना का यह सुन्दर सम्मिश्रण पौराणिक साहित्य की एक ख़ास विशेषता है।

रामायण में हनुमान को बड़ा बुद्धिमान तथा नीतिकुशल चित्रित किया गया है। बड़े बुद्धिमान तथा नीतिकुशल के रूप में वर्णित उन्हीं हनुमान ने रावण के निवास में एक सुन्दर स्त्री को सीता देवी समझ लिया तो असीम आनन्द के कारण बन्दरों की तरह उछल-कूद मचाने लगे! आखिर थे भी वे बन्दर ही! रामायण में यह एक ऐसा प्रसंग है कि जिसका आनन्द रामायण के सभी सहृदय पाठक लेते नहीं थकते।

खांडवप्रस्थ के खंडहरों पर पांडवों ने नये-नये नगर तथा गांव बसाये और अपने राज्य की नींव डाली। परन्तु पांडवों के समय तक पुरु वंश की पुरानी राजधानी खांडवप्रस्थ भयानक वन में परिवर्तित हो चुकी थी। हिंस्र जन्तुओं तथा पक्षियों ने उसे अपना निवास-स्थान बना

लिया था। कितने ही दुष्ट एवं डाकू उस वन को अपना अड्डा बनाये हुए थे और निर्दोष लोगों को बेहद पीड़ा पहुंचाते थे। कृष्ण और अर्जुन ने यह हाल देखा तो निश्चय किया कि इस जंगल को जला डालें और फिर नये नगर बनवा लें।

इस वन के एक पेड़ पर जरिता नामक एक सारंग चिड़िया अपने चार बच्चों के साथ रहती थी। बच्चे अभी इतने नन्हे-से थे कि उनके पर तक उग नहीं पाये थे। जरिता और उसके बच्चों को इस तरह छोड़कर उसका मर्द किसी दूसरी सारंग चिड़िया के साथ रमता फिरता था। बिचारी जरिता अपने बच्चों के लिए कहीं से चारा लाकर देती और उनको पालती-पोसती थी। इतने में एक दिन श्रीकृष्ण एवं अर्जुन की आज्ञानुसार जंगल में आग लगा दी गई। आग की प्रचंड ज्वाला में सारा जंगल भस्मसात् होने लगा। जंगल के जानवर इधर-उधर भागने लगे। सारे वन में तबाही मच गई।

इस भीषण आग को देखकर जरिता घबरा उठी और आंसू बहाती हुई विलाप करने लगी--"हाय, अब मैं क्या करूं? भयंकर आग हमारे संसार को जलाती हुई निकट आ रही है। आग की गरमी हर घड़ी समीप होती जा रही है। अभी थोड़ी ही देर में हमें भी यह जला डालेगी! वह देखो! पेड़ धड़ाम से गिरते जा रहे हैं। उनके गिरने की आवाज सुनकर जंगली जानवर घबराकर इधर-उधर भाग रहे हैं। हाय, मेरे निःसहाय बच्चो! न तुम्हारे पर हैं, न पैर ही! अभी तुम भी तो आग की भेंट हो जाओगे! हा दैव! मैं क्या करूं? तुम्हारे निर्दय पिता हम सबको छोड़कर चले गये हैं। तुम्हें साथ लेकर उड़ने की भी शक्ति मुझमें नहीं है। अब मैं तुम्हें कैसे बचाऊँ?"

मां का यह करुण विलाप सुन कर बच्चे बोले--"मां, दुःखी न होओ! हमारे ऊपर तुम्हारा जो प्रेम है वह तुम्हारे शोक का कारण न बने। हम यहां मर भी जायं तो भी कुछ बिगड़ नहीं जायेगा। हम सद्गति को प्राप्त होंगे। किन्तु तुम भी हमारे संग आज भेंट हो जाओगी

तो हमारे वंश का अन्त ही हो जायगा। इसलिए तुम अग्नि से बचकर कहीं दूर चली जाओ। यदि हम मर जायें तो भी तुम्हारे और सन्तान हो सकती है। इसलिए मां, तुम सोच-विचार कर वही करो जिससे खानदान की भलाई हो।"

बच्चों के यों कहने पर भी उन्हें छोड़ जाने को मां का जी नहीं मानता था। उसने कह दिया—"मैं भी यहीं तुम्हारे साथ अग्नि की बलि चढ़ जाऊंगी।"

●

मन्दपाल नाम के एक दृढ़व्रती ऋषि आजीवन विशुद्ध ब्रह्मचारी रहकर स्वर्ग सिधारे। जब वे स्वर्ग के द्वार पर पहुँचे तो वहां पर द्वारपालों ने रोका और उन्हें यह कहकर लौटा दिया कि जिन्होंने अपने पीछे एक भी सन्तान न छोड़ी हो उनके लिए स्वर्ग का द्वार नहीं खुलता। इस पर ऋषि ने सारंग का जन्म लिया और जरिता नाम की सारंग से सहवास किया। जरिता जब चार अण्डे दे चुकी थी, तब ऋषि ने उसे छोड़ दिया और लपिता नाम की एक और सारंग के साथ रमने लग गये।

समय पाकर जरिता के चारों अण्डे फूटे और उनमें से चार बच्चे निकले। ऋषि के बच्चे होने के कारण उनमें स्वाभाविक विवेक था। यही कारण था कि उन्होंने अविचलित होकर अपनी मां को यों धीरज बंधाया।

मां ने अपने बच्चों से कहा—"बच्चो! इस पेड़ के नजदीक एक चूहे का बिल है। मैं तुम्हें उठाकर बिल के द्वार पर छोड़ती हूं। तुम धीरे से बिल के भीतर घुसकर कहीं छिप जाना जिससे आग की गरमी न लगे। मैं बिल का द्वार मिट्टी से बन्द कर दूंगी और जब आग बुझ जायेगी तो मिट्टी हटा दूंगी और तुम्हें बाहर निकाल लूंगी।"

किन्तु बच्चों ने न माना। वे बोले—"बिल के अन्दर जायेंगे तो वहां का चूहा हमें खा लेगा। चूहे से खाया जाना अपमानजनक है। ऐसी मृत्यु

से तो यही अच्छा है कि हम आग में ही जलकर मर जायें।"

"अरे, इस बिल में चूहा नहीं है। थोड़ी देर हुई मैंने देखा था कि उसे एक चील उठा ले गई।" मां ने बच्चों को समझाते हुए कहा।

बच्चों ने फिर भी नहीं माना। कहा--"एक चूहे को चील उठा ले गई तो विपद थोड़े ही दूर हो गई। कितने ही और चूहे बिल के अन्दर रहते होंगे। मां! तुम जल्दी चली जाओ। आग की लपटें नजदीक आ रही हैं। कुछ ही क्षण में आग इस पेड़ को घेर लेगी। इससे पहले तुम अपने प्राण बचा लो। बिल के अन्दर छिपना हमसे नहीं हो सकेगा। और हमारी खातिर तुम भी क्यों व्यर्थ जान गँवाती हो? आखिर हमारा तुम्हारा नाता ही क्या है? हमने तुम्हारी कभी कुछ भलाई भी की है? कुछ नहीं। उलटे हम तो तुम्हें कष्ट ही पहुँचाते रहे, सो तुम हमें छोड़ कर चली जाओ। अभी तुम्हारी जवानी नहीं बीती है। तुम्हें अभी और सुख भोगना है। यदि हम आग की भेंट हो गये तो निश्चय ही हमें स्वर्ग प्राप्त होगा। यदि बच गये तो आग के बुझ जाने पर तुम फिर पास आ सकती हो। इसलिए अब तुम चली जाओ!"

बच्चों के यों आग्रह करने पर मां उड़कर चली गई।

थोड़ी देर में बच्चों वाले पेड़ पर भी आग लग गई; पर बच्चे तनिक भी विचलित न हुए। बेखटके विपत्ति की प्रतीक्षा करते आपस में बातचीत करते रहे।

जेठे ने कहा--"समझदार व्यक्ति आने वाली विपत्ति को पहले ही से ताड़ लेता है और इस कारण विपत्ति पड़ने पर घबराता नहीं।"

छोटे बच्चों ने कहा--"तुम बड़े साहसी और बुद्धिमान हो। तुम्हारे जैसे धीर विरले ही मिलते हैं।"

फिर सब बच्चे प्रसन्न मुख से अग्नि की स्तुति करने लगे, मानों वेदों का अध्ययन किये हुए ब्राह्मण ब्रह्मचारी हों--हे अग्निदेवता, हमारी मां चली गई है। पिता को तो हम जानते ही नहीं। जब से हम अण्डा तोड़ कर बाहर निकले थे तभी से पिताजी के दर्शन नहीं हुए। धुएँ की ध्वजा

फहराने वाले आदि देवता ! अभी हमारे पर तक उगे नहीं हैं। हम अनाथ बच्चों के तुम्हीं रक्षक हो ! तुम्हारी ही हम शरण लेते हैं। हमारा कोई नहीं है। हमारी रक्षा करो।"

और आश्चर्य की बात हुई कि पेड़ पर जो आग लगी तो उसने उन बच्चों को छूआ तक नहीं। सारा वन-प्रदेश जलकर राख का ढेर बन गया। पर बच्चों का कुछ न बिगड़ा। उनके प्राण बच गये।

जब आग बुझ गई तो जरिता बड़े उद्विग्न भाव से पेड़ पर भागी आई। वहां क्या देखती है कि बच्चे कुशलपूर्वक आपस में बातें कर रहे हैं। उसके आश्चर्य और आनन्द का पार न रहा। एक-एक बच्चे को गले लगाया और बार-बार उनको चूमकर प्यार करती रही।

उधर सारंग पंछी व्यथित हृदय से अपनी नई प्रेमिका लपिता के पास बैठा चीख-चीखकर कह रहा था—"मेरे बच्चे अग्नि की भेंट हुए होंगे ! हाय, मेरे बच्चे जल गये होंगे !"

इस पर लपिता आग-बबूला हो उठी। बोली—"अच्छा, यह बात है ! मैं तो पहले ही से जानती थी कि यह बात है। आप ही ने तो कहा था कि कि जरिता के बच्चों को आग नहीं जला सकती। आप ही ने तो बताया था कि अग्नि-देवता ने आपको ऐसा वरदान दिया है। तो फिर अब क्यों चीखने लगे ? साफ-साफ क्यों नहीं बता देते कि मुझे तुमसे घृणा हो गई है ? यदि जरिता के पास जाने की इच्छा है तो झूठ-मूठ बच्चों का रोना क्यों रो रहे हो ? सच्ची बात बता देते और खुशी से चले जाते। अविश्वसनीय पति के धोखे में आई हुई कितनी ही अबलाओं की भांति मैं भी दुखिया जंगल में फिरती रहती ! जाओ, शौक से चले जाओ"

"तुम्हारा विचार ठीक नहीं।" सारंग रूपी मन्दपाल मुनि ने कहा। "सन्तान ही की इच्छा से मैंने पंछी का जन्म लिया है। मुझे सचमुच अपने बच्चों की चिन्ता सता रही है।"

अपनी नई पत्नी को यों समझा कर सारंग रूपी मन्दपाल

अपनी पहली पत्नी जरिता के पास उड़ गये ।

जरिता ने अपने पति की तरफ आंख तक उठाकर नहीं देखा । अपने बच्चों के बच जाने की खुशी में वह फूली न समा रही थी। कुछ देर बाद पति से बड़ी उदासीनता के साथ पूछा--"कैसे आना हुआ ?"

मन्दपाल ने और नजदीक आकर कहा--"कैसे आना हुआ ! कुशलसे तो हैं ? इनमें बड़ा कौन है ?"

जरिता ने कहा--"कोई बड़ा हो या कोई छोटा, आपको इससे मतलब ? मुझे निःसहाय छोड़कर जिसके पीछे गये थे उसी के पास चले जाओ और मौज उड़ाओ ।"

मन्दपाल ने कहा--"मैंने अक्सर देखा है, अधिक बच्चों की मां होने पर कोई भी स्त्री अपने पति की परवाह नहीं करती । यही कारण है कि निर्दोष वसिष्ठ का भी उनकी पत्नी अरुन्धती ने बड़ा अनादर किया था ।

"ऐसी बात नहीं है कि मुझे तुम लोगों की चिंता नहीं थी । मैंने अग्नि से प्रार्थना की थी कि वह मेरे बच्चों की रक्षा करे और उन्होंने मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया था । मैं तो तुमसे पुत्र की कामना से मिला था और उसी कामना से लपिता के पास गया था । तुमको बुरा न मानना चाहिए और सौत से द्वेष नहीं करना चाहिए ।"

: २० :

जरासंध

इन्द्रप्रस्थ में रहते हुए प्रतापी पाण्डव बड़े न्याय के साथ प्रजा-पालन करते रहे । युधिष्ठिर के भाइयों तथा साथियों की इच्छा हुई कि वे राजसूय-यज्ञ करके सम्राट् की पदवी धारण करें । इससे प्रतीत होता है, साम्राज्य की लालसा उन दिनों भी काफ़ी थी ।

इस बारे में परामर्श करने के लिए युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को सन्देश भेजा। जब श्रीकृष्ण को मालूम हुआ कि युधिष्ठिर उनसे मिलना चाहते हैं तो शीघ्रगामी रथ पर चढ़कर तत्काल ही द्वारिका से चल पड़े और इन्द्रप्रस्थ पहुंचे।

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा--"मित्रों का कहना कि मैं राजसूय-यज्ञ करके सम्राट् बन जाऊं। परन्तु राजसूय-यज्ञ वही करने योग्य है जो संसार भर के नरेशों का पूज्य हो, उनसे सम्मानित हो। आप ही इस विषय में मुझे सही सलाह दे सकते हैं; क्योंकि आप ऐसे व्यक्ति नहीं हैं जो मेरे उपर स्नेह के कारण मेरी कमियों पर ध्यान न दें और गुणों ही को बढ़ा-चढ़ा कर बतायें। प्रायः लोग अपने स्वार्थ साधने की इच्छा से और इस विचार से कि सुनने वाले को प्रिय लगे ऐसी मन्त्रणा दे डालते हैं जो सचवाई के विरुद्ध हो, सही न हो; किन्तु मुझे विश्वास है कि आप ऐसा न करेंगे।"

युधिष्ठिर की बात का उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण बोले--"मगध देश के राजा जरासन्ध ने सब राजाओं पर विजय पाकर उन्हें अपने अधीन कर रखा है। क्षत्रिय राजाओं पर जरासंध की धाक जमी हुई है। सभी राजा उसका लोहा मान चुके हैं और उसके नाम से डरते हैं, यहां तक कि शिशुपाल जैसे शक्ति-सम्पन्न राजा लोग भी उसकी अधीनता स्वीकार कर चुके हैं और उसकी छत्रछाया में रहना पसन्द करते हैं। अतः जरासन्ध के रहते हुए और कौन सम्राट् की पदवी प्राप्त कर सकता है? जब महाराज उग्रसेन के नासमझ लड़के कंस ने जरासन्ध की बेटी से ब्याह कर लिया था और उसका साथी बन चुका था तब मैंने और मेरे बन्धुओं ने जरासन्ध के विरुद्ध युद्ध किया। तीन बरस तक हम उसकी सेनाओं के साथ लगातार लड़ते रहे और आखिर हार गये। जरासन्ध के भय से हमें मथुरा छोड़कर दूर पश्चिम में द्वारिका जाकर शहर और दुर्ग बना रहना पड़ा था। आपके साम्राज्याधीश होने में दुर्योधन और कर्ण को आपत्ति न भी हो, फिर भी जरासन्ध से इसकी आशा

रखना बेकार है। बगैर युद्ध के जरासन्ध इस बात को मान ही नहीं सकता। जरासन्ध ने आज तक पराजय का नाम तक नहीं जाना। ऐसे अजेय और पराक्रमी राजा जरासन्ध के जीतेजी आप राजसूय-यज्ञ कर नहीं सकेंगे। किसी-न-किसी उपाय से पहले उसका वध करना होगा, उसने जो राजे-महाराजे बन्दीगृह में डाल रक्खे हैं उनको छुड़ाना होगा। जब यह हो जायेगा तभी राजसूय-यज्ञ करना आपके लिए साध्य होगा।"

श्रीकृष्ण की ये बातें सुनकर शान्ति-प्रिय राजा युधिष्ठिर बोले—"आपका कहना बिलकुल सही है। मेरे जैसे और कितने ही राजा हैं जो अपने-अपने राज्य में बड़े प्रतापी माने जाते हैं। जो पद प्राप्त नहीं हो सकता उसकी इच्छा करना बेकार है। मेरे जैसे व्यक्ति के लिए यह उचित नहीं कि सम्राट् के सम्मानित पद की आकांक्षा रक्खे। परमात्मा की बनाई हुई यह पृथ्वी काफी विशाल है, धन-धान्य की अटूट खान है। इस विशाल संसार में कितने ही राजाओं के लिए जगह है। कितने ही नरेश अपने-अपने राज्य का शासन करते हुए इसमें सन्तुष्ट रह सकते हैं। आकांक्षा वह आग है जो कभी बुझती नहीं। इसलिए मेरी भलाई इसी में दीखती है कि साम्राज्याधीश बनने का विचार छोड़ दूं और जो कुछ ईश्वर ने दिया है उसी को लेकर सन्तुष्ट रहूं। भीमसेन आदि बन्धु तो चाहते हैं कि मैं सम्राट् बन जाऊँ; परन्तु जब पराक्रमी जरासन्ध से स्वयं आप इतने डरे हुए हैं तो फिर हम चीज ही क्या हैं?"

धर्मराज युधिष्ठिर की यह विनयशीलता भीमसेन को अच्छी न लगी। उसने कहा—"प्रयत्नशीलता राजा लोगों का खास गुण मानी जाती है। जो अपनी शक्ति को आप ही नहीं जानते उनके पौरुष को धिक्कार है। हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहना मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता। जो सुस्ती को झाड़ दे और राजनैतिक चालों को कुशलता से काम में लाये वह अपने से अधिक ताकतवर राजा को भी हार दिला सकता है। युक्ति के साथ प्रयत्न करते रहने से जीत अवश्य प्राप्त होगी। मेरा शारीरिक बल, श्रीकृष्ण की नीति-कुशलता और अर्जुन का

शौर्य एक साथ मिल जाने पर कौन-सा ऐसा पहाड़ है जो हम नहीं उठा सकते ? यदि हम तीनों एक साथ चल पड़ें तो जरासन्ध की शक्ति को चर करके लौटेंगे। आप इस बात की शंका न करें।"

यह सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा--"इसमें शक नहीं कि अत्याचारी जरासन्ध को मारना ही ठीक होगा। उसने बिना किसी अपराध के अनेक राजाओं को जेलखाने में डाल रक्खा है। उसका यह भी इरादा मालूम होता है कि जब पूरे एक सौ राजा पकड़े जा चुकेंगे तो बलि-पशुओं के स्थान पर उन राजाओं का वध करके यज्ञ का अनुष्ठान करेगा। ऐसे अत्याचारी को मारना ही न्यायोचित है। यदि भीम और अर्जुन सहमत हों तो हम तीनों एक साथ जाकर उस अन्यायी का वध करके जेल में पड़े हुए निर्दोष राजाओं को छुड़ा सकेंगे। यह बात मुझे पसन्द है।"

परंतु युधिष्ठिर को यह बात ठीक न लगी। उन्होंने कहा--"मुझे भय है कि साम्राज्याधीश बनने के फेर में पड़कर अपनी आंखों के तारे जैसे भीमसेन और अर्जुन को कहीं गंवा न बैठूं! जिस कार्य में उनके प्राणों पर बन आने की संभावना है उसके लिए उन्हें भेजने को मेरा मन नहीं मानता। मैं तो कहूंगा कि इस विचार को छोड़ देना ही अच्छा होगा।"

यह सुनकर वीर अर्जुन बोल उठा--"धिक्कार है हमें और हमारे जीवन को, यदि हम यशस्वी भरतवंश की संतान होकर भी कोई साहस का काम न करें और साधारण लोगों की भांति जीवन व्यतीत करके संसार से कूच कर जायें! हजार गुणों से विभूषित होने पर भी जो क्षत्रिय प्रयत्नशील नहीं होता, पराक्रमी नहीं होता और किसी काम को करने से हिचकिचाता रहता है, कीर्त्ति उससे मुंह मोड़कर चली जाती है। जीत उसी की होती है जो उत्साही हो।

"जो काम करने योग्य है, उसमें जीजान से जो लग जाता है उसी की जय होती है और सब साधनों के होने पर भी जिसमें जोश न हो,

हौसला न हो, संभव है, उसे हार खानी पड़े। अक्सर वे ही लोग हार खाते हैं जो अपनी शक्ति को आप नहीं जानते और जिनमें उत्साह और प्रयत्नशीलता का अभाव होता है। जिस काम को करने की हममें सामर्थ्य है, भाई युधिष्ठिर क्यों समझते हैं कि उसे हम न कर सकेंगे?

"अभी हम बड़े थोड़े ही हो गये हैं जो गेरुवा वस्त्र पहनकर जंगल में चले जायें और निःस्पृहता का व्रत रक्खें? अभी तो हम जवान हैं, हमारा खून अभी गरम है। हमारे लिए उचित यही होगा कि हम क्षत्रियोचित साहस से काम लें।"

श्रीकृष्ण अर्जुन की इन जोशीली बातों से मुग्ध हो गये। बोले—"धन्य हो अर्जुन! धन्य हो! भरतवंश के वीर, कुंती के लाल, अर्जुन से मुझे यही आशा थी। मृत्यु से डरना नासमझी की बात है। एक-न-एक दिन सबको मरना ही है। लड़ाई न करने से आज तक कोई भी मौत से नहीं बच सका है। नीतिशास्त्रों का कहना है कि ठीक-ठीक युक्ति से काम लेकर दूसरों को बस में कर लेना और विजय प्राप्त करना ही क्षत्रियोचित धर्म है।"

अन्त में सब इसी निश्चय पर पहुँचे कि जरासन्ध का वध करना आवश्यक ही नहीं, बल्कि कर्त्तव्य है। धर्मात्मा युधिष्ठिर ने भी इस बात को मान लिया और भाइयों को इसके लिए अनुमति दे दी।

: २१ :

जरासन्ध का वध

मगध देश के राजा बृहद्रथ अपनी शूरता के लिए बड़े विख्यात थे। उनके अधीन तीन अक्षौहिणी सेना थी। उचित समय पर यशस्वी राजा बृहद्रथ ने काशीराज की जुड़वां बेटियों से ब्याह कर लिया। राजा बृहद्रथ ने अपनी पत्नियों को वचन दे रक्खा था कि वह दोनों में किसी

की भी तरफदारी नहीं करेंगे ।

विवाह हुए बहुत दिन बीत जाने पर भी राजा बृहद्रथ के कोई संतान नहीं हुई, यहां तक कि उनकी जवानी बीत चली और बुढ़ापे ने उन्हें आ घेरा। तब संतान की ओर से निराश होकर राजा बृहद्रथ ने मंत्रियों के हाथ में राज्य की बागडोर सौंप दी और पत्नियों को साथ लेकर तपस्या करने वन में चले गए । एक दिन वन में महर्षि गौतम के वंशज चण्डकौशिक मुनि से उनकी भेंट हुई। राजा बृहद्रथ ने मुनिवर का विधिवत् आदर-सत्कार किया और उनको अपना दुखड़ा सुनाया । मुनि चण्डकौशिक को राजा के हाल पर दया आई। उन्होंने राजा से पूछा––"आप मुझसे क्या चाहते हैं ?"

बृहद्रथ ने करुणस्वर में कहा––"मुनिवर ! मैं बड़ा ही अभागा हूं। पुत्र-भाग से वंचित हूं । राज्य छोड़कर वन में तपस्या करने आया हूं । इस हालत में मैं आप से और क्या मांग सकता हूं ?"

राजा की बातों से चण्डकौशिक का मन पिघल गया। वे उसी क्षण एक आम के पेड़ के नीचे आसन जमाकर बैठ गये और ध्यान में लीन हो गये । मुनिवर ध्यान कर ही रहे थे कि इतने में एक पका हुआ आम उनकी गोद में गिरा। महर्षि ने उसे लेकर राजा को देते हुए कहा––"राजन् ! यह लो, इससे तुम्हारा दुःख दूर हो जायेगा।"

राजा ने उस फल के दो टुकड़े किये और दोनों पत्नियों को एक-एक टुकड़ा खिला दिया । फल खाने से दोनों पत्नियों के गर्भ रह गया। राजा बृहद्रथ बड़े प्रमुदित हुए। राज महिषियां तो आनन्द के मारे फूली न समाईं। पर जब बच्चे पैदा हुए तो रानियों पर वज्र गिरा; क्योंकि वे बच्चे पूरे नहीं थे, बल्कि आधे थे। एक-एक बच्चे के केवल एक हाथ, एक पैर, एक आंख, एक कान तथा मुख (मुख का एक हिस्सा) ही थे । देखकर मन में एक साथ भय और घृणा होती थी; परंतु दोनों टुकड़ों में जान थी और वे हरकत भी करते थे।

इन मनहूस मांस के पिण्डों को देखकर रानियां बड़ी ही व्याकुल

हो उठीं और दाइयों को आज्ञा दी कि इन टुकड़ों को कपड़ों में लपेट कर कहीं दूर फेंक दें। दाइयां तुरंत उन टुकड़ों को उठाकर कूड़े-करकट के ढेर पर फेंक आईं।

इतने में नर-मांस खाने वाली एक राक्षसी मांस की तलाश में फिरती हुई उसी जगह आ पहुंची जहां बच्चों के वे टुकड़े पड़े थे। टुकड़े देखे तो राक्षसी ने उनको खाने के लिए एक साथ हाथ में उठाया। उसका उठाना था कि दोनों टुकड़े आपस में जुड़ गये और एक सुन्दर बच्चा बन गये। राक्षसी ने जब यह चमत्कार देखा तो सोचा कि इस बच्चे को मारना ठीक न होगा। यह सोचकर वह एक सुन्दर युवती के रूप में राजा बृहद्रथ के पास गई और बच्चा उसे दे दिया। कहा--यह आप ही का बच्चा है।

बच्चा पाकर बृहद्रथ के आनन्द की सीमा न रही। उन्होंने रनवास में जाकर रानियों के हाथ में बच्चा दे दिया और राज्यभर में पुत्र-प्राप्ति के उपलक्ष्य में बड़ा आनन्द मनाया गया।

जरासन्ध के जन्म की यह कथा है। मुनि चण्डकौशिक के वरदान के कारण जरासन्ध शरीर का इतना हट्टा-कट्टा और बली हुआ कि कोई उसके मुकाबले में नहीं आ सकता था। फिर भी चूंकि उसका शरीर दो अलग-अलग टुकड़ों के जुड़ने से एक हुआ था, इसलिए दो हिस्सों में बंट भी सकता था।

●

"जरासन्ध के सहकारी राजा हंस, हिडिबक एवं कंस मारे जा चुके हैं। जरासन्ध का वध करने का इस से अच्छा अवसर फिर हाथ नहीं आ सकता। और एक बात यह भी है कि सेनाओं एवं अस्त्र-शस्त्रों के साथ जरासन्ध पर हमला करना बेकार साबित होगा। इसलिए उसे द्वन्द्व-युद्ध में--उसके साथ कुश्ती लड़कर--ही मारना होगा।" श्रीकृष्ण इस निश्चय पर पहुंचे और पाण्डवों ने भी इसे स्वीकार कर लिया।

उन दिनों के रिवाज के अनुसार किसी क्षत्रिय को लड़ाई की चुनौती

मिल जाती तो उसे लड़ाई में जाना ही पड़ता था। साथ ही यह बात भी थी कि चुनौती देने वाले की शर्तें चुनौती पाने वाले को माननी पड़ती थीं, चाहे वह रण-क्षेत्र में सेना से सेना भिड़ाने की चुनौती हो, चाहे अकेले कुश्ती लड़ने की। इसी रिवाज से फायदा उठाकर श्रीकृष्ण और पाण्डवों ने अपनी योजना बनाई थी।

श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन ने वल्कल पहन लिये, हाथ में कुशा ले ली और व्रती ब्राह्मण-ब्रह्मचारियों के भेष में मगध देश के लिए पैदल चल पड़े। रास्ते में मगध देश के उपजाऊ खेतों को देखते और सुन्दर नगरों एवं गांवों में से होते हुए तीनों जरासन्ध की राजधानी में जा पहुंचे।

राजा जरासन्ध को इधर कई अपशकुन हुए। इससे उसके मनमें कुछ घबराहट-सी पैदा हो गई। राजा ने पुरोहितों से उसकी शान्ति कराई और स्वयं भी उपवास का व्रत रक्खा। इसी बीच दोनों पाण्डव श्रीकृष्ण के साथ राज-भवन में दाखिल हुए। वे निःशस्त्र थे और ब्राह्मणों की भांति वल्कल पहने हुए थ। जरासन्ध ने समझा कि कोई ऊंची जाति के अतिथि होंगे, सो उनका बड़े आदर के साथ स्वागत किया। उस समय जरासन्ध ने उपवास-व्रत रक्खा था, व्रतधारी को द्वन्द्व-युद्ध की चुनौती देना धर्म न था। इसलिए दोनों पाण्डवों ने चुप्पी साध ली।

राजा जरासन्ध ने प्रश्नमयी दृष्टि उन पर डाली तो श्रीकृष्ण ने उसका समाधान करते हुए कहा—"मेरे दोनों साथियों ने अभी मौन-व्रत रक्खा है, इस कारण बोलते नहीं हैं। आधी रात के बाद इनका व्रत खुलेगा।"

जरासन्ध ने इस बात पर विश्वास कर लिया और मेहमानों को यज्ञ-शाला में ठहराकर महल में चला गया।

कोई ब्राह्मण ब्रह्मचारी यदि अतिथि बनकर उसके यहां आ जाता तो उनसे उनकी इच्छा तथा सुविधा के अनुसार बातें करना व उनका सत्कार करना राजा जरासन्ध का नियम था। इसके अनुसार आधी रात

के बाद राजा जरासन्ध अपनी प्रतीक्षा में बैठे हुए अतिथियों से मिलने गया, लेकिन अतिथियों के रंग-ढंग देखकर मगध-राज के मन में कुछ शंका हुई। सोचा कि दाल में कुछ काला अवश्य है। जरा गौर से देखने पर जरासन्ध ने ब्राह्मण अतिथियों के हाथों पर ऐसी निशानियां देखीं जो धनुष की डोरी द्वारा रगड़ खाने से पड़ जाती हैं। कुछ और चिह्नों से भी उसे पता चल गया कि ये ब्राह्मण नहीं, बल्कि क्षत्रिय हैं।

जरासन्ध ने कड़क कर पूछा--"सच-सच बताओ, तुम कौन हो?"

इस पर तीनों ने सही हाल बता दिया और कहा--"हम तुम्हारे शत्रु हैं। तुमसे अभी द्वन्द्व-युद्ध करना चाहते हैं। हम तीनों में से किसी एक से जिससे इच्छा हो, लड़ सकते हो। हम सभी इसके लिए तैयार हैं।"

जरासन्ध को एकाएक यह सुनकर कुछ आश्चर्य तो हुआ; पर अपने भाव को दबा कर बोला--"कृष्ण, तुम तो क्षत्रिय नहीं ग्वाले हो और यह अर्जुन भी अभी बालक है। इसलिए तुम दोनों से तो मैं लड़ूंगा नहीं। हां, भीमसेन के बल की बड़ी प्रशंसा सुनी है, सो उसी के साथ लड़ना चाहूंगा।" यह कहकर जरासन्ध लड़ने को प्रस्तुत हो गया।

भीमसेन को निःशस्त्र देखकर वीर जरासन्ध ने भी शस्त्र फेंक दिये और मल्ल-युद्ध के लिए उसे ललकारा।

●

भीमसेन और जरासन्ध में कुश्ती शुरू हो गई। दोनों वीर एक दूसरे को पकड़ते, मारते और उठाते हुए पलभर भी विश्राम किये बगैर तेरह दिन और तेरह रात लगातार लड़ते रहे। चौदहवें दिन जरासन्ध थकावट के कारण जरा रुक गया।

जरासंध का यह हाल देखकर श्रीकृष्ण ने भीम को उकसाया और इशारा पाकर भीमसेन ने फ़ौरन जरासंध को उठाकर सौ बार ऐसे जोर से घुमाया, जैसे चतुर लठैत लाठी को घुमाता है और फिर जरासंध को जमीन पर जोर से पटक दिया और फुरती से उसके दोनों पैर पकड़ कर उसके शरीर को चीर कर फेंक दिया। जरासंध को मरा समझकर

विजय के गर्व में भीमसेन सिंह की भांति गरज उठा; किन्तु पलक मारते-मारते जरासंध के चिरे हुए शरीर के टुकड़े आपस में जुड़ गये और जरासंध उठकर फिर भीमसेन से लड़ने लगा।

यह देखकर भीमसेन हताश हो गया। सोचा, ऐसे शत्रु का वध कैसे किया जाय? इतने में श्रीकृष्ण ने एक घास का पत्ता उठा लिया और बीच में से चीरकर बांये हाथ से दाहिने हाथ की ओर और दाहिने हाथ से बांये हाथ की ओर फेंक दिया। भीमसेन ने इशारे को समझ लिया और मौका पाते ही उसने दुबारा जरासंध का शरीर चीर डाला और दोनों हिस्सों को दांया-बांया करके फेंक दिया।

अबकी ये टुकड़े जुड़ नहीं सके और जहां-के-तहां निर्जीव पड़े रह गए। इस प्रकार अजेय जरासंध का अंत हो गया।

●

श्रीकृष्ण और दोनों पाण्डवों ने उन सब राजाओं को छुड़ा दिया जिनको जरासंध ने बन्दीगृह में डाल रक्खा था और जरासन्ध के पुत्र सहदेव को मगध देश की राजगद्दी पर बिठाकर इन्द्रप्रस्थ लौट आये।

इसके बाद पाण्डवों ने दिग्विजय-यात्रा की और सारे देश को महाराज युधिष्ठिर की अधीनता में ले आये।

महाराज युधिष्ठिर ने बड़ी धूमधाम से राजसूय-यज्ञ किया और सम्राट् की उपाधि धारण की। इस अवसर पर जो सभा हुई थी उसी में चेदिराज शिशुपाल का उसके अशिष्ट व्यवहार के कारण श्रीकृष्ण ने वध कर दिया। ✓

: २२ :

अग्रपूजा

किसी सभा की कारंवाई पसंद न आने पर अपना विरोध प्रदर्शित करने के लिए सभा से कुछ लोगों के इकट्ठे उठकर चले जाने की प्रथा

प्रजा-सत्ता-वाद की कोई नई उपज नहीं है; बल्कि वह मुद्दत से चली आरही है। 'वाक् आउट' की यह प्रथा हमारे देश में पुराने जमाने से प्रचलित है, इस बात का सबूत महाभारत में मिलता है।

पाण्डवों ने जिस समय राजसूय-यज्ञ किया था तब भारत देश में छोटे-बड़े राजाओं की संख्या काफी थी। यद्यपि सारे भारतवर्ष के राजा तथा प्रजा के लोग एक ही धर्म के अनुयायी थे तथा एक जैसी ही संस्कृति उन सबकी थी, तथापि कोई राजा किसी दूसरे राजा के राज्य या सत्ता पर प्रायः आक्रमण नहीं करता था। हां, कभी-कभी कोई शक्तिशाली एवं साहसी राजा सारे देश के नरेशों के पास अपना एलची भेज देता और राजाधिराज बनने (सम्राट् की उपाधि धारण करने) की उनसे स्वीकृति प्राप्त करता। अकसर यह 'दिग्विजय' बगैर किसी लड़ाई-झगड़े के पूरी हो जाती और जिस राजा को सम्राट् बनना हो वह राजसूय नाम का महायज्ञ करता। इस यज्ञ में सभी राजा सम्मिलित होते और सम्राट् की सत्ता मानने की रस्म अदा कर अपने-अपने राज्य को लौट जाते। इसी प्रथा के अनुसार, जरासन्ध के मारे जाने के बाद पाण्डवों ने राजसूय-यज्ञ किया था, जिसमें भारत भर के राजा आये हुए थे।

●

जब अभ्यागत नरेशों का आदर-सत्कार करने की बारी आई तो प्रश्न उठा कि अग्र-पूजा किसकी हो? सम्राट युधिष्ठिर ने इस बारे में पितामह भीष्म से सलाह ली। वृद्ध भीष्म ने कहा कि द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण की पूजा पहले की जाय।

युधिष्ठिर को भी यह बात पसन्द आई। उन्होंने छोटे भाई सहदेव को आज्ञा दी कि भगवान् कृष्ण की अग्र-पूजा करे। सहदेव ने विधिवत् श्रीकृष्ण की पूजा की और गाय, अर्घ्य, मधुपर्क आदि श्रीकृष्ण को भेंट किये।

वासुदेव का इस प्रकार गौरवान्वित होना चेदि-नरेश शिशुपाल को पसंद न आया। वह जल्दी से उठा और ठहाका मारकर हंस पड़ा। सारी

सभा की दृष्टि जब शिशुपाल की ओर फिरी तो वह ऊंचे स्वर में व्यंग्यभाव से बोलने लगा--"यह भी अन्याय की बात है कि एक अदने से आदमी को यों गौरवान्वित किया जाता है। किंतु इसमें आश्चर्य की बात क्या है? यहां वालों की सब बातें ही उल्टी हैं! जिसने सलाह मांगी थी उसका जन्म भी तो उलटी ही रीति से हुआ था। जिसने सलाह दी, वह भी नीचे की ओर भागने वाली का ही बेटा है न!

"और जिसने आज्ञा मानकर अग्र-पूजा की, उसके भी तो पिता का पता नहीं है! ये तो हुए सत्कार करने वाले! और जिसने इनकी पूजा स्वीकार की, उस गाय चराने वालों के घर में पले, अनाड़ी की कहानी किससे छिपी है? इस उलटी कार्रवाई को जो सभासद् चुपके से देख रहे हैं, मैं तो कहूंगा, वे गूंगे हैं। उनका इस सभा में बैठे रहना अपनी सज्जनता पर बट्टा लगाना है।"

शिशुपाल की इस तीखी वक्तृता से कुछ सभासद् प्रभावित हुए और शिशुपाल के साथ-साथ वे भी हंस पड़े। इससे उसका उत्साह बढ़ गया और वह युधिष्ठिर को लक्ष्य करके बोलने लगा--

"साम्राज्याधीश बनने की आकांक्षा रखनेवाले युधिष्ठिर! सभा में इतने बड़े-बड़े राजाओं के होते हुए तुमने इस ग्वाले की अग्र-पूजा कैसे की? किसी को उचित गौरव न देना जितना भारी कसूर है, किसी को उसकी योग्यता से अधिक गौरव देना भी उतना ही भारी अपराध है! नीतिशास्त्र निपुण में होकर भी इतनी छोटी-सी बात तुम्हारी समझ में नहीं आई?"

युधिष्ठिर को चुप देखकर शिशुपाल का जोश और भी बढ़ गया। वह बोलता गया, "इस सभा में कितने ही बड़े-बड़े व्यक्ति उपस्थित हैं। कितने ही प्रतापी राजा विराजमान हैं। इन सब का अनादर करते हुए एक गँवार ग्वाले को, जिसे राज-कुल की हवातक नहीं लगी है, राजोचित गौरव देते हुए तुम्हें शरम नहीं आई? कृष्ण कहां का राजा है? कृष्ण के राजा न होने की बात मैं इस आधार पर कर रहा हूं कि इसके

B.L. Saraf July 1970

पिता वसुदेव, राजा उग्रसेन के मंत्री हैं, स्वयं राजा नहीं हैं। कहीं मंत्री का बेटा भी राजाओं में शामिल किया जाता है? यदि तुमको देवकी के बेटे का पक्षपात करना था तो उसके लिए और कोई अवसर ढूंढ़ लेते। तुमने पाण्डु के नाम पर बट्टा लगा दिया है! राज-सभा चलाने का ढंग तक तुम नहीं जानते। तुम लोग बच्चे हो! पर इस बुड्ढ़े भीष्म ने तुम लोगों को कुमंत्रणा देकर तुमसे भारी कसूर करवा दिया। फिर कम-से-कम उमर का भी तो ख्याल करते! तुम्हें मालूम है कि इसके पिता वसुदेव भी तो यहीं, इसी सभा में मौजूद हैं। पिता के होते हुए बेटे को इस बात का अधिकार कैसे प्राप्त हो सकता है कि वह अग्र-पूजा ग्रहण कर ले? क्या यह तुम्हारा आचार्य है? तुम्हारे आचार्य द्रोण तो वह विराजमान हैं! कहीं तुमने यह तो नहीं समझ लिया कि कृष्ण यज्ञ की कार्रवाई में निपुण है? तो भगवान् व्यास यहां उपस्थित हैं, जो यज्ञ कराने वाले महात्माओं में सर्वश्रेष्ठ हैं न! उनके रहते इस ग्वाले की तुमने कैसे पूजा की? यदि तुम यह अग्र-पूजा अपने ही वंश के पितामह भीष्म की करते तो भी कोई बात न थी। तुमने तो वह भी नहीं किया।

"वह तुम्हारे कुल-गुरु कृपाचार्य विराजमान हैं! उनका अनादर करके तुमने एक चरवाहे की पूजा क्यों की! और अपने ब्रह्मतेज से सभा को प्रकाशित करने वाले वीर अश्वत्थामा उपस्थित हैं। सभी शास्त्रों के पण्डित रण-कुशल अश्वत्थामा की परवाह न करके तुमने अग्र-पूजा के लिए इस कायर कृष्ण को कैसे चुन लिया?

"वह राजाधिराज दुर्योधन विद्यमान हैं। परशुराम के शिष्य कर्ण, जिन्होंने महावीर जरासन्ध से अकेले लड़कर विजय पाई थी, वह विराजमान हैं। उनका भी अनादर करके एक ग्वाले को इस भारी सभा का अग्रज चुनने का तुम्हें साहस कैसे हुआ? केवल पक्षपात के कारण अन्धे होकर तुमने ऐसे आदमी की अग्र-पूजा की, जो न वयोवृद्ध है, न किसी देश का राजा है, न यज्ञ कराने में ही चतुर है। अपने इस कार्य

से तुमने यहां उपस्थित महात्माओं एवं राजाओं का भारी अपमान किया है। क्या हम सबका अनादर करने के ही लिए तुमने यह सभा बुलाई है ?"

युधिष्ठिर को यों आड़े हाथों लेने के बाद शिशुपाल का ध्यान उपस्थित राजाओं पर फिरा। वह उनकी ओर देखकर बोला––

"उपस्थित राजाओ! आप भलीभांति जानते हैं कि हम युधिष्ठिर को राजाधिराज मानने को तैयार हुए हैं तो इसका यह मतलब नहीं कि हम उसकी कृपादृष्टि के अभिलाषी हैं। यह भी बात नहीं कि हम उसका वैर मोल लेने से डरते हैं। युधिष्ठिर ने घोषणा की थी कि न्याय को ही प्रधान मानकर वह राज करेगा। हमने इस बात पर विश्वास कर लिया था और बड़ा धर्मात्मा समझ कर उसको गौरवान्वित किया था; परन्तु अब, जब कि उसने हमारे देखते ही हमारा अपमान किया है तब वह धर्मात्मा की उपाधि के योग्य कैसे रहा ? जिस दुरात्मा ने कुचक्र रचकर वीर जरासन्ध को मरवा डाला, उसी पापी की इस युधिष्ठिर ने अग्र-पूजा की है। इसके बाद भी उसको हम धर्मात्मा कैसे कह सकते हैं ? अब तो वह दुरात्मा ही कहने के लायक रह गया।"

फिर शिशुपाल श्रीकृष्ण की तरफ देखकर बोला––"कृष्ण, अगर पाण्डव अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर नियम के विरुद्ध तुम्हारी अग्र-पूजा करने प्रस्तुत हुए तो तुम्हारी भी बुद्धि पर क्या पत्थर पड़ गये थे जो तुमने यह अनुचित पूजा स्वीकार कर ली! देवताओं के योग्य हवि का अन्न कहीं नीचे गिर जाय तो जैसे कुत्ता चोरी से उसे खा जाता है, वैसे ही तुमने भी यह गौरव स्वीकार कर लिया जिसके लिए तुम सर्वथा अयोग्य हो! कृष्ण! तुम भी कैसे अनाड़ी हो जो इतना भी नहीं समझते कि यह तुम्हारी इज्जत नहीं हो रही, बल्कि तुम्हारी हँसी उड़ाई जा रही है! शायद तुम्हें यह घमण्ड हो रहा है कि तुम्हें बड़ा गौरव प्राप्त हो गया है। लेकिन मैं तुम्हें बताता हूँ कि जान-बूझ कर पाण्डव तुम्हें बुद्धू बना रहे हैं। जैसे अन्धे को सुन्दर वस्तुएं दिखाई जायें, या किसी हिजड़े को तरुणी

ब्याह दी जाये, वैसे ही केवल तुम्हारा उपहास करने के लिए किसी राज्य के अधीश न होने पर तुम्हारा राजोचित सत्कार किया जा रहा है। क्या तुम इतना भी नहीं समझ पाते हो ?"

इस तरह तीखे शब्द-वाणों की बौछार कर चुकने के बाद शिशुपाल दूसरे कुछ राजाओं को साथ लेकर सभा से निकल गया।

राजाधिराज युधिष्ठिर नाराज हुए राजाओं के पीछे दौड़े गये और मीठी-मीठी बातों से उन्हें समझाने लगे। महाभारत के इस प्रसंग से पता चलता है कि उन दिनों भी सभा-समाजों में आजकल के से आधुनिक तौर-तरीके काम में लाये जाते थे।

युधिष्ठिर के बहुत समझाने पर भी शिशुपाल न माना। उसका हठ और घमण्ड बढ़ता ही गया। अन्त में शिशुपाल और श्रीकृष्ण में घोर युद्ध छिड़ गया जिसमें शिशुपाल मारा गया। राजसूय-यज्ञ संपूर्ण हुआ और राजा युधिष्ठिर को राजाधिराज की पदवी प्राप्त हो गई। ✓

: २३ :

शकुनि का प्रवेश

राजसूय-यज्ञ के समाप्त हो जाने पर आगन्तुक राजा एवं बड़े लोग युधिष्ठिर से विदा लेकर चलने लगे। जब भगवान् व्यास विदा लेने आये तो धर्मराज युधिष्ठिर ने उनका विधिवत् सत्कार किया और आसन पर बिठाकर आप भी उनके पास बैठ गये।

"कुन्तीपुत्र ! साम्राज्याधीश का अलभ्य पद तुम्हें प्राप्त हो गया है। सारे कुरुवंश को तुमने गौरवान्वित कर दिया है। मुझे अब विदा दो।" व्यासजी ने कहा।

अपने वंश के पितामह एवं आचार्य व्यासजी के चरण छूकर युधिष्ठिर ने पूछा—"आचार्य ! मेरे मन में कुछ शंका हो रही है, उसे

आप ही दूर कर सकते हैं। बड़े-बड़े दूरदर्शी ब्राह्मण कहते हैं कि अनिष्ट की सूचना देने वाले कुछ भयंकर उत्पात देखने में आये हैं। शिशुपाल के वध के साथ वे समाप्त हो जाते हैं या उनकी शुरूआत होती है?"

युधिष्ठिर के प्रश्न का उत्तर देते हुए व्यासजी बोले--"वत्स ! तुमको तेरह बरस तक और बड़े कष्ट झेलने होंगे। ये जो उत्पात देखने में आरहे हैं वे क्षत्रिय-कुल के नाश की ही सूचना दे रहे हैं। शिशुपाल के वध के साथ इन कष्टों का अन्त नहीं हुआ। अभी तो और भी कितनी ही भारी-भारी दुर्घटनाएं होने को हैं। सैकड़ों राजा लोग मारे जायेंगे और इस भारी विपदा के तुम्हीं कारण बनोगे। तुम पांचों भाइयों और कौरवों के बीच वैर बढ़ेगा जिसके कारण एक भारी युद्ध छिड़ेगा। इस युद्ध में सारे क्षत्रिय कुल का सत्यानाश तक होने की संभावना है। किन्तु तुम इन बातों से उदास या चिन्तित न होना। धीरज धरना; क्योंकि यह कालचक्र का फेर है, जिसे कोई टाल नहीं सकता। अपनी पांचों इन्द्रियों पर काबू रखना और सावधानी के साथ, स्थिर रहते हुए राज करना। अच्छा, मैं जाता हूं।" यह कहकर व्यास भगवान् विदा हुए।

भगवान् व्यास के चले जाने के बाद सम्राट् युधिष्ठिर के मन में उदासी छा गई। उन्होंने अपने भाइयों को सारा हाल कह सुनाया और बोले--"भाइयो ! व्यासजी की बातों से मुझे जीवन से ही विराग हो गया है। व्यासजी कह गये हैं कि मेरे कारण ही क्षत्रिय राजाओं का नाश होगा। यह जानने पर मेरे जीने से फायदा ही क्या है ?"

यह सुनकर अर्जुन बोला--"राजा होकर आपको यह शोभा नहीं देता कि इस तरह घबरा जायें। हर बात की छान-बीन करके जिस समय जो उचित जान पड़े वह करना ही आपका कर्त्तव्य है।"

युधिष्ठिर ने कहा--"भाइयो ! परमात्मा हमारी रक्षा करे ! युद्ध की संभावना ही मिटा देने के उद्देश्य से मैं यह शपथ लेता हूं कि आज से तेरह बरस तक मैं अपने भाइयों या किसी और बन्धु को कभी बुरा-भला नहीं कहूंगा। सदा अपने भाई-बंधुओं की इच्छा पर ही

चलूंगा। ऐसा कुछ नहीं करूंगा जिससे मनमुटाव होने का डर हो क्योंकि मनमुटाव ही के कारण झगड़े होते हैं।

"क्रोध ही तो लड़ाई-झगड़ों का मूल कारण होता है। इसलिए मन से क्रोध को एकबारगी निकाल दूंगा। दुर्योधन और दूसरे कौरवों की बात कभी न टालूंगा। हमेशा उन्हींकी इच्छानुसार काम करूँगा। जैसे व्यासजी ने सावधान किया था, कभी क्रोध को हावी न होने दूंगा।"

युधिष्ठिर की बात उनके भाइयों को भी ठीक जँची। वे भी इसी निश्चय पर पहुँचे कि झगड़े-फसाद का हमें कारण नहीं बनना चाहिए।

चौपड़ के खेल के लिए जब धृतराष्ट्र ने बुलावा भेजा था तो युधिष्ठिर ने अपनी इसी प्रतिज्ञा के कारण उसे मान लिया था। युधिष्ठिर ने तो यह शपथ इसलिए ली थी कि झगड़ा होने की संभावना ही दूर हो जाय। वही प्रतिज्ञा आखिर झगड़े का कारण बन गई। बुलावा न मानने से कहीं झगड़ा न हो जाय, इस भय से युधिष्ठिर चौपड़ खेले थे; किंतु उसी पांसे के खेल के कारण आपसी मनमुटाव की आग-सी लग गई जो अन्त में भारी युद्ध के रूप में परिणत हो गई और उसने सारे क्षत्रिय-कुल को जलाकर भस्मसात कर डाला।

युधिष्ठिर की यह प्रतिज्ञा इस बात का सुप्रसिद्ध उदाहरण है कि मनुष्य के मनसूबे, उसके उपाय तथा प्रयत्न, होनी के आगे किसी काम के नहीं होते। होनी होकर रहती है और मनुष्य के प्रयत्नों का उलटा ही नतीजा निकलता है।

उधर युधिष्ठिर चिंतित हो रहे थे कि कहीं कोई लड़ाई-झगड़ा न हो जाय और इधर राजसूय-यज्ञ का ठाट-बाट तथा पाण्डवों की धन-समृद्धि का स्मरण ही दुर्योधन के मन को खाये जा रहा था। ईर्ष्या की आग में मानों वह जल-भुन रहा था। युधिष्ठिर के सभा-मण्डप की कुशल कारीगरी ऐसी थी कि दुर्योधन देखकर मुग्ध हो गया। किवाड़ स्फटिक के बने हुए थे, इसलिए दुर्योधन को उनके न होने का भ्रम हो जाता था। राजसूय-यज्ञ के समय देश-विदेश के राजा-

महाराजाओं ने मण्डप में वह ऐश्वर्य ला उपस्थित किया, जैसा दुर्योधन ने कभी देखा न था। वहां दुर्योधन ने यह भी देखा कि कितने ही देशों के राजा पांडवों के परम मित्र हैं। इसके स्मरण-मात्र से उसका दुःख और भी असह्‌य हो उठा। लंबी सांसें लेकर वह रह गया। पांडवों के सौभाग्य की याद कर-करके उसका जी जलने लगा। अपने महल के कोने में इस भांति चिन्तित और उदास वह खड़ा था कि उसे यह भी पता न लगा कि शकुनि पास खड़ा कुछ कह रहा है।

"बेटा! यों आहें क्यों भर रहे हो? कौन-सा दुःख तुमको सता रहा है?" शकुनि ने पूछा।

दुर्योधन ने कहा--"चारों भाइयों समेत युधिष्ठिर इस ठाट-बाट से राज कर रहा है जैसे देवराज इन्द्र। इतने राजाओं के बीच शिशुपाल की हत्या हुई; फिर भी इकट्‌ठे राजाओं में किसी की हिम्मत न पड़ी कि उसका विरोध करे। भय के कारण कांपते हुए सब-के-सब बैठे देखते रहे। अपार धन और हीरे-जवाहिरात क्षत्रिय राजाओं ने युधिष्ठिर के चरणों में झुकाकर भेंट किये, जैसे व्यापार करके गुजर करने वाले वैश्य हों। यह सब इन आंखों से देखने पर भी कैसे शोक न करूँ? मेरा तो अब जीना ही व्यर्थ है।"

शकुनि ने कहा--"बेटा दुर्योधन! आखिर पाण्डव तुम्हारे भाई ही तो हैं! उनके सौभाग्य पर तुम्हें जलन न होनी चाहिए। न्यायपूर्वक जो राज्य उनको प्राप्त हुआ, उसीका वे उपभोग कर रहे हैं। उनके भाग्य अच्छे हैं, इसीसे उनको भारी ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा प्राप्त है। पाण्डवों ने किसी का कुछ बिगाड़ा तो नहीं। जिसपर उनका अधिकार था वही उन्हें मिला था। अपनी शक्ति से प्रयत्न करके यदि उन्होंने अपना राज्य तथा सत्ता बढ़ा ली है तो तुम जी क्यों जलाते हो? पाण्डवों की शक्ति और सौभाग्य से तुम्हारा क्या बिगड़ता है? तुम्हें किस बात की कमी है? तुम्हारे भाई-बन्द तुम्हारा कहा मानते हैं। द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा तथा कर्ण जैसे महावीर तुम्हारे पक्ष में हैं। ये ही नहीं, बल्कि

भीष्म, कृपाचार्य, जयद्रथ, सोमदत्त और मैं तुम्हारे साथ हूं। इतने साथियों समेत तो तुम संसार पर विजय पा सकते हो। फिर दुःख क्यों करते हो ?"

इस पर दुर्योधन ने कहा--"मामाजी ! यदि ये सब सचमुच हमारे साथी हैं तो फिर हम इन्द्रप्रस्थ पर चढ़ाई क्यों न करदें ? क्यों न पाण्डवों को वहां से मार भगावें ?"

"युद्ध की तो बात ही न करो। वह खतरनाक काम है। मैं तो वह उपाय जानता हूं जिससे बगैर लड़ाई के ही युधिष्ठिर पर सहज में विजय पाई जा सके।" शकुनि ने कहा।

सुनकर दुर्योधन की आंखें आशा से चमक उठीं। बड़ी उत्सुकता के साथ पूछा--"मामाजी ! क्या आप सच कह रहे हैं ? बगैर लड़ाई के पाण्डवों को जीता जा सकता है ? आप ऐसा उपाय जानते हैं ?"

शकुनि ने कहा--"दुर्योधन, युधिष्ठिर को पांसे के खेल का बड़ा शौक है। पर उसे पांसा खेलना आता नहीं है। हम उसे खेलने के लिए न्योता दें तो क्षत्रियोचित धर्म जान युधिष्ठिर अवश्य मान लेगा। तुम तो जानते ही हो कि मैं पांसे का मँजा हुआ खिलाड़ी हूँ। तुम्हारी ओर से मैं खेलूंगा और युधिष्ठिर को हराकर उसका सारा राज्य और ऐश्वर्य बिना युद्ध के आसानी से छीनकर तुम्हारे हवाले कर दूंगा।"

✓

: २४ :

खेल के लिए बुलावा

दुर्योधन और शकुनि बूढ़े धृतराष्ट्र के पास गये। शकुनि ने बात छेड़ी--"राजन् ! देखिये तो आपका बेटा दुर्योधन शोक और चिन्ता के कारण पीला-सा पड़ गया है। उसके शरीर का सारा खून सूख-सा गया है। क्या आपको अपने बेटे की चिंता नहीं है ? ऐसी क्या बात कि उसके

असह्य दुःख का कारण तक आप नहीं पूछते ?"

अन्धे धृतराष्ट्र को अपने बेटे पर अपार स्नेह था। शकुनि की बातों से वे सचमुच बड़े चिन्तित हो गये। अपने बेटे को छाती से लगा लिया और कहा--"बेटा ! मुझे तो कुछ सूझता ही नहीं कि तुम्हें किस बात का दुःख हो सकता है। तुम्हारे पास ऐश्वर्य की कमी नहीं। सारा संसार तुम्हारी आज्ञा पर चल रहा है। ऐसे सुख भोगने को मिले हैं जो देवताओं को भी शायद ही नसीब होते हों। फिर तुम्हें चिन्ता काहे की ? कृपाचार्य, बलराम (हलधर) और द्रोणाचार्य से वेद-वेदांग, अस्त्र-विद्या एवं दूसरे सब शास्त्र पूर्ण रूप से सीखे हुए हो। मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो। मेरे सारे राज्य के अधीश बने हो। इस पर भी तुम्हें दुःख क्यों हो रहा है ? बोलो।"

"पिताजी, अब मैं राजा कहलाने योग्य कहां रहा ? किसी ऐरे-गैरे की भांति खाता-पीता, पहनता-ओढ़ता हूं। यह भी कोई जीना है !" इस तरह दुर्योधन पिता के सामने अपना रोना रोने लगा और वे सारी बातें कह सुनाईं जो उसके मन को खाये जा रही थीं। इन्द्रप्रस्थ की सुषमा, वहां की समृद्धि आदि का वर्णन करके बताया कि उसकी जलन का कारण पाण्डवों की यह धन-संपत्ति ही है और पिता को उपदेश-सा देते हुए बोला–"सन्तोष क्षत्रियोचित धर्म नहीं है। डरने या दया करने से राजाओं का मान-सम्मान जाता रहता है। उनकी प्रतिष्ठा नहीं रहती। युधिष्ठिर की विशाल व धन-धान्य से भरपूर राज्यश्री को देखने के बाद मुझे ऐसा लगता है मानो हमारी संपत्ति और राज्य कुछ है ही नहीं। उससे मेरा जी नहीं भरता। पिताजी, पांडवों की तो उन्नति हो गई, पर हमारा पतन।"

बेटे पर असीम प्यार के कारण और उसको इस प्रकार आकुल देख कर धृतराष्ट्र से न रहा गया। उन्होंने उसे समझाते हुए जो उन्हें उचित लगा बताया। कहा--"बेटा, तुम मेरी पटरानी के बेटे हो और मेरे ज्येष्ठ पुत्र। तुम्हारी भलाई के लिए कहता हूं कि पांडवों से बैर न करो। बैर दुःख और मृत्यु ही का कारण हो सकता है। सरल हृदय और निर्दोष युधिष्ठिर से शत्रुता क्यों कर रहे हो ? उसकी शक्ति हमारी

ही तो शक्ति है। जो यश एवं ऐश्वर्य उसने प्राप्त किये हैं उन पर हमारा भी तो अधिकार है। हमारे साथी उसके भी साथी हैं। युधिष्ठिर न हमसे जलता है, न हम से बैर रखता है। तुम्हारा कुल उतना ही ऊँचा है जितना उसका और रण-कुशलता एवं साहस में भी तुम उसके समान ही हो। तब फिर अपने ही भाई से क्यों जलते हो? यह तुम्हें नहीं सोहता।"

पिता की बात बेटे को पसन्द न आई। पिता को राजनीति का पाठ पढ़ाते हुए बोला—"पिताजी, अगर आदमी में स्वाभाविक विवेक न हुआ तो पढ़ना-लिखना किस काम का! माना कि आप नीतिशास्त्रों के पारंगत हैं। फिर भी जैसे पकवान में डूबी रहने वाली कलछी को उसके स्वाद का तनिक भी ज्ञान नहीं होता वैसे ही शास्त्रों में डूबे रहने, उन्हें कंठस्थ रखने पर भी आपको उनके असली माने नहीं आते। यदि यह बात न होती तो आप ऐसी बातें क्यों करते! स्वयं बृहस्पति ने कहा है कि राजनीति और संसार की रीति-नीति एक दूसरे से भिन्न होती हैं। सन्तोष और सहनशीलता राजाओं का धर्म नहीं है। चाहे संसार की आंखों में न्याय हो, चाहे अन्याय, राजा का तो कर्त्तव्य यही है कि किसी तरह शत्रुओं पर विजय पा ले और अपनी सत्ता बढ़ाता जाय।"

इस पर शकुनि ने भी धृतराष्ट्र को अपनी सलाह दी कि पांसे के खेल में पांडवों को हराकर बगैर लड़ाई के दुर्योधन का दुःख दूर किया जा सकता है।

इन कुमन्त्रणाओं का प्रभाव धीरे-धीरे धृतराष्ट्र के मन पर पड़ने लगा। उसका मन डांवाडोल होने लगा। दुर्योधन ताड़ गया। अपना दाव लगते देख बोला—"पिताजी! हथियार केवल वही नहीं जो काट सके। शत्रु को हार खिलाने में जो भी उपाय काम दे सकें, चाहे वह छिपे तौर से हों चाहे प्रकट रूप में, वे सब उपाय क्षत्रिय के हथियार माने जाते हैं। किसी के कुल या जाति से इस बात का निर्णय नहीं किया जा सकता कि वह शत्रु है या मित्र। जो भी दुःख पहुंचाये, चाहे वह सगा भाई ही क्यों न हों, उसे शत्रु ही मानना चाहिए। केवल स्थितिपालक रहना, जो कुछ

प्राप्त है, उसी को लेकर संतोष मानना क्षत्रियों के लिए उचित नहीं। जो राजा शत्रु की बढ़ती देखकर भी उसे रोकने का प्रयत्न नहीं करता उसका सर्वनाश निश्चित है। राजाओं का कर्त्तव्य है कि शत्रु की बढ़ती पहले ही से ताड़ लें और उसे रोकने का सब प्रकार से प्रयत्न करें। हमारे भाई-बन्दों की बढ़ती हमारे ही नाश का कारण बन जायगी; जैसे पेड़ की जड़ पर चींटियों का बनाया हुआ बिल समय पाकर सारे पेड़ का ही नाश कर देता है।"

दुर्योधन का व्याख्यान पूरा हुआ तो कुशाग्र बुद्धि और दुरात्मा शकुनि बोल उठा--"आप युधिष्ठिर को पांसे के लिए बुलावा भर भेज दें, आगे की जिम्मेदारी मुझ पर पर छोड़ दें।"

दुर्योधन ने आग्रह के साथ कहा--"बिना प्राणों को जोखिम में डाले और युद्ध किये मामा शकुनि पांडवों की संपत्ति छीनकर मेरे सुपुर्द करने को तैयार हैं। आप बस इतना करें कि युधिष्ठिर को न्योता भेज दें।"

इतने पर भी धृतराष्ट्र ने हां नहीं की। --"मुझे यह उपाय ठीक नहीं जँचता। विदुर से भी सलाह कर लूं। वह बड़ा समझदार है। मैं हमेशा उसका कहा मानता आया हूँ। चलो, उससे भी सलाह कर लें।"

विदुर से सलाह लेने की बात दुर्योधन को पसंद न आई। बोला, "विदुर चाचा तो साधारण नीति का ही उपदेश देंगे। इससे कभी काम बन सकता है? राजा लोग यदि विजय प्राप्त करना चाहें तो उन्हें धर्म को ताक पर रखना ही होगा। विदुर और व्यास धर्म की रट लगाते फिरते हैं। सच पूछा जाय तो वे ही हमारी बढ़ती में रोड़े अटकाने वाले हैं। आप तो जानते हैं कि विदुर चाचा मुझे नहीं चाहते, पाण्डवों को ही प्यार करते हैं। फिर उनसे सलाह लेने से क्या लाभ होगा?"

धृतराष्ट्र ने कहा-- "पांडव बड़े शक्ति-संपन्न हैं। उनसे बैर मोल लेना मुझे ठीक नहीं जंचता। जुए का खेल बैर-विरोध की जड़ होता है। जुए के कारण जो मामूली अनबन पैदा होती है वह शीघ्र ही भारी विरोध

का रूप धारण कर लेती है। जुए के खेल से होने वाली बुराइयों की कोई सीमा नहीं। इसलिए बेटा, मेरी तो यही राय है कि यह विचार छोड़ दो।"

"निर्भय होकर अपनी रक्षा कर लेना क्षत्रियों का धर्म है। शत्रु की बढ़ती को रोकना अभी हमारे बस की बात है। हमें अभी सचेत होकर प्रयत्न करना ही होगा। बीमारी और मौत किसी के लिए ठहरती नहीं! पहले ही से पांसे का खेल कोई हमने तो ईजाद किया नहीं। यह भी हमारे पूर्वजों का ही चलाया हुआ है। प्राणों से खेले बगैर ही यह खेल खेलकर क्षत्रिय अपना उद्देश्य पूरा कर सकते हैं। इसमें कोई अन्याय भी नहीं होता।"

दुर्योधन के इस तरह बहुत आग्रह करने पर धृतराष्ट्र बोले-- "बेटा! मैं तो ठहरा बूढ़ा! अब तो तुम्हीं इस राज्य के मालिक हो! जो तुम्हारी इच्छा हो, वही करो। हां, इतना अवश्य कहे देता हूं कि आगे चलकर तुम्हें इसके लिए पछताना होगा। यह विधि का कुचक्र है।"

बेटे का आग्रह मानकर धृतराष्ट्र ने चौपड़ खेलने के लिए अनुमति तो दे दी और सभा-मण्डप बनाने की भी आज्ञा दे दी; परन्तु गुप्त रूप से महात्मा विदुर से भी इस बारे में उन्होंने सलाह कर ली।

विदुर ने कहा-- "राजन्! सारे खानदान का इससे नाश हो जायगा। इस कुविचार के कारण हमारे कुल के लोगों में आपसी मन-मुटाव और झगड़े-फिसाद होंगे। अन्त में इससे भारी विपता हम पर आजायगी। इस कुचाल को न होने दीजिये।"

धृतराष्ट्र ने कहा-- "भाई विदुर! प्रारब्ध हमारे अनुकूल होता तो मुझे इस खेल का भय होना ही चाहिए था। हां, यदि हमारे भाग्य ही खोटे हों तो फिर हम कर ही क्या सकते हैं? सारा संसार विधि के ही इशारों पर चल रहा है। इस पर किसी का कुछ बस नहीं चलता। सो तुम युधिष्ठिर के पास जाओ और उसे मेरी तरफ़ से पांसे के लिए न्योता देकर बुला लाओ।"

धृतराष्ट्र की इन बातों से स्पष्ट मालूम होता है कि वह विधि की चाल और मनुष्य के कर्त्तव्य को भली-भांति जानते थे। फिर भी उनकी बुद्धि चंचल हो जाती थी, स्थिर नहीं रहती थी। इसके अलावा अपने बेटे पर भी उनका असीम स्नेह था। यही कारण था कि उन्होंने बेटे की बात मान ली थी।

राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा मानकर विदुर युधिष्ठिर के पास चल पड़े।

: २५ :

बाजी

विदुर को आते देख महाराज युधिष्ठिर उनका स्वागत करने चले; किंतु विदुर के चेहरे पर हर्ष न देखकर चिन्तित भाव से पूछा-- "आपका चेहरा उतरा हुआ क्यों है? हस्तिनापुर में सब अच्छी तरह से तो हैं? राजा और राजकुमार कुशल से हैं? नगर के लोगों का व्यवहार तो ठीक है?"

विदुर ने शांति से उत्तर दिया-- "हस्तिनापुर में सब कुशल-पूर्वक हैं। यहां तो सब आनंद-पूर्वक हैं न? हस्तिनापुर में खेल के लिए एक मण्डप बनाया गया है जो तुम्हारे मण्डप के समान ही सुंदर है। राजा धृतराष्ट्र की ओर से उसे देखने चलने के लिए मैं तुम लोगों को न्योता देने आया हूं। राजा धृतराष्ट्र की इच्छा है कि तुम भाइयों सहित वहां जाकर उस मण्डप को देखो और दो हाथ पांसा भी खेल जाओ।"

"चाचाजी! पांसे के खेल से क्षत्रियों में झगड़े पैदा होते हैं। समझदार लोग उसे पसंद नहीं करते। पर हम तो आप ही के आदेशानुसार चलने वाले हैं। आपकी सलाह क्या है?" युधिष्ठिर ने विदुर

से पूछा।

विदुर बोले— "यह तो किसी से छिपा नहीं कि पांसे का खेल सारे अनर्थ की जड़ होता है। मैंने तो भरसक प्रयत्न किया कि इसे न होने दूं; किन्तु राजा ने आज्ञा दी कि तुम्हें खेल के लिए न्योता दे आऊं। इसलिए आना पड़ा। अब तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो।"

विदुर के चेतावनी देने पर भी युधिष्ठिर से न रहा गया। वे भाइयों और परिवार के साथ हस्तिनापुर की ओर रवाना हो गये।

भोग-लालसा, जुआखोरी, शराब का व्यसन आदि ऐसे गढ़े हैं जिनमें लोग जान-बूझकर गिरते हैं। इन ऐबों से होनेवाली बुराइयों को भली-भांति समझते हुए भी लोग आखिर धोखा खा ही जाते हैं। महाभारत के कई प्रसंगों में इस बात का जिक्र पाया जाता है कि युधिष्ठिर को पांसा खेलने का व्यसन था। राजवंशों की रीति के अनुसार किसी का भी बाजी के लिए बुलावा मिल जाने पर उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता था। इसके अलावा व्यास की चेतावनी के कारण युधिष्ठिर को डर था कि कहीं पांसे के खेल में न जाना ही धृतराष्ट्र अपना अपमान न समझ लें और यह बात लड़ाई का कारण न बन जाय। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर समझदार युधिष्ठिर ने न्योता स्वीकार किया और अपने परिवार के साथ हस्तिनापुर गये। नगर के पास ही उनके तथा उनके परिवार के लिए एक सुन्दर विश्राम-गृह बना था, वहां ठहरकर उन्होंने आराम किया। अगले दिन सुबह नहा-धोकर सभा-मण्डप में जा पहुंचे।

कुशल समाचार के बाद शकुनि ने कहा— "युधिष्ठिर, खेल के लिए चौपड़ बिछा हुआ है। चलिये, दो हाथ खेल लें।"

"राजन्, पांसा खेलना ठीक नहीं। बाजी जीत लेना कोई साहस का काम नहीं। असित, देवल जैसे महान् ऋषियों ने पांसे के खेल का एक स्वर से खण्डन किया है। लौकिक न्याय के ज्ञान में इन मुनियों

की पहुंच कुछ कम न थी। इन महात्माओं का कहना है कि जुआ खेलना धोखा देने के समान है और मैदान में लड़ कर विजय पाना ही क्षत्रिय के लिए उचित मार्ग है। आप तो ये सब बातें खुद ही जानते हैं।" युधिष्ठिर ने बड़ी शिष्टता के साथ कहा।

यद्यपि युधिष्ठिर ने उपरोक्त बातें सहज भाव से कहीं थीं, लेकिन उनके मन में जरा-सा खेल लेने की भी इच्छा हो रही थी; शौकीन जो ठहरे। दूसरी ओर यह भी ज्ञान उन्हें रोके हुए था कि यह खेल उचित नहीं। उनके मन में जो तर्क-वितर्क-सा हो रहा था उसी को उन्होंने शकुनि से दलील करने के बहाने प्रकट कर दिया था। तेज बुद्धि शकुनि ने चट यह बात ताड़ ली।

बोला—"आप भी क्या कहते हैं महाराज! धोखा क्या, युद्ध क्या! यह तो आदमी के अपने विचार पर निर्भर होता है। स्पर्द्धा सब में होती है। वेद पढ़े हुए पण्डितों में शास्त्रार्थ होते आपने नहीं देखा? जिसका ज्ञान अधिक हो वह कम पढ़े हुए को जीत लेता है। कभी किसी ने कहा है कि शास्त्रार्थ में धोखेबाजी होती है? जिसे हथियार चलाने में निपुणता प्राप्त हो वह नौसिखुए को बिलकुल हरा देता है। क्या यह धर्म है? इसी तरह जो ताकतवर है वह कमजोर को पछाड़ ही देगा। आप क्या इसे भी धोखा कहेंगे? सयाने-सयाने की टक्कर कभी-कभी ही होती है। हर बात में जानकार या मंजा हुआ व्यक्ति कम जानकार को हरा दिया करता है। इसमें धोखेबाजी या न्याय का निर्णय कौन करे? पांसे के खेल की भी यही बात है। मंजा हुआ खिलाड़ी कच्चे को हरा देता है। यह कोई धोखा हो सकता है? हां, यह कहिये कि मुझे हार जाने का डर लग रहा है, लेकिन इसमें धर्म की आड़ लेना उचित नहीं।"

युधिष्ठिर कुछ गरम होकर बोले— "राजन्! ऐसी बात नहीं है। अगर मुझसे खेलने को कहा गया तो मैं ना नहीं करूंगा। यही मेरा कहना है। आप कहते हैं तो मैं तैयार हूं। मेरे साथ खेलेगा कौन?"

दुर्योधन तुरंत बोल उठा–– "मेरी जगह खेलेंगे तो मामा शकुनि; किंतु बाजी के लिए जो धन वा रत्नादि चाहिए वे मैं दूंगा ।"

युधिष्ठिर ने सोचा था कि दुर्योधन खेलेगा तो उसे तो मैं सहज ही में हरा दूंगा । किन्तु मंजे हुए खिलाड़ी शकुनि के विरुद्ध खेलते उन्हें जरा हिचकिचाहट-सी मालूम हुई ।

बोले––"मेरी राय यह है कि किसी एक की जगह दूसरे को न खेलना चाहिए। यह खेल के साधारण नियमों के विरुद्ध है ।"

"अच्छा तो अब दूसरा बहाना बना लिया !" शकुनि ने युधिष्ठिर की हंसी उड़ाते हुए कहा ।

युधिष्ठिर ने कहा–– "ठीक है। जाने दीजिए। मैं खेलूंगा ।"

सारा मंडप दर्शकों से खचाखच भरा था। द्रोण, भीष्म, कृप, विदुर, धृतराष्ट्र जैसे वयोवृद्ध भी उपस्थित थे। यह बात साफ मालूम होने पर भी कि यह खेल झगड़े की जड़ साबित होगा, वे उसे रोक नहीं पाते थे। उनके चेहरे पर उदासी छाई हुई थी। इकट्ठे हुए दूसरे राजकुमार बड़े चाव से खेल को देख रहे थे ।

पहले रत्नों की बाजी लगी। फिर सोने-चांदी के खजानों की और उसके बाद रथों और घोड़ों की। तीनों बाजियां युधिष्ठिर हार गए। इस पर युधिष्ठिर ने नौकर-चाकरों की बाजी लगाई। उसे भी हार गए। फिर तो अपनी सारी सेना और हाथी की बाजी लगाई और हार गए। शकुनि का पांसा मानो उसके इशारों पर चलता था ।

खेल में युधिष्ठिर बारी-बारी से अपनी गायें, भेड़-बकरियां, दास-दासी, रथ, घोड़े, हाथी, सेना, देश, देश की प्रजा सब खो बैठे। लेकिन उनका चस्का न छूटा। भाइयों के शरीरों पर जो गहने-कपड़े थे उनको भी बाजी पर लगा दिया और हार गए ।

"और कुछ बाकी है ?" शकुनि ने पूछा ।

यह सांवले रंग का सुन्दर युवक, मेरा भाई नकुल खड़ा है। वह भी मेरा ही धन है। इसकी बाजी लगाता हूं। चलो !" युधिष्ठिर ने जोश के

साथ कहा ।

शकुनि ने कहा— "अच्छा, यह बात है ! तो यह लीजिये । आपका प्यारा राजकुमार अब हमारा हो गया !" कहते-कहते शकुनि ने पांसा फेंका और बाजी मार ली ।

युधिष्ठिर ने कहा— "यह है मेरा भाई सहदेव, जिसने सारी विद्याओं का पार पा लिया है । इस विख्यात पंडित की बाजी लगाना उचित तो नहीं, फिर भी लगाता हूं । चलो, देखा जायगा ।"

"यह चला, और वह जीता ।" कहते हुए शकुनि ने पांसा फेंका । सहदेव को भी युधिष्ठिर गंवा बैठे ।

अब दुरात्मा शकुनि को आशंका हुई कि कहीं युधिष्ठिर खेल बन्द न कर दे । बोला—"युधिष्ठिर, शायद आपकी निगाह में भीमसेन और अर्जुन माद्री के बेटों से ज्यादा मूल्यवान् हैं ! सो उनको तो बाजी पर आप लगायेंगे नहीं !"

युधिष्ठिर ने कहा— "मूर्ख शकुनि ! शायद तुम्हारी इच्छा यह है कि हम भाइयों में आपस में फूट हो जाय ! अधर्म तो मानो तुम्हारे जीवन की सांस है । सो तुम क्या जानो कि हम पांचों भाइयों के संबंध क्या हैं ? तो यह लो । युद्ध के प्रवाह से हमें जो पार लगाने वाली नाव के समान है, पराक्रम में जिसका कोई सानी नहीं, जिसे विजय-श्री ने मानो अपना निवास-स्थान ही बना लिया है, उस अपने भाई अर्जुन को बाजी पर लगाता हूं । चलो ।"

शकुनि चाहता भी यही था । "तो यह चला," कहते हुए पांसा फेंका । अर्जुन भी हाथ से निकल गया ।

असीम दुर्दैव मानो युधिष्ठिर को बेबस कर रहा था और पतन की ओर बलपूर्वक लिये जा रहा था । बोले—"राजन् ! युद्ध में जो हमारा अगुआ है, असुरों को भय में डालने वाले वज्रधारी देवराज इन्द्र के समान जिसका तेज है, जो अपमान को कभी सह नहीं सकता, शारीरिक बल में संसार-भर में जिसका कोई जोड़ीदार नहीं, अपने उस भाई भीम

को मैं दांव पर लगाता हूं ।" और कहते-कहते युधिष्ठिर वायु-पुत्र भीमसेन से भी हाथ धो बैठे ।

दुष्टात्मा शकुनि ने तब भी न छोड़ा। पूछा— "और कुछ ?"

युधिष्ठिर ने कहा—हां ! यदि इस बार तुम जीत गये तो मैं खुद तुम्हारे अधीन हो जाऊंगा ।"

"लो, यह जीता !" कहते हुए शकुनि ने पांसा फेंका और यह बाजी भी ले गया ।

इस पर शकुनि सभा के बीच उठ खड़ा हुआ और पांचों पाण्डवों को एक-एक करके पुकारा और घोषणा की कि वे अब उसके गुलाम हो चुके हैं। शकुनि को दाद देने वालों के हर्षनाद के साथ-साथ पाण्डवों की इस दुर्दशा पर तरस खाने वालों के हाहाकार से सारा सभा-मण्डप गूंज उठा ।

सभा में इस तरह खलबली मचाने के बाद शकुनि ने युधिष्ठिर से कहा— "एक और चीज है जो तुमने अभी हारी नहीं । उसकी बाजी लगाओ तो अपने आपको भी छुड़ा सकते हो । अपनी पत्नी द्रौपदी की बाजी क्यों नहीं लगाते ?"

और युधिष्ठिर के मुंह से निकल पड़ा—"चलो, अपनी पत्नी द्रौपदी की भी बाजी लगाई !" बात मुंह से निकलने के बाद युधिष्ठिर से न रहा गया। वे विकल हो उठे कि हाय ! मैंने यह क्या कर दिया !

धर्मात्मा युधिष्ठिर की इस बात पर सारी सभा में एकदम हाहाकार मच गया। जहां वृद्ध लोग बैठे थे, उधर से धिक्कार की आवाजें आने लगीं । लोग बोले—"छिः छिः, कैसा घोर पाप है !" कुछ ने आंसू बहाये और कुछ लोग पसीने से तर-बतर हो गए ।

दुर्योधन और उसके भाइयों ने बड़ा कोलाहल मचाया और आनन्द से नाच उठे। युयुत्सु नाम का धृतराष्ट्र का एक बेटा शोक-सन्तप्त हो उठा और ठंडी आह भरकर सिर झुका लिया। इतने में शकुनि ने पांसा फेंककर कहा—"यह लो, यह बाजी भी मेरी ही रही ।"

बस, फिर क्या था ? दुर्योधन ने विदुर को आदेश देते हुए कहा---"आप अभी रनवास जायें और पांडवों की प्राणप्यारी द्रौपदी को ले आयें। उससे कहें कि जल्दी आवे। उसे महल में झाड़ू देने का काम करना होगा।"

विदुर बोले---"मूर्ख ! नाहक क्यों मृत्यु को न्योता देने चला है ! ध्यान रखो। तुम्हारी दशा ठीक उसीकी-सी है, जो किसी अंधेरे अथाह गड्ढे के मुंह पर रस्सी से बँधा लटक रहा हो। अपनी विषम परिस्थिति का तुम्हें ज्ञान नहीं, इसी कारण राजोचित व्यवहार छोड़कर एक निरे गंवार की-सी बातें करने लगे हो !"

दुर्योधन को यों आड़े हाथों लेने के बाद विदुर ने सभासदों की ओर देखकर कहा---"एक बार पराधीन हो चुकने के बाद युधिष्ठिर को कोई अधिकार नहीं कि वे पांचाल-राज की बेटी की बाजी लगाये। कौरवों का अन्त समीप आ गया प्रतीत होता है। इसीलिए अपने हित की बात नहीं सुनते हैं और अपने ही पांव तले गड्ढा खोद रहे हैं।"

●

विदुर की बातों से दुर्योधन बौखला उठा। अपने सारथि प्रतिगामी को बुलाकर उससे कहा---"विदुर तो हमसे जलते हैं और पांडवों से डरते हैं। तुम्हें तो कुछ डर नहीं है ? अभी रनवास में जाओ और द्रौपदी को बुला लाओ।"

: २६ :

द्रौपदी की व्यथा

आज्ञा पाकर प्रतिगामी रनवास में गया और द्रौपदी से बोला---"द्रुपदराजकी पुत्री ! चौपड़ के खेल के भँवर में पड़कर युधिष्ठिर आपको हार बैठे। आप तो अब राजा दुर्योधन के अधीन हो गईं। राजा की

आज्ञा है कि आप धृतराष्ट्र के राज-महल में नौकरानी बनकर रहें। मैं इसके लिए आपको ले जानें के लिए आया हूं।"

राजसूय-यज्ञ करके राजाधिराज की पदवी जिन्होंने प्राप्त कर ली थी, उन सम्राट् युधिष्ठिर की पटरानी द्रौपदी प्रतिगामी की इस अनहोनी-सी बात को सुनकर भौंचक्की-सी रह गई। पर जरा संभलकर बोली--"प्रतिगामी, मैं यह क्या सुन रही हूं! अपनी ही राजमहिषी की बाजी कभी किसी राजकुमार ने लगाई है? बाजी लगाने के लिए युधिष्ठिर के पास क्या और कोई चीज नहीं रही थी, जो मेरी ही बाजी लगा दी?"

प्रतिगामी ने बड़ी नम्रता से समझाकर कहा--"युधिष्ठिर के पास कोई चीज नहीं रह गई थी।" और तब रथवान ने जुए के खेल में जो कुछ हुआ था उसका सारा हाल कह सुनाया।

प्रतिगामी की बातें सुनकर द्रौपदी अचेत-सी खड़ी रह गई। उसे ऐसा लगा मानो उसका कलेजा फट जायगा। फिर भी वह क्षत्रिय स्त्री थी, जल्दी ही अपने-आपको संभाल लिया। क्रोध के मारे उसकी सुन्दर आंखें लाल हो उठीं मानो आग के अंगारे हों। प्रतिगामी से बोली--"रथवान्! अभी जाकर उन जुए के खिलाड़ी से पूछो कि वे पहले अपने-आपको हारे थे या मुझे? भरी सभाके सामने यह प्रश्न करना और जो उत्तर मिले वह मुझे आकर बताना। उसके बाद मुझे ले जाना।"

प्रतिगामी ने जाकर भरी सभा के सामने युधिष्ठिर से वही प्रश्न किया जिसके लिए द्रौपदी ने उसें आज्ञा दी थी। सुनकर युधिष्ठिर अवाक् से खड़े रह गए! उनसे कोई उत्तर देते न बना।

इस पर दुर्योधन ने प्रतिगामी से कहा--"जाकर द्रौपदी से कहो कि वह स्वयं आकर अपने पति से यह प्रश्न कर ले। तुम उसे अभी यहां ले आओ।"

प्रतिगामी दुबारा रनवास में गया और द्रौपदी के आगे झुककर बड़ी नम्रता से बोला--"राजकुमारी! नीच दुर्योधन की आज्ञा है कि आप स्वयं सभा में आवें और युधिष्ठिर से प्रश्न कर लें।"

द्रौपदी ने कहा—"नहीं, मैं नहीं जाऊंगी। वहां अगर युधिष्ठिर जवाब नहीं देते हैं तो सभा में जो सज्जन विद्यमान हैं उन सबको तुम मेरा प्रश्न सुनाओ और उसका उत्तर मुझे आकर बताओ।"

प्रतिगामी लौटकर फिर सभा में गया और सभासदों को द्रौपदी का प्रश्न सुनाया।

सुनकर दुर्योधन झल्ला उठा। अपन भाई दुःशासन से बोला–"दुःशासन! यह रथ हांकनेवाला भीमसेन से डरता मालूम होता है। तुम्हीं जाकर उस गर्वीली औरत को ले आओ।"

दुरात्मा दुःशासन के लिए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी। खुशी-खुशी वह द्रौपदी के रनवास की ओर चल दिया। वह निर्लज्ज शिष्टता को ताक में रखकर सीधे द्रौपदी के कमरे में घुस गया और बोला, "अरी सुन्दरी, आओ! अब नाहक देर क्यों कर रही हो? तुम्हें जीत लिया है तो शरमाती क्यों हो? कौरवों की बनकर रहना! हमने कुछ अन्याय तो किया नहीं। न्यायोचित ढंग से तुम्हें प्राप्त किया है। सभा में चलो! भाई बुलाते हैं।" कहते-कहते बेशर्म दुःशासन ने द्रौपदी का कोमल हाथ पकड़कर खींचना चाहा!

तीर की चोट से व्याकुल हरिणी की भांति आर्त्तनाद करती हुई द्रौपदी शोकातुर होकर अन्तःपुर में भाग चली। दुःशासन ने वहां भी उसका पीछा किया और उसे पकड़ लिया। फिर उसने द्रौपदी के गुंथे बाल बिखेर डाले, गहने तोड़-फोड़ दिये और उसी अस्त-व्यस्त दशा में उसे बाल पकड़कर बलपूर्वक घसीटता हुआ सभा की ओर ले जाने लगा।

धृतराष्ट्र के बेटे दुःशासन के साथ भारी पाप करने पर उतारू हो गये।

●

सभा में जाकर द्रौपदी ने अपना असीम क्रोध पी लिया और गंभीर स्वर में उपस्थित वृद्धों को लक्ष्य करके बोली–"चौसर के मंजे हुए खिलाड़ी और धोखेबाज लोगों ने कुचक्र रचकर राजा युधिष्ठिर को अपने जाल में

फँसा लिया। मेरी बाजी उनसे लगवाई भी, तो आप सज्जनों ने उसे कैसे मान लिया ? पहले जो खुद ही अपने-आपको पराधीन कर चुका हो—जिसकी स्वतंत्रता छिन गई हो—वह कैसे अपनी पत्नी की बाजी लगा सकता है ! यह कहां का न्याय है कि वह स्त्री भी पराधीन समझी जाय ? कितने ही कुरु-कुल के सज्जन यहां हैं ! आप लोगों के भी पत्नियां, बहू-बेटियां हैं। मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिये, मेरी आपत्ति का समाधान कीजिये।"

पांचालराज-कन्या को यों आर्त्त स्वर में पुकारते और अनाथिनी-सी विकल देखकर भीमसेन कड़ककर बोला—"युधिष्ठिर ! गये-गुजरे लोग भी, जुआ खेलना ही जिनका पेशा होता है, अपनी रखैल स्त्रियों तक की बाजी नहीं लगाते, किंतु आप अन्धे होकर द्रुपद की कन्या को हार बैठे और धूर्तों के हाथों उसका अपमान कराया और ीड़ा पहुँचाई! इस भारी अन्याय को मैं देख नहीं सकता। आप ही के कारण घोर पाप हुआ है। भाई सहदेव ! कहीं से जलती आग ले आ ! जिन हाथों से युधिष्ठिर ने जुआ खेला, उन्हींको मैं जला डालूं।"

भीमसेन को आपे से बाहर देखकर अर्जुन ने उसे रोका और धीरे से कहा—"भैया ! सावधान ! इससे पहले तुमने कभी ऐसी बातें नहीं कीं। हमारे शत्रुओं के रचे हुए कुचक्र ने हमारी भी बुद्धि फेर दी और हमको धर्म छोड़कर अधर्म की ओर ले गया। यदि हम इस जाल में फंस गये तो शत्रुओं का उद्देश्य पूरा हो जायेगा। इसलिए सावधान !"

अर्जुन की बातों से भीमसेन रुक गया और उसने अपने को सम्हाल लिया और क्रोध पीकर रह गया।

द्रौपदी की ऐसी दीन अवस्था देखकर धृतराष्ट्र के एक बेटे विकर्ण को बड़ा दुःख हुआ। वह बोला—"उपस्थित क्षत्रिय वीरो ! क्या कारण है कि इतना भारी अन्याय होते देखकर भी आपने चुप्पी साध ली है ? मैं उम्र में आप लोगों से छोटा हूं। फिर भी बूढ़े अनुभवी लोग जब चुप हैं तो मुझे बोलना ही पड़ता है। सुनिये, चौसर के खेल के लिए युधिष्ठिर को धोखे से बुलावा दिया गया। वे धोखा खाकर इस जाल में फंस गये और

अपनी स्त्री की बाजी लगा दी। यह न्यायोचित नहीं है। दूसरी बात यह है कि द्रौपदी अकेले युधिष्ठिर की ही पत्नी नहीं, बल्कि पांचों पांडवों की है। इसलिए उसकी बाजी लगाने का अकेले युधिष्ठिर को कोई हक नहीं। इसके अलावा एक बार युधिष्ठिर खुद अपनी बाजी लगाकर हार गये तो फिर द्रौपदी की बाजी लगाने का उनको अधिकार ही क्या रहा? मेरी एक और आपत्ति यह है कि द्रौपदी का नाम शकुनि ने पहले लिया था और युधिष्ठिर को उसकी बाजी लगाने के लिए उकसाया था। क्षत्रिय लोगों ने चौसर के जो नियम बना रखे हैं यह उनके बिलकुल विरुद्ध है। किसी चीज की बाजी लगाने की सलाह विपक्ष का खिलाड़ी कैसे दे सकता है? इन सब बातों के आधार पर मैं इस खेल को नियम-विरुद्ध ठहराता हूं। मेरी राय में द्रौपदी नियम-पूर्वक नहीं जीती गई।"

युवक विकर्ण जब बोल चुका तो इकट्ठे लोगों के ईश्वर-प्रदत्त विवेक पर से मानो परदा हट गया। सभा में बड़ा कोलाहल मच गया। सब एक स्वर से विकर्ण की प्रशंसा करने लगे और बोले—"धर्म की रक्षा हो गई। धर्म की रक्षा हो गई।"

इतने में कर्ण उठ खड़ा हुआ और क्रुद्ध होकर बोला—"विकर्ण, अभी तुम बच्चे हो। सभा में इतने बड़े-बूढ़ों के होते हुए तुम कैसे बोल पड़े! बड़े आये तर्क-वितर्क करने वाले! जैसे आग सुलगाने वाली फूंकनी को वही आग जला देती है, उसी तरह तुम भी उसी कुल का सर्वनाश करने पर तुले हुए हो जिसमें तुम्हें जन्म मिला है। नासमझ, उतावले कहीं के! युधिष्ठिर ने पहली ही बाजी में अपनी सारी संपत्ति खो दी थी। उसी घड़ी इस स्त्री को भी तो खो दिया था? इसपर और वादविवाद कैसा? जब युधिष्ठिर की सारी संपत्ति शकुनि की हो चुकी है तो इनके शरीर पर जितने कपड़े हैं ये भी सब शकुनि के हो चुके हैं। बस! इसमें शंका की या आपत्ति की कोई गुंजाइश नहीं है। भाई दुःशासन! इन पाण्डवों के और द्रौपदी के कपड़े और गहने सब उतारकर शकुनि को दे दो!"

कर्ण की बात क्या थी, मानो पांडवों पर वज्र टूट पड़ा। फिर भी पांचों भाइयों ने यह सोचकर कि अभी धर्म की परीक्षा शायद होनी बाकी है, अपने अंगोछे उठाकर सभा में फेंक दिये।

यह देखकर दुःशासन द्रौपदी के पास गया और उसका वस्त्र पकड़कर खींचने लगा। बेचारी द्रौपदी क्या करे! मनुष्यों से सारी आशा छोड़कर उसने ईश्वर की शरण ली और आर्त्त स्वर में पुकार उठी-- "जगदीश! परमात्मन्! अब तू ही मेरी लाज रख! तू मुझ दीन अबला को न छोड़ देना! तेरी शरण लेती हूं! दीनबन्धो! मेरी सुन! मुझे बचा।" कहती-कहती शोक-विह्वल द्रुपदकन्या तत्काल ही मूर्छित हो गई।

उस समय सभा वालों ने एक अद्‌भुत चमत्कार देखा। दुःशासन द्रौपदी का वस्त्र पकड़कर खींचने लगा। ज्यों-ज्यों वह खींचता गया त्यों-त्यों वस्त्र भी बढ़ता ही गया। अलौकिक शोभा वाले वस्त्रों के सभा में ढेर लग गए!

अंत में खींचते-खींचते दुःशासन की दोनों भुजाएं थक गईं। हांफता हुआ वह थकान से चूर होकर बैठ गया। यह दैवी चमत्कार देखकर सभा के लोगों में कंपकंपी-सी फैल गई और धीमे स्वर में बातें होने लगीं।

इतने में भीमसेन उठा। उसके होंठ मारे क्रोध के फड़क रहे थे। ऊँचे स्वर में उसने यह भयानक प्रतिज्ञा की--"शपथ खाकर कहता हूँ कि जब तक भरत-वंश पर बट्टा लगाने वाले इस दुरात्मा दुःशासन की छाती फाड़कर इसके गरम खून से अपनी प्यास न बुझा लूंगा तबतक इस संसार को छोड़कर पितृ लोक नहीं जाऊँगा!" भीमसेन की इस भीषण प्रतिज्ञा को सुनकर उपस्थित लोगों के हृदय भय के मारे थर्रा उठे।

अचानक सियार बोलने लगे। गधों के रेंकने और मांसाहारी चील-कौओं के चीखने की मनहूस आवाज चारों ओर से आने लगी।

●

धृतराष्ट्र ने ताड़ लिया कि जो दुर्घटना घट चुकी थी, उससे मेरे वंश

का आमूल उच्छेदन होने की सम्भावना है। आपसी वैर-विरोध की जो आग भड़क उठी है वह बुझाये न बुझेगी और उससे मेरे बेटों पर बड़ी भारी आफ़त आ जायगी। यह स्थिति समझ कर धृतराष्ट्र ने द्रौपदी को अपने पास बुलाया और दुर्योधन आदि लोगों पर उसके असीम क्रोध और घृणा को दूर करने तथा उसको समझा कर शान्त करने का प्रयत्न किया। द्रौपदी से मीठे स्वर में वह बोले—"पांचालराज-कन्ये! मेरी प्यारी बहू! तुम्हें कौनसा वरदान दूं? बताओ तो!"

युधिष्ठिर से धृतराष्ट्र बोले—"अजातशत्रु युधिष्ठिर! जीते रहो, कुशल से रहो! दुर्योधन की करतूत से मन भारी न कर लेना। अपनी माता गांधारी और मुझ अन्धे की खातिर इन लड़कों की भूल-चूक माफ़ कर देना। पांसा खेलकर जो राज्य-संपत्ति एवं स्वाधीनता खो चुके हो उन्हें मैं वापस दिलाये देता हूं। इनको लेकर इन्द्रप्रस्थ लौट जाओ और सुख और स्वतंत्रतापूर्वक वहां रहो।"

धृतराष्ट्र के यों कहने पर भी युधिष्ठिर और उनके भाइयों का मन शान्त न हुआ। खेल में जो हार चुके थे उसे यों वापस लेना उन्हें मुनासिब न लगा। ठीक ही कहा है कि 'विनाश काले विपरीत बुद्धिः'। मुसीबत और विपताएँ जब आ जाती हैं तो मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। पृथ्वी का बोझ कम होना था, अतः धर्मात्मा युधिष्ठिर की बुद्धि में कलि ने प्रवेश कर लिया और अनुचित काम करने पर उनको विवश कर दिया। सबके रोकने पर भी युधिष्ठिर फिर से पांसा खेलने बैठ गये। इस दफा यह शर्त रही कि जो हारे वह अपने भाइयों समेत बारह बरस वन में रहे और एक बरस ऐसे छिपकर कहीं रहे कि बन्धु-जनों को उनके ठिकाने का पता न होने पाये। यह शर्त मानकर युधिष्ठिर ने पांसा फेंका और हार गये।

पांचों पांडवों ने वनवास की दीक्षा ले ली और सभा के लोगों से विदा होकर वन में चले गये। उपस्थित लोगों ने लज्जा के मारे सिर झुका लिया।

: २७ :

धृतराष्ट्र की चिन्ता

पांचों पांडव द्रौपदी को साथ लिये वन की ओर जाने लगे। उनको देखने की इच्छा से सड़कों पर नगर के लोगों की भारी भीड़ इकट्ठी हो गई। भीड़ इतनी थी कि सड़कों पर चलना असंभव था। ऊंचे भवनों में, मंदिरों के गोपुरों (बुरजों) और पेड़ों पर बैठे लोग पांडवों को देखने लगे। स्त्रियां अट्टालिकाओं तथा झरोखों से देख रही थीं। राजाधिराज युधिष्ठिर को जो छत्री और बाजों के समेत रथारूढ़ होकर जाने योग्य थे, वल्कल और मृगचर्म पहने, पैदल जाते देख लोगों में हाहाकार मच गया। कुछ लोगों ने 'हाय' 'हाय' की, कुछने 'छीः छीः' करके कौरवों को धिक्कारा। सबकी आंखों में आंसू उमड़ आये।

धृतराष्ट्र ने विदुर को बुला भेजा और उनके आने पर पूछा––"विदुर, पांडु के बेटे और द्रौपदी कैसे जा रहे हैं? मैं अन्धा हूं! देख नहीं सकता। तुम्हीं बताओ, कैसे जा रहे हैं वे?"

विदुर ने कहा––"कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर कपड़े से चेहरा ढांक कर जा रहे हैं। भीमसेन अपनी दोनों भुजाओं को निहारता, अर्जुन हाथ में कुछ बालू लिये उसे बिखेरता, नकुल और सहदेव सारे शरीर पर धूल रमाये हुए, क्रमशः युधिष्ठिर के पीछे-पीछे जा रहे हैं। द्रौपदी ने बिखरे हुए केश से सारा मुख ढक लिया है और आंसू बहाती हुई युधिष्ठिर का अनुसरण कर रही है। पुरोहित धौम्य कालदेव की स्तुति में सामवेद के छन्द सस्वर गान करते हुए साथ-साथ जा रहे हैं।"

यह वर्णन सुनकर धृतराष्ट्र की आशंका और चिन्ता पहले से भी अधिक प्रबल हो उठी। उन्होंने बड़ी उत्कंठा से पूछा–– "और नगर

के लोग क्या कह रहे हैं ?"

विदुर ने कहा—"महाराज ! सुनिये। प्रत्येक जाति और वर्ण के लोग एक स्वर से यही कह रहे हैं कि पांडु के बेटों को धृतराष्ट्र ने लालच में पड़कर जंगल में भेज दिया। कहते हैं—'हा दैव ! हमारे अधीश, हमारे नायक, नगर छोड़कर जा रहे हैं ! कुरुवंश के वृद्धों को धिक्कार है, जिन्होंने नासमझ लड़कों का-सा व्यवहार किया ! धिक्कार है धृतराष्ट्र को और उनके लालच को !' इस तरह नगर के सभी लोग हमारी निन्दा कर रहे हैं। नीले आकाश में बिजली कौंधने लगी। पृथ्वी कांप उठी। और भी कितनी ही अनिष्ट की सूचनाएं हुईं।"

विदुर धृतराष्ट्र के साथ यों बातें कर रहे थे कि इतने में नारद मुनि कहीं से उधर आ निकले। उन्होंने धृतराष्ट्र को बताया कि दुर्योधन के पाप-कर्म के कारण आज से ठीक चौदह वर्ष के बाद सारे कौरवों का नाश हो जायगा। यह भविष्यवाणी सुनाकर देवर्षि नारद जिस प्रकार एकाएक आये थे वैसे ही चले गये।

यह सब सुनकर दुर्योधन और उसके साथी भय से कांपते हुए आचार्य द्रोण के पास गये और उनके आगे गिड़गिड़ाने लगे—

"आचार्य ! सारा राज्य आप ही का है। हम आप ही की शरण हैं। आप हमारा साथ न छोड़ें।"

इस पर द्रोणाचार्य बोले—"समझदार लोगों का मत है कि पाण्डव देवता के अंशावतार हैं, अजेय हैं। मैं भी यह जानता हूं। परन्तु फिर भी धृतराष्ट्र के पुत्रों ने मेरी शरण ली है, सो मैं उन्हें ठुकरा नहीं सकता। जहां तक मुझसे बन पड़ेगा, हृदयपूर्वक प्रेम के साथ उनकी सहायता किया करूंगा; किंतु विधि के आगे किसीका बस नहीं चलता। वनवास की अवधि पूरी होने पर पाण्डव बड़े क्रोध के साथ लौट आयेंगे। उनका ससुर द्रुपद मेरा शत्रु है। एक बार उस पर क्रुद्ध होकर मैंने उसे अपमानित किया था। उस अपमान का बदला लेने और मुझे मारने के लिए एक पुत्र की कामना करते हुए द्रुपद

ने यज्ञ किया था और उसके फलस्वरूप उसके धृष्टद्युम्न नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ है। मेरे शत्रु राजा द्रुपद के साथ पाण्डवों की जो गहरी मित्रता एवं सम्बन्ध हुआ है, लोग कहते हैं कि वह मेरे वध ही के हित विधि का रचा हुआ एक कुचक्र है। तुम लोगों की करतूतों से उसी लोकमत की पुष्टि हो रही है। तुम्हें सावधान किये देता हूं, तुम लोगों का अन्त अब दूर नहीं है। जो कुछ पुण्य-कर्म करना हो, बड़े-बड़े यज्ञ करने हों, सुख-भोगना हो, सब अभी कर लो। विलंब न करना। आज से चौदह वर्ष बाद तुम पर भारी विपदा पड़ने वाली है। दुर्योधन, मेरी सलाह मानो तो पांडवों से संधि कर लो। उसीमें तुम्हारा भला है। मैंने अपनी राय दे दी। आगे तुम्हारी जो इच्छा।"

द्रोणाचार्य की बातें दुर्योधन को जरा भी पसंद न आईं।

●

"राजन्, आजकल आप दुःखी क्यों रहते हैं?" संजय ने राजा धृतराष्ट्र से पूछा।

"पांडवों से बैर मोल लेने पर निश्चिन्त रह ही कैसे सकता हूं?" अन्धे राजा ने उत्तर दिया।

संजय बोला—"आप सच कह रहे हैं। जिसका नाश होना निश्चित हो, उसकी बुद्धि फिर जाती है। वह भले को बुरा और बुरे को भला समझने लग जाता है। प्रारब्ध लाठी से किसीका सिर थोड़े ही फोड़ता है! जिसे दण्ड देना हो उसका विवेक हर लेता है, जिससे भलाई के भ्रम में वह बुराई कर बैठता है और अपनेआप ही नाश के गड्ढे में गिर जाता है। आपके बेटों की भी यही बात है। उन्होंने द्रौपदी का अपमान किया और अपने ही हाथों अपने सर्वनाश का गड्ढा खोद लिया।"

"समझदार विदुर ने यह सलाह दी थी जो धर्म एवं राजनीति के अनुकूल थी। किंतु मैंने उसे ठुकरा दिया और अपने नासमझ बेटे की बात मान ली। हमें धोखा हो गया।" धृतराष्ट्र ने पश्चात्ताप

के साथ कहा ।

विदुर बार-बार धृतराष्ट्र से आग्रह करते कि आप पांडवों के साथ संधि कर लें । कहते—"आपके बेटों ने घोर पाप किया है जो युधिष्ठिर को प्रवंचना में डाल दिया । अपने बेटों को कुमार्ग से सही रास्ते पर लाना आप ही का कर्त्तव्य है । आपको ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि जिससे पांडवों को आपका दिया हुआ राज्य फिर से प्राप्त हो जाये । युधिष्ठिर को वन से वापस बुला भेजें और अपने पुत्रों तथा पांडवों में संधि करवा दें । यदि दुर्योधन आपकी सलाह न मानें तो उसको बस में करना आप ही का कर्त्तव्य है ।" विदुर अक्सर इसी भांति धृतराष्ट्र को उपदेश दिया करते थे ।

●

विदुर की बुद्धिमत्ता का धृतराष्ट्र पर भारी प्रभाव था, इसलिए शुरू-शुरू में वे विदुर की ये बातें सुन लिया करते थे । परन्तु बार-बार विदुर की ऐसी ही बातें सुनते-सुनते वह ऊब उठे ।

एक दिन विदुर ने फिर वही बात छेड़ी तो धृतराष्ट्र झुंझलाकर बोले— "विदुर ! तुम हमेशा पांडवों की तरफदारी कर के मेरे बेटों के विरुद्ध बातें किया करते हो । मालूम होता है कि तुम हमारा भला नहीं चाहते, नहीं तो फिर बार-बार कैसे कहते कि मैं दुर्योधन का साथ छोड़ दूं । दुर्योधन मेरे कलेजे का टुकड़ा है, उसे कैसे ठुकरा दूं ? ऐसी सलाह देने से क्या फायदा हो सकता है जो न न्यायोचित है, न मनुष्य-स्वभाव के अनुकूल ही । तुम पर से मेरा विश्वास उठ गया है । मुझे अब तुम्हारी सलाह की जरूरत नहीं । अगर चाहो तो तुम भी पांडवों के पास चले जाओ !"

धृतराष्ट्र यह कहकर बड़े क्रोध के साथ विदुर के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना अन्तःपुर में चले गये ।

विदुर ने मन में कहा कि अब इस वंश का सर्वनाश निश्चित है । उन्होंने तुरन्त अपना रथ जुतवाया और उस पर चढ़ कर जंगल में उस

ओर तेजी से चल पड़े, जहां पांडव अपना वनवास का काल व्यतीत कर रहे थे ।

●

विदुर के चले जाने पर बूढ़े धृतराष्ट्र और भी चिन्तित हो गये । वह सोचने लगे कि मैंने यह क्या कर दिया । मेरी इस गलती से तो पांडवों की ही ताकत बढ़ेगी । विदुर को भगाकर भारी भूल कर दी । यह सोचकर धृतराष्ट्र ने संजय को बुलाया और कहा—"संजय ! मैंने अपने प्रिय भैया विदुर को बहुत बुरा-भला कह दिया था । इससे वह गुस्सा होकर बन में चला गया है । तुम जाकर उसे किसी तरह समझा-बुझाकर मेरे पास वापस ले आओ ।"

धृतराष्ट्र की बात मानकर संजय जंगल में पांडवों के आश्रम में जा पहुंचे । देखा, पांडव मृगचर्म पहन ऋषि-मुनियों के संग धर्म-चर्चा कर रहे हैं और विदुर भी उन्हीं के साथ हैं । विदुर से संजय ने बड़ी नम्रता के साथ कहा—"धृतराष्ट्र अपनी भूल पर पछता रहे हैं । आप यदि अब लौटेंगे नहीं तो वे अपने प्राण छोड़ देंगे । आप अभी वापस लौट चलिए ।"

यह बात सुनकर धर्मात्मा विदुर युधिष्ठिर आदि से विदा लेकर हस्तिनापुर के लिए चल पड़े ।

हस्तिनापुर पहुंचकर विदुर जब धृतराष्ट्र के सामने गये तो धृतराष्ट्र ने उन्हें बड़े प्रेम से गले लगा लिया और गद्‌गद् स्वर में बोले—"निर्दोष विदुर ! मैं उतावली में जो बुरा-भला कह बैठा, उसका बुरा न मानना और मुझे क्षमा कर देना ।"

●

एक बार महर्षि मैत्रेय धृतराष्ट्र की राज-सभा में पधारे । राजा ने उनका समुचित आदर-सत्कार करके प्रसन्न किया । फिर महर्षि से हाथ जोड़कर पूछा—"भगवन् ! कुरुजांगल के बन में आपने मेरे प्यारे बेटे वीर पांडवों को तो देखा होगा । वे कुशल से तो हैं ? क्या वे बन ही में

रहना चाहते हैं ? हमारे कुल में आपसी मित्रभाव कहीं कम तो नहीं हो जायेगा ? आप मेरी शंका का समाधान करने की कृपा करें।"

महर्षि मैत्रेय ने कहा-- "राजन् ! काम्यक वन में संयोग से युधिष्ठिर से मेरी भेंट हो गई थी। वन के दूसरे ऋषि-मुनि भी उनसे मिलने उनके आश्रम में आये हुए थे। हस्तिनापुर में जो कुछ हुआ था उसका सारा हाल उन्होंने मुझे बताया था। यही कारण है कि मैं आपके यहां आया हूं। आपके और भीष्म के जीतेजी ऐसा नहीं होना चाहिए था।"

इस अवसर पर दुर्योधन भी सभा में मौजूद था। मुनि ने उसकी ओर देखकर कहा-- "राजकुमार, तुम्हारी भलाई के लिए कहता हूं, सुनो। पांडवों को धोखा देने का विचार छोड़ दो। वे बड़े वीर हैं। महाराज कृष्ण एवं द्रुपद उनके रिश्तेदार हैं। उनसे बैर मोल न लो। उनके साथ संधि कर लो। इसी में तुम्हारी भलाई है।"

ऋषि ने यों मीठी बातों से दुर्योधन को समझाया; पर जिद्दी व नासमझ दुर्योधन ने उनकी ओर देखा तक नहीं। कुछ बोला भी नहीं, बल्कि अपनी जांघ पर हाथ ठोंकता और मुस्कराता खड़ा रहा।

दुर्योधन की इस ढिठाई को देखकर महर्षि बड़े क्रोधित हुए। उन्होंने कहा-- "दुर्योधन, अपने घमण्ड का फल तुम अवश्य पाओगे। लड़ाई के मैदान में भीमसेन की गदा से तुम्हारी जांघ टूटेगी और इसी से तुम्हारी मृत्यु होगी।"

धृतराष्ट्र ने फौरन उठकर मुनि के पांव पकड़ लिये और विनय की-- "महर्षि ! शाप न दें। कृपा करें।"

मुनि ने कहा--"राजन् ! यदि दुर्योधन पांडवों से सन्धि कर लेगा तो मेरे शाप का प्रभाव नहीं होगा, वरना वह होकर ही रहेगा।" कहते-कहते महर्षि उठे और सभा से चले गये।

: २८ :

श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा

सौभराज शाल्व, शिशुपाल का मित्र था। उसे जब खबर मिली कि श्रीकृष्ण के हाथों शिशुपाल का वध हो गया है तो उससे न रहा गया। श्रीकृष्ण पर उसे असीम क्रोध हो आया। तत्काल ही एक भारी सेना इकट्ठी करके द्वारिका पर चढ़ाई कर दी और नगर को चारों तरफ से घेर लिया। श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ से लौटे नहीं थे। इस कारण उनकी अनुपस्थिति में राजा उग्रसेन ने द्वारिका की रक्षा का प्रबन्ध किया।

महाभारत में द्वारिका के घेरे जाने का जो वर्णन है, उसे पढ़ते-पढ़ते ऐसा भ्रम हो जाता है कि कहीं हम आजकल की लड़ाई का वर्णन तो नहीं पढ़ रहे हैं! उन दिनों के युद्ध की कार्रवाइयां और तरीके ठीक आजकल के-से मालूम होते हैं।

द्वारिका का किलेबन्द नगर एक टापू में बसा था। शत्रु के आक्रमण से बचाव के लिए हर प्रकार का बन्दोबस्त किया गया था। दुर्ग की बनावट ही ऐसी थी कि उसमें हजारों सैनिक सुरक्षित रहकर लड़ सकते थे। दुर्ग पर कई यंत्र लगे हुए थे। जमीन खोद कर कई सुरंग के रास्ते बनाए गए थे। किले के अन्दर तरह-तरह के हथियारों, पत्थर फेंकने वाली कलों, यहां तक कि बारूद के भी 'गोदाम' भरे पड़े थे। सूरमाओं के कितने ही दल दुर्ग के अन्दर पहले ही से तैयार रखे गए थे और कितने ही जवान नये सिरे से भरती किये गये थे। शत्रु के घेरा डालते ही उग्रसेन ने डौंडी पिटवा दी कि नगर के अन्दर ताड़ी जैसी नशीली चीजों का सेवन करना मना है। साथ ही नट-नटियों और तमाशा दिखाने वालों को नगर से निकाल दिया गया। जहां कहीं भी

समुद्र पार करने के लिए पुल बने थे उन्हें तोड़ दिया गया। जहाज दूर पर ही रोक दिये गए। किले की चारों ओर की खाइयों में लोहे की सूलियां गाड़ दी गईं। किले की दीवारों की मरम्मत करादी गई। रास्तों पर जहां-तहां कंटीले तार की बाड़ लगा दी गई।

वैसे भी द्वारिका नगरी दुर्गम थी और शाल्व के घेरा डालने के बाद तो उसको और भी सुरक्षित कराने का प्रबन्ध कर दिया गया। लोगों के आने-जाने पर सख्त पाबन्दियां लगा दी गईं। मुहर लगे हुए अनुमति पत्रों के बगैर शहर से न कोई बाहर जा सकता था, न अन्दर आ ही सकता था। सैनिकों का वेतन बढ़ा दिया गया और नियत समय पर दिया जाने लगा। सेना में जो जवान भरती हुए उनको अच्छी तरह जांच लिया जाता था।

इस प्रकार द्वारिका सब तरह से सुरक्षित थी। शाल्व को बड़ी निराशा हुई और वह घेरा उठाकर भाग गया।

श्रीकृष्ण जब द्वारिका लौटे तो उन्होंने देखा कि शाल्व के आक्रमण के कारण द्वारिका के लोगों को बड़ी मुसीबत उठानी पड़ी है। यह देख कर श्रीकृष्ण को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने सौभदेश पर चढ़ाई कर के शाल्व को युद्ध में बुरी तरह हरा दिया।

इसी बीच हस्तिनापुर में हुई घटनाओं की खबर श्रीकृष्ण को मिली। उन्हें यह भी पता लगा कि पांचों भाई द्रौपदी समेत बन में चले गये हैं। वे फौरन ही उस बन को चल पड़े जहां पाण्डव ठहरे हुए थे।

कितने ही राजवंशों के लोगों का पाण्डवों से बड़ा स्नेह था तथा उनको वे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। जब इन सबने सुना कि श्रीकृष्ण पाण्डवों से भेंट करने जंगल में जा रहे हैं तो वे भी उनके साथ हो लिये। इस प्रकार क्षत्रिय राजाओं का एक भारी दल पाण्डवों के आश्रम में जा पहुंचा।

दुर्योधन और उनके साथियों की करतूतों का हाल जब श्रीकृष्ण और दूसरे पाण्डव-मित्रों को मालूम हुआ तो उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। एक स्वर में सबने कहा—"दुराचारी कौरवों के खून से हम पृथ्वी

की प्यास बुझायेंगे ।"

आगन्तुक राजा लोग जब अपने मन की कह चुके तो द्रौपदी श्रीकृष्ण से मिली । श्रीकृष्ण को देखते ही उसकी आंखों से गंगा-यमुना बह चली । बड़ी मुश्किल से वह बोली—"मैं एक ही वस्त्र पहने हुए थी, जब दुष्ट दुःशासन मेरे केश पकड़ कर भरी सभा में मुझे घसीट ले गया। धृतराष्ट्र के बेटों ने मेरा कितना अपमान किया था, कैसी हंसी उड़ाई थी मेरी ! पापियों ने समझ लिया था कि मैं उनकी लौंडी ही बन गई हूं। भीष्म और धृतराष्ट्र तो मानो भूल ही गये कि मैं उनकी बहू हूं और राजा द्रुपद की कन्या हूं। मेरे पति भी मुझे इस अपमान से न बचा सके। हे जनार्दन ! नीच दुष्टों से मैं सताई गई और सारी सभा देखती ही रही! भीम का शारीरिक बल किसी काम का न रहा, अर्जुन का गाण्डीव धनुष भी निकम्मा-सा पड़ा रहा। मैं दीन, असहाय-सी सब सहती रही । संसार में जो बिलकुल ही कमजोर होते हैं वे भी अपनी स्त्री का बचाव किसी-न-किसी प्रकार अवश्य कर लेते हैं। किन्तु राजाधिराज पाण्डु की बहू और वीर पाण्डवों की पत्नी होकर भी मैं अनाथिन-सी अपमानित हुई और किसी ने चूं तक न की! दुष्टों ने मेरे केश पकड़ कर खींचे । जिस पापी दुर्योधन की आज्ञा से ये घोर कर्म हुए उस पापी को जीते रहने का अधिकार ही कैसे रहा ? फिर भी उसकी ओर किसी ने उंगली तक न उठाई । इस तरह अपमानित होने के बाद मेरा जीना बेकार है। मधुसूदन, मेरे न पति है, न पुत्र, न बन्धु ही। मेरा कोई नहीं रहा और आप भी मेरे न रहे !" यह कहते-कहते द्रौपदी के कोमल होंठ फड़कने लगे । उसके शब्द चिनगारियों से मालूम हुए। विशाल आंखों से गरम-गरम आंसुओं की धारा बहने लगी और कलेजा मुंह को आने लगा । वह आगे न बोल सकी।

इस प्रकार करुण स्वर में विलाप करती हुई द्रौपदी को श्रीकृष्ण ने बहुत समझाया और धीरज बंधाया । वह बोले—"बहन द्रौपदी ! जिन्होंने तुम्हारा अपमान किया है, उन सबकी लाशें लड़ाई के मैदान में खून से

लथपथ होकर पड़ेंगी। तुम शोक न करो। मैं वचन देता हूं कि पांडवों की हर प्रकार से सहायता करूंगा। यह भी निश्चय मानो कि तुम सम्राज्ञी के पद को फिर सुशोभित करोगी। चाहे आकाश टूट कर गिर जाये, चाहे हिमालय फटकर बिखर जाये, चाहे पृथ्वी टुकड़ों में बंट जाये, चाहे समुद्र का पानी सूख जाय, मेरा यह वचन झूठा नहीं होगा।"

श्रीकृष्ण की इस प्रतिज्ञा से द्रौपदी का मन खिल उठा। आंखों में आंसू भरे अर्जुन की ओर अर्थ-भरी दृष्टि से द्रौपदी ने देखा। अर्जुन भी द्रौपदी को सांत्वना देते हुए बोला—"हे सुनयने! श्रीकृष्ण का वचन झूठा नहीं हो सकता। वही होगा जो उन्होंने कहा है। तुम धीरज धरो।"

धृष्टद्युम्न ने बहन को सांत्वना दी और समझाते हुए कहा कि श्रीकृष्ण और अर्जुन की प्रतिज्ञाएं किस प्रकार पूरी होंगी। उसने कहा कि द्रोणाचार्य को मैं, भीष्म को शिखण्डी, दुर्योधन को भीमसेन और सूत-पुत्र कर्ण को अर्जुन लड़ाई के मैदान में मौत के घाट उतारेंगे।

श्रीकृष्ण ने कहा—"मैं द्वारिका में नहीं था। यदि होता तो चौसर का यह खेल ही न होने देता। धृतराष्ट्र के न बुलाने पर भी सभा में पहुंच ही जाता और भीष्म, द्रोण जैसे बुजुर्गों को उचित ढंग से समझा-बुझाकर इस नाशकारी खेल को रुकवा देता। मुझे शाल्व राजा से लड़ने के लिए द्वारिका छोड़कर जाना पड़ा था। शिशुपाल को जो मैंने राजसूय-यज्ञ के समय पर मारा था सो उससे नाराज होकर शाल्व ने द्वारिका के राज्य पर जबर्दस्त घेरा डाल दिया था। हस्तिनापुर से द्वारिका जाने पर मुझे इस बात का पता लगा तो मैंने शाल्व का पीछा किया और उसके राज्य पर चढ़ाई कर दी। शाल्व को मौत के घाट उतार कर द्वारिका लौटने को था कि रास्ते में हस्तिनापुर में आये हुए इस महा अनर्थ की खबर मुझे मिली। बस, उसी घड़ी तुम लोगों से मिलने चला आया। जैसे बांध के टूट जाने पर जल को रोका नहीं जा सकता, ठीक उसी तरह तुम्हारे इस दुःख को अभी तुरन्त तो दूर करना सम्भव नहीं है; लेकिन वह दूर तो करना ही है।"

इसके बाद श्रीकृष्ण पाण्डवों से विदा हुए। साथ में अर्जुन की पत्नी सुभद्रा और उसके पुत्र अभिमन्यु को वे द्वारिकापुरी लेते गये। द्रौपदी के पुत्रों को लेकर धृष्टद्युम्न पांचाल देश की ओर रवाना हो गया।

: २६ :

पाशुपतास्त्र

पांचों पांडव द्रौपदी के साथ बन में रहने लगे। शुरू-शुरू में युधिष्ठिर की सहनशीलता की द्रौपदी और भीमसेन बड़ी-बड़ी आलोचना किया करते थे। इन तीनों में जोर की बहस छिड़ जाया करती थी। द्रौपदी और भीमसेन शास्त्रों तथा सूक्तियों का प्रमाण देकर कहते कि क्षत्रिय का धर्म क्रोध ही है, न कि क्षमा या सहनशीलता। भीम कहता—सहनशीलता तो क्षत्रियों को अपमान के गड्ढे में गिरा देती है। पर इन बातों से युधिष्ठिर कभी विचलित नहीं होते। वे कहते—मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता। सहनशीलता और क्षमा हरेक जाति और वर्ग के लोगों के लिए सबसे बड़ा धर्म है। यह सुन भीमसेन और बिगड़ता। वह चाहता था कि वनवास की अवधि पूरी होने से पहले ही दुर्योधन और उसके साथियों पर अचानक हमला कर दिया जाय और उनका काम तमाम करके राज्य पर फिर से अधिकार जमा लिया जाय।

युधिष्ठिर को ताना देते हुए वह कहता—"भाई साहब, तत्त्व की बातें आप करते तो खूब हैं; पर उनका मतलब भी आपकी समझ में आता है? जैसे कोई वेद-मन्त्रों को उनका मतलब जाने बिना ही रटता फिरे और उसीसे संतुष्ट हो जाये, वैसे ही आप भी शास्त्रों की बातें रट रहे हैं। आपकी बुद्धि ठिकाने नहीं है। क्षत्रिय होकर आप ब्राह्मणों की-सी नरमी बरतना चाहते हैं। न तो यह आपको सोहता है, न इससे हमारा काम ही बनेगा। क्षत्रिय को तो चाहिए कि वह निर्दयता और

क्रोध से काम ले। वे ही उसके गुण हैं, न कि सहन-शीलता। शास्त्र भी तो यही कहते हैं, हम वीर क्षत्रिय हैं। हमारे लिए क्या यह उचित है कि कुचाल चलनेवाले धृतराष्ट्र के बेटों की खबर लिये बगैर ही उनको छोड़ दें? धिक्कार है उस क्षत्रिय को जो छल-प्रपंच रचनेवाले शत्रुओं को तत्काल ही उनके किये का फल न चखावे! ऐसे क्षत्रिय का जन्म बेकार है; बल्कि मैं तो कहूंगा कि कुचक्र रचनेवालों का वध करने पर हमें नरक ही क्यों न जाना पड़े, वह स्वर्ग के बराबर होगा। आपकी यह सहनशीलता भी खूब है कि जिसके कारण नीच और धोखेबाज लोग हमारा राज्य छीनकर मौज उड़ा रहे हैं और हम यहां ज़ंगल में पड़े रात भर तारे गिनते रहते हैं! हमारे लिए तो आपकी यह क्षमा-भावना आग से भी ज्यादा भयानक साबित हो रही है। अर्जुन को और मुझको दिन-रात चिन्ता खाये जा रही है। आप अपने कर्त्तव्य की तरफ ध्यान नहीं दे रहे हैं और कुछ प्रयत्न करने के बजाय यही रट लगाते रहते हैं कि प्रतिज्ञा पूरी करनी होगी। मैं पूछता हूं कि वह पूरी हो कैसे? अर्जुन, जिसका यश सारे संसार में फैला हुआ है, इस तरह कैसे छिपकर रह सकता है कि कोई उसका असली परिचय जान ही न सके? कहीं हिमालय पहाड़ को जरा-सी घास के अन्दर छिपाया जा सकता है? और नकुल और सहदेव छिपकर रहें भी तो कैसे? और राजा द्रुपद की यह सुविख्यात पुत्री भी तो हमारे साथ है। वह कहां और कैसे छिपेगी? तिस पर दुर्योधन के पास जासूसों की भी तो कमी नहीं है! यदि हम इस दुःसाध्य काम में उतारू हो भी गये तो धृतराष्ट्र के बेटे भेदिये लगाकर हमें खोज निकाल लेंगे। फिर क्या होगा? नये सिरे से बारह साल का बनवास और एक साल का अज्ञातवास फिर भोगना होगा। यह हम से कैसे हो सकेगा? इस प्रकार प्रतिज्ञा पूरी करना हमारे बस का तो है नहीं। बन में रहते हमें तेरह महीने पूरे हो चुके हैं जैसे सोमलता के न मिलने पर किसी और पत्ते से यज्ञ का काम चला लेते हैं वैसे ही हम भी आपद्धर्म के न्याय से काम ले सकते हैं। तेरह

बरस की जगह तेरह महीने काफी हो सकते हैं। शास्त्रों का कहना है कि प्रवंचना में पड़कर जो प्रतिज्ञा की जाती है उसके टूट जाने पर प्रायश्चित्त करके उसका दोष परिमार्जन किया जा सकता है। बैल पर बोझ लादना होता है जरूर, लेकिन उस बैल को एक मुट्ठी घास खिलाने से उस थोड़े से पाप का प्रायश्चित्त हो जाता है। इसलिए शत्रु का वध करने का निश्चय कीजियेगा। इससे बढ़कर धर्म क्षत्रियों के लिए और कुछ नहीं।"

भीमसेन अकसर इसी प्रकार उत्तेजित होकर बहस किया करता; लेकिन द्रौपदी का ढंग कुछ और था। दुर्योधन और दुःशासन के हाथों जो अपमान सहना पड़ा था, उसकी वह बार-बार याद दिलाती और शास्त्रों-पुराणों से प्रमाण देकर ऐसी जिरह करती कि स्वयं युधिष्ठिर भी चकरा जाते। वे ठंडी आह भरकर विचार में पड़ जाते। सोचते--इन लोगों पर धार्मिक बातों का कोई प्रभाव नहीं होगा। इसलिए वे नीतिशास्त्र का सहारा लेते और अपनी और शत्रु की ताकत की तुलना करके भीमसेन और द्रौपदी को समझाते।

वे कहते--"भूरिश्रवा, द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, अश्वत्थामा आदि बड़े-बड़े योद्धा शत्रु के पक्ष में हैं। इसके अलावा दुर्योधन और उसके भाई स्वयं युद्ध-कुशल हैं। छोटे-बड़े कितने ही राजा दुर्योधन के पक्ष में चले गये हैं। भीष्म और द्रोणाचार्य यद्यपि दुर्योधन को अधिक नहीं मानते हैं, फिर भी वे उसका साथ छोड़ेंगे, ऐसा नहीं दीखता। युद्ध में दुर्योधन की खातिर प्राणों तक की बलि चढ़ाने को वे तैयार हैं। अटल योद्धा कर्ण शस्त्र-विद्या का पार पा चुका है। वह बड़ा ही उत्साही वीर है और इस बात के लिए प्रयत्नशील रहता है और युद्ध के संचालन में भी उसे कमाल हासिल है। ऐसे-ऐसे कुशल योद्धा जब शत्रु के पक्ष में हैं तो अभी हमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। उतावली से काम नहीं बनेगा।"

इस भांति युधिष्ठिर अपने भाइयों की उत्तेजना कम करते और

उनको सहनशील बनाये रखते ।

इसी बीच एक बार व्यासजी से पाण्डवों की भेंट हुई। उन की सलाह मानकर पाण्डवों ने निश्चय किया कि दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए हिमालय जाकर तपस्या करनी चाहिए। इस निश्चय के अनुसार जब भाइयों से बिदा लेने के बाद अर्जुन द्रौपदी से बिदा मांगने आया तो द्रौपदी ने उसे मातृवत् आशीर्वाद दिया और बोली--"अर्जुन, तुम्हारा उद्देश्य पूरा हो ! तुम्हारा कार्य सिद्ध हो। माता कुन्ती ने तुमसे जो-जो कामनाएं की हों वे सब पूरी हों। हम सबके सुख-दुःख जीवन, मान एवं संपत्ति के तुम्हीं आधार हो । अस्त्र प्राप्त कर कुशल-पूर्वक जल्दी लौटना ।"

यहां पर ध्यान देने की बात यह है कि तपस्या के निमित्त जब अर्जुन जाने लगा तो द्रौपदी के हृदय में मातृभाव प्रबल हो उठा था। प्रेम की जगह वात्सल्य ने ले ली थी। माता कुन्ती के स्थान पर स्वयं उसने अपने पति अर्जुन को आशीर्वाद देकर बिदा किया था।

•

तपस्या के लिए अर्जुन हिमालय की ओर चल दिया। चलते-चलते वह इन्द्रकील नामक पहाड़ी पर जा पहुंचा। वहां एक बूढ़े ब्राह्मण से उसकी भेंट हुई ।

"बच्चे ! कौन हो तुम ! कवच पहने, धनुष-बाण और तलवार लिये यहां कैसे भूल पड़े, बेटा ! यह तो तपोवन है । जिन लोगों ने क्रोध और वासना को त्याग दिया हो, उन्हीं तपस्वियों के योग्य है यह स्थान। अस्त्र-शस्त्रों का तो यहां काम ही नहीं है। फिर क्षत्रियों के-से इस भेष में तुम यहां क्या करने आये हो ?" बूढ़े ब्राह्मण ने मुस्कराते हुए पूछा ।

अर्जुन आश्चर्यचकित-सा खड़ा रहा। इतने में ब्राह्मण-रूपी इन्द्र देवता अपने असली रूप में अर्जुन के सामने प्रकट हुए और बोले--"वत्स, तुम्हें देखने की इच्छा हुई, इसीलिए यहां आया हूं । तुम्हें देखकर

मेरा मन संतुष्ट हो गया। तुम्हें जिस वर की इच्छा हो मांगो।"

अर्जुन ने हाथ जोड़कर कहा—"मुझे दिव्य-अस्त्र चाहिए। वही देने की कृपा करें।"

"धनंजय! अस्त्रों को लेकर क्या करोगे? जिस किसी सुख-भोग की इच्छा हो वह मांगो। ऊंचे लोकों की चाह हो तो वह मांगो, दूंगा।" इन्द्र ने अर्जुन को परखने के लिए कहा।

परन्तु अर्जुन विचलित न हुआ। बोला—"देवराज! मुझे सुख भोगने या ऊंचे लोकों में जाने की इच्छा नहीं है। द्रौपदी और अपने भाइयों को बन में छोड़ आया हूं। मुझे सिर्फ कुछ अस्त्रों की आवश्यकता है।"

हजार आंखों वाले इन्द्रदेव अर्जुन की दृढ़ता पर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"महादेवजी को लक्ष्य करके तपस्या करो। उनके दर्शन हो जायं तो तुम्हारी कामना पूरी होगी और तुम्हें दिव्यास्त्र भी प्राप्त होंगे।" कहकर इन्द्र अन्तर्द्धान हो गए।

इन्द्र के कथनानुसार अर्जुन महादेव का ध्यान करके तपस्या करने लगा। इस प्रकार वह कई दिन तक घोर तपस्या करता रहा।

●

हिमालय की एक पहाड़ी के किसी बन में अर्जुन तपस्या में लीन था। एक बार पिनाक-पाणि महादेव पार्वती के साथ व्याध के रूप में उसी बन में आ पहुंचे।

इतने में एक जंगली सुअर अर्जुन पर झपटा। अर्जुन चौंक उठा और गांडीव धनुष तान कर सुअर पर बाण चलाया। ठीक उसी समय पिनाक तानकर महादेवजी ने भी सुअर पर तीर मारा। दोनों तीर सुअर पर एक साथ लगे और उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

"कौन है रे जंगली, जो एक औरत को साथ लिये जंगल में फिर रहा है? जिस जानवर को मैंने लक्ष्य बनाया था उस पर तूने कैसे तीर चलाया?" अर्जुन ने व्याध-रूपी महादेव को डांटकर पूछा।

"ऐ बहादुर! हम तो जंगली लोग हैं। जानवरों से भरे इस जंगल

पर हमारा ही तो अधिकार है । पर तू बता कि इतना सुकुमार होकर इस जंगल में अकेला क्या कर रहा है ?" महादेव ने अर्जुन का मजाक उड़ाते हुए कहा । वे फिर बोले— "सुअर मेरे बाण से मरा है यह मानता है तो ठीक, नहीं तो मेरे साथ लड़कर जीत ले ।"

यह चुनौती सुनकर अर्जुन क्रुद्ध हो उठा और मारे क्रोध के व्याध पर ऐसे-ऐसे बाणों की बौछार करने लगा, जो सांप के समान काटने वाले थे । किन्तु क्या देखता है कि उन बाणों का व्याध पर कोई असर ही नहीं हो रहा है । इस पर अर्जुन ने बाणों की और भी जबरदस्त वर्षा की । पर व्याध के शरीर पर उनका उतना-सा ही प्रभाव हुआ जितना वर्षा की धारा का पहाड़ पर होता है । व्याध के मुख पर प्रसन्नता की झलक थी, यहां तक कि अर्जुन के सारे बाण समाप्त हो गए ।

अब अर्जुन का मन शंकित होगया । वह कुछ घबरा-सा गया । फिर भी संभाल कर उसने धनुष की नोक व्याध के शरीर में भोंकने की कोशिश की । व्याध इस पर भी विचलित न हुआ । हंसते-हंसते उसने अर्जुन के हाथ से धनुष छीन लिया । अजेय वीर अर्जुन एक जंगली के हाथों हार खाकर चौंक पड़ा; परन्तु उसने फिर भी हार नहीं मानी । तलवार खींच कर व्याध पर टूट पड़ा और व्याध के सिर पर जोर का वार किया । किन्तु आश्चर्य ! तलवार के ही टुकड़े-टुकड़े हो गये और व्याध अचल खड़ा रहा । तब अर्जुन ने पत्थरों की बौछार करनी शुरू की । उससे भी काम न बना तो मुट्ठी बांधकर घूंसे मारना शुरू किया । अब की भी अर्जुन को हार खानी पड़ी । जब यह कुछ न बना तो अर्जुन ने व्याध के साथ कुश्ती लड़ना शुरू कर दिया । परन्तु व्याध ने अर्जुन को खूब कसकर पकड़ लिया और उसे बेबस कर दिया ।

अर्जुन को अब कुछ न सूझा । उसका दर्प चूर हो गया । अपने बल का घमण्ड छोड़कर उसने देवाधिदेव महादेव का ध्यान किया । ईश्वर की शरण लेते ही उनके मन में मानो ज्ञान का उजाला फैल गया । वह तुरन्त जान गया कि व्याध कौन था । तुरन्त व्याधरूपी महादेव के

पांव पर गिर पड़ा और क्षमा मांगी। और आशुतोष महादेव ने उसे क्षमा कर दिया। इसके बाद अर्जुन को उसके धनुष-बाण आदि हथियार वापस दे दिये और पाशुपतास्त्र की विद्या एवं और भी कितने ही वरदान दिये।

अर्जुन की प्रसन्नता की सीमा न रही। महादेव के दिव्य-स्पर्श के कारण उसके शरीर के सारे दोष दूर हो गए, उसकी शक्ति एवं कान्ति कई गुना बढ़ गई। महादेव न अर्जुन से कहा—"तुम अब देवलोक जाना और देवराज इन्द्र से भी मिल आना।" यह कहकर महादेव अन्तर्द्धान हो गए, उसी प्रकार जैसे सूरज अपनी सुनहरी ज्योति समेटकर अस्त हो जाता हो।

पर अर्जुन को कुछ चेत नहीं था। वह खड़ा-खड़ा यही सोचता रहा—"क्या देवाधिदेव महादेव मुझे प्रत्यक्ष हुए थे? उनके दिव्य स्पर्श का मुझे सद्भाग्य मिला? मुझे दिव्यास्त्र प्राप्त हो गये? मैं कृतार्थ हो गया।" इस प्रकार खोया-सा अर्जुन खड़ा रहा। इसी बीच इन्द्र के सारथी मातलि ने उसके सामने देवराज का रथ लाकर खड़ा कर दिया। अर्जुन उस पर आरूढ़ होकर इन्द्रलोक को चल दिया।

✓

: ३० :

विपदा किस पर नहीं पड़ती?

वनवास के समय एक बार श्रीकृष्ण और बलराम अपने साथी-संगियों के साथ पाण्डवों से मिलने गये। पाण्डवों की दशा देखकर बलराम का जी भर आया। वह श्रीकृष्ण से बोले—

"कृष्ण! कहते तो हैं कि भलाई का फल अच्छा और बुराई का फल बुरा होता है। परंतु यहां तो मालूम ऐसा पड़ता है कि भलाई या बुराई का असर किसी के जीवन पर पड़ता ही नहीं। यदि ऐसा

न होता तो यह कैसे हो सकता था कि दुर्योधन तो विशाल राज्य का अधीश बना रहे और महात्मा युधिष्ठिर जंगल में वल्कल पहने वैरागियों का-सा जीवन व्यतीत करें ? पापी दुर्योधन और उसके भाइयों की दिन-पर-दिन बढ़ती हो रही है जब कि युधिष्ठिर राज्य, सुख और चैन से वंचित होकर वन में दिन काट रहे हैं। इस उलटे न्याय को देखकर परमात्मा पर से लोगों का विश्वास उठ जाय तो क्या आश्चर्य ! धर्म और अधर्म का इस तरह उलटा नतीजा होते देखकर मुझे शास्त्रों की धर्म-प्रशंसा ढोंग मालूम पड़ती है। राज्य के लोभ में पड़े हुए धृतराष्ट्र मृत्यु के समय अपनी करतूतों का कौन-सा समाधान देंगे ? निर्दोष पाण्डवों और यज्ञ की वेदी से उत्पन्न द्रौपदी को बनवास का यह महान् दुःख झेलते देखकर, और तो और, पत्थर तक पिघल जाते हैं और पृथ्वी भी शोकातुर हो रही है !"

इस पर सात्यकि, जो पास ही खड़ा था, बोल उठा—"बलराम, यह दुःख मनाने का समय नहीं है। रोने-धोने से भी कभी काम बना है ? समय गंवाना ठीक न होगा। आप, श्रीकृष्ण आदि हम सब बन्धुओं के जीते-जी पांडव इस प्रकार बनवास भोगें ही क्यों ? बन्धुओं के नाते हमारा कर्त्तव्य है कि पांडवों का दुःख दूर करने की हम बस भर अपनी ओर से कोशिश करें, भले ही पांडव इस बात का हम से अनुरोध करें या न करें। हमें अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही होगा। चलिए, अपने बन्धु-बांधवों को इकट्ठा करके दुर्योधन के राज्य पर हमला कर दें और दुर्योधन को उसके कर्मों का दण्ड दें। आप और श्रीकृष्ण अकेले ही यह काम कर सकते हैं। मेरा मन तो ऐसा करता है कि कर्ण के सारे अस्त्र-शस्त्र चूर कर दूं और उसका सिर धड़ से अलग कर दूं। दुर्योधन और उनके साथियों का काम तमाम करके पांडवों का छिना हुआ राज्य हम अभिमन्यु को सौंप देंगे। बनवास की प्रतिज्ञा में तो पाण्डव ही न बंधे हुए हैं। वे उसे ख़ुशी से पूरा करते रहें। चलिए, आज का हमारा यही कर्त्तव्य है।"

श्रीकृष्ण, जो बलराम और सात्यकि की बातों को बड़े ध्यान से सुन रहे थे, बोले--"आप दोनों ने जो कहा वह है तो ठीक, किन्तु यह भी तो सोचना चाहिए कि पांडव दूसरों के जीते हुए राज्य को स्वीकार भी करेंगे ? मेरा तो खयाल है कि पांडव जिस राज्य को अपने बाहुबल से न जीतें उसे दूसरों से जितवाना पसंद न करेंगे । वीरों के वंश में पैदा हुई द्रौपदी भी इसे पसन्द न करेगी । युधिष्ठिर राज्य के लोभ से या किसी दूसरे से डरकर अपने धर्म से टलने वाले व्यक्ति नहीं हैं । वे तो अपने प्रण पर अटल रहेंगे । इसलिए हमारे लिए यही उचित होगा कि प्रतिज्ञा पूरी होने पर पांचालराज, कैकय-नरेश आदि मित्रों को साथ लेकर पांडवों का साथ दें और फिर युद्ध में शत्रुओं का वध करें ।"

ये सब बातें सुनकर युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए । बोले--"श्रीकृष्ण ने ठीक ही कहा । हमें अपनी प्रतिज्ञा का ही पालन करना चाहिए । राज्य-प्राप्ति का ध्यान अभी नहीं । श्रीकृष्ण ही केवल मुझे ठीक-ठीक समझते हैं । हम तभी लड़ेंगे जब श्रीकृष्ण उसकी सलाह देंगे । अभी वृष्णि-कुल के वीरों से तो मैं यही कहूंगा कि वे लौट जायं और धर्म पर अटल रहें । फिर कभी मिलेंगे ।"

इस तरह युधिष्ठिर ने अपने हितैषियों को समझा-बुझाकर विदा किया ।

●

अर्जुन को पाशुपतास्त्र-प्राप्ति के लिए गये बहुत दिन बीत गये । इतने समय बाद भी उसके न लौटने पर भीमसेन बड़ा चिंतित हो गया । उसका दुःख और क्षोभ पहले से भी अधिक हो उठा । वह युधिष्ठिर से कहने लगा--

"महाराज ! आप जानते ही हैं कि अर्जुन ही हमारा प्राणाधार है । वह आपकी आज्ञा मानकर गया है । न जाने उस पर क्या कुछ

बीती होगी। यदि, ईश्वर न करे, उसके प्राणों पर बन गई तो फिर हमारा क्या होगा ? अर्जुन के बिना तो हम कहीं के न रहेंगे। उसके बिना श्रीकृष्ण, द्रुपद, सात्यकि आदि सब मिलकर भी हमारा बचाव न कर सकेंगे। यदि अर्जुन को कहीं कुछ हो गया तो फिर मुझसे भी उसका शोक न सहा जायेगा। आप ही ने तो यह चौपड़ खेलकर हमें इस दारुण दुःख में डाल दिया है और अब हमें यह सब झेलना पड़ रहा है। उधर हमारे शत्रुओं की ताकत बढ़ रही है। क्षत्रिय का कर्त्तव्य जंगल में रहना नहीं, बल्कि राज्य करना होता है। अपने कुल के धर्म को छोड़कर आप क्यों यह जिद पकड़े बैठे हैं ? अब अर्जुन को किसी तरह वापस बुलायें और श्रीकृष्ण को साथ लेकर धृतराष्ट्र के बेटों पर हमला कर दें। ऐसा न होगा तो मुझे शांति न मिलेगी। जब तक दुरात्मा दुर्योधन और उसके साथी शकुनि, कर्ण, आदि पापियों का काम तमाम नहीं होता, मुझे चैन नहीं पड़ने की। हां, यह हो जाने के बाद आप फिर शौक से जंगल में जाकर तपस्या करते रह सकते हैं। जो काम तुरन्त करना आवश्यक हो--जो काम हमारे सामने हो--उसे करने में देरी लगाना भारी भूल होगी। जिसने हमें धोखा दिया हो उसे चालाकी से मारना पाप नहीं हो सकता। शास्त्रों में कहा गया है कि एक वर्ष में पूरे होने वाले कुछ व्रतों को एक दिन और रात में भी पूरा किया जा सकता है। इसके आधार पर हम भी तेरह दिन और तेरह रातें व्रत रक्खें तो तेरह बरस के बनवास की प्रतिज्ञा शास्त्रोचित ढंग से पूरी हो जायेगी। मुझ आपकी आज्ञा-भर की देरी है। मैं तो दुर्योधन के प्राण लेनें को वैसे ही उत्कण्ठित हो रहा हूं जैसे सूखे झाड़-झंखाड़ को फूंक डालने के लिए आग।"

भीम की इन जोशीली बातों को सुनकर युधिष्ठिर का कण्ठ भर आया। उन्होंने भीम को गले लगा लिया और बड़े प्रेम से उसे समझाते हुए बोले-- "भैया मेरे ! तेरह बरस पूरे होते ही गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुन और तुम लड़ाई में दुर्योधन का अवश्य वध करोगे,

इसमें जरा भी शक नहीं। अभी विचलित न होओ। उचित समय तक जरा धीरज धरो। पाप के बोझ से दबे हुए दुर्योधन और उसके साथी अवश्यमेव उसका फल भोगेंगे। वे बचेंगे नहीं।"

●

दोनों भाइयों में यह चर्चा हो ही रही थी कि इतने में वृहदश्व नामक महर्षि पांडवों के आश्रम में पधारे। युधिष्ठिर ने उनकी विधिवत् पूजा की और खूब आदर-सत्कार करके उनकी थकावट दूर की। फिर बड़े नम्रभाव से उनके पास बैठकर कहा--

"भगवन्! छली लोगों ने हमें चौपड़ के खेल में बुलाया और धोखे से हमारा राज्य और संपत्ति छीन ली। उसके फलस्वरूप मुझे और मेरे अनुपम वीर भाइयों को द्रौपदी के साथ बनवास का कष्ट सहना पड़ रहा है। अर्जुन, बहुत दिन हुए अस्त्र प्राप्त करने के लिए गया है, पर अभी तक लौटा नहीं। उसकी अनुपस्थिति में हमें ऐसा मालूम हो रहा है मानो हमारे प्राण ही चले गये हैं। आप कृपया बतायें कि अर्जुन अस्त्र प्राप्त करके लौटेगा भी? हम उससे कभी मिलेंगे भी? इस समय तो हम दुःख के सागर में गोते खा रहे हैं। संसार में शायद ही कोई ऐसा हुआ होगा जिसने मेरे जितना दुःख सहा हो। मैं बड़ा ही अभागा हूं।"

महर्षि बोले-- "युधिष्ठिर! मन में शोक को जगह न दो। अर्जुन अनेक दिव्यास्त्रों एवं वरदान प्राप्त करके सकुशल वापस आयेगा। तुम लोग शत्रुओं पर भी विजय पाओगे। यह न समझो कि तुम जैसा अभागा संसार में कोई हुआ न होगा। शायद तुम राजा नल की कहानी नहीं जानते जिसने तुमसे कहीं ज्यादा दुःख झेला था। निषद् देश के प्रतापी राजा नल के बारे में क्या तुमने नहीं सुना? उसने भी चौपड़ खेला था और पुष्कर नाम के उसके एक दुर्बुद्धि भाई ने उसे धोखा देकर उसका सारा राज्य और संपत्ति छीन ली थी और उसे राज्य से निकाल कर बन में भगा दिया था। बनवास के समय बेचारे

नल के साथ न तो भाई थे, न ब्राह्मण लोग। कलि ने नल की बुद्धि भी हर ली थी। इस कारण उसके सारे गुण प्रभाव-शून्य हो गये थे। यहां तक कि उसने अपनी पत्नी को भी धोखा दिया और उसे वन में अकेली छोड़कर भाग गया था। तुम्हारे साथ तो देवताओं के समान चार भाई हैं। कितने ही ज्ञानी ब्राह्मण सदा तुम्हें घेरे रहते हैं। अनुपम सती द्रौपदी साथ में है। तुम्हारी बुद्धि भी स्थिर है। उसमें कोई दोष नहीं है। फिर तुम्हें दुःख काहे का? तुम तो भाग्य के बली हो। शोक करना तुम्हें नहीं शोभा देता।"

इसके बाद ऋषि ने नल-दमयन्ती की कहानी विस्तार से युधिष्ठिर को सुनाई। अन्त में महर्षि वृहदश्व ने कहा:—

"पाण्डुपुत्र! नल ने दारुण दुःख सहने के बाद अन्त में सुख पाया था। वह कलि से पीड़ित था और अकेले जंगल में रहता था। किन्तु तुम्हारे साथ तुम्हारे भाई और द्रौपदी हैं। तुम सदा धार्मिक बातों का चिन्तन करते रहते हो। वेद-वेदांग के पण्डित ब्राह्मण तुम्हें घेरे रहते और पवित्र कथाएं सुनाते रहते हैं। मनुष्य के जीवन में संकट का होना कोई नई बात नहीं है। इसलिए शोक न करो।"

: ३१ :

अगस्त्य मुनि

जब युधिष्ठिर राजा थे तब जिन ब्राह्मणों ने उनके यहां आश्रय लिया था, उन्होंने बनवास के समय भी युधिष्ठिर का साथ नहीं छोड़ा। ऐसे कठिन समय में इतने सारे ब्राह्मणों का पालन करना कठिन काम था। लेकिन युधिष्ठिर उसे बड़ी आस्था के साथ निभा रहे थे। एक बार, अर्जुन के तपस्या करने चले जाने के बाद, लोमश नाम के यशस्वी ऋषि युधिष्ठिर के आश्रम में आये। उन्होंने देखा कि युधिष्ठिर को ऋषि-

मुनियों की एक भारी भीड़ घेरे हुए है। उन्होंने युधिष्ठिर को सलाह दी कि बनवास के दिनों में साथ में इतने लोगों की भीड़ उचित नहीं। यह जितनी कम हो उतना अच्छा। इसलिए अपने साथ के लोगों की संख्या कम कर लीजिए और कुछ समय के लिए तीर्थाटन के लिए चले जाइए।

लोमश ऋषि की सलाह मानकर युधिष्ठिर ने अपने साथ के लोगों को जताया कि हम लोग तीर्थाटन करने वाले हैं। मार्ग में काफी मुसीबतें आ सकती हैं। इस कारण जो लोग तकलीफ नहीं उठा सकते, जो स्वादिष्ट भोजन के चाव से साथ रहना चाहते हैं, जो अपने हाथ से भोजन नहीं पकाते और जो मुझे राजा समझ कर यहां आश्रय लिए हुए हैं, अच्छा हो कि वे सब राजा धृतराष्ट्र के पास चले जायें। अगर वे आश्रय न दें तो पांचाल-नरेश द्रुपद के पास चले जायं।" ब्राह्मणों को इस भांति समझा कर और लोगों को इधर-उधर भेजकर युधिष्ठिर ने अपना परिवार कम कर लिया।

इसके बाद पाण्डव पुण्य-क्षेत्रों की यात्रा के लिए निकल पड़े। वे प्रत्येक तीर्थ की पूर्व-कथा भी, जहां-जैसी प्रचलित होती, उसे सुनते। इसी यात्रा के दौरान में पाण्डवों को महर्षि अगस्त्य की कथा भी सुनने में आई।

●

एक बार यात्रा करते हुए महर्षि अगस्त्य ने देखा कि कुछ तपस्वी उलटे लटके हुए हैं और इस कारण बड़ी तकलीफ पा रहे हैं। उन्होंने पूछा कि आप लोग कौन हैं? यह घोर यातना क्यों सह रहे हैं? तपस्वियों ने उत्तर दिया—"बेटा! हम तुम्हारे पूर्वज-पितृ हैं। तुम अविवाहित ही रह गये, इस कारण तुम्हारे बाद हमें पिंड-तर्पण देने वाला कोई नहीं रह जायगा। इस कारण हमें यह घोर तपस्या करनी पड़ रही है। यदि तुम विवाह करके पुत्रवान हो जाओ तो हम इस यातना से छुटकारा पा जायेंगे।"

यह सुनकर अगस्त्य ने विवाह करने का निश्चय कर लिया।

विदर्भ देश के राजा के कोई सन्तान न थी। उन्हें इसका बड़ा शोक था। एक बार राजा ने अगस्त्य मुनि से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि मुझे संतान होने का वर दीजिये।

अगस्त्य ने वर तो दे दिया, किन्तु एक शर्त के साथ। वे बोले—"राजन्! तुम्हें पुत्री होगी। लेकिन उसका विवाह मेरे साथ करना होगा।"

वरदान देते समय ऋषि ने स्त्रियोचित सौंदर्य के सारे लक्षणों से सुशोभित एक अनुपम सुन्दरी की कल्पना कर ली थी। इस कारण विदर्भ-नरेश की रानी ने एक ऐसी पुत्री को जन्म दिया जिसका लावण्य अलौकिक था। पुत्री का नाम लोपामुद्रा रक्खा गया। दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती हुई लोपामुद्रा विवाह के योग्य वय को प्राप्त हो गई।

विदर्भराज की कन्या की अनूठी सुन्दरता की ख्याति दूरदूर तक फैली हुई थी। परन्तु फिर भी अगस्त्य के डर के मारे कोई राजकुमार उससे ब्याह करने को प्रस्तुत न होता था। इस बीच अगस्त्य ऋषि फिर एक बार विदर्भराज की सभा में आ पहुंचे और राजा से बोले— "पितरों को सन्तुष्ट करने के लिए पुत्र पाने का मैं इच्छुक हूं। अपने दिये वचन के अनुसार अपनी पुत्री का ब्याह मेरे साथ कर दीजिए।"

अनेक सखियों से घिरी हुई और दास-दासियों की सेवा-टहल में पली अपनी लाड़ली बेटी को जंगल में रहने वाले और साग-पात खाने वाले ऋषि के हाथों सौंप देना राजा को नागवार लगा। फिर भी वचन जो दे चुके थे। ऋषि के क्रोध का भी डर था। राजा बड़े असमंजस में पड़ गये।

राजा और रानी को इस प्रकार चिन्तित देख कर लोपामुद्रा ने कहा— "आप उदास क्यों होते हैं? मेरे कारण आपको ऋषि का शाप सहना पड़े, यह कभी नहीं हो सकता। मुनि के साथ मेरा ब्याह कर दीजिए। मुझे भी यही पसन्द है।"

बेटी की बातों से राजा को जरा सान्त्वना मिली और राजा ने

अगस्त्य ऋषि के साथ लोपामुद्रा का विधिवत् विवाह कर दिया।

ऋषि वन में जाने लगे तो लोपामुद्रा भी उनके साथ चलने को तैयार हुई।

"ये कीमती आभूषण और वस्त्र यहीं उतार दो।" ऋषि ने कहा।

लोपामुद्रा ने तुरन्त अपने सुन्दर गहने-कपड़े उतार कर सखियों को दे दिये और खुद वल्कल और मृग-चर्म पहन कर खुशी-खुशी अगस्त्य मुनि के साथ हो ली।

गंगा नदी के उद्‌गम पर अगस्त्य ऋषि का आश्रम था। वहां लोपामुद्रा अगस्त्य के साथ व्रत-पूर्वक रहने लगी। वह बड़ी सावधानी और चिन्ता के साथ ऋषि की सेवा-शुश्रूषा करती और मुनि का मन बहलाती। इस प्रकार ऋषि की सेवा करके उसने उन्हें पूर्ण रूप से लुभा लिया।

लोपामुद्रा की सेवा, सौन्दर्य और हाव-भाव से मुनि के मन में काम जाग्रत हो उठा। उन्होंने लोपामुद्रा को गर्भ-धारण के लिए बुलाया। स्त्रियोचित लज्जा के साथ लोपामुद्रा ने सिर झुका लिया और हाथ जोड़कर कहा—"नाथ! मैं वैसे आपकी आज्ञा-पालन करने के लिए बाध्य हूं। किन्तु मेरी भी इच्छा आप पूरी कर देने की कृपा करें।"

उसके अनुपम रूप और शील-स्वभाव से मुग्ध होकर ऋषि ने कहा—"तथास्तु।"

लोपामुद्रा ने कहा—"मेरी इच्छा है कि पिता के यहां जो कोमल शय्या और सुन्दर वेष-भूषा मुझे प्राप्त थी वही यहां भी मिले। आप भी सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करें और तब हम दोनों संयोग करें।"

"तुम्हारी इच्छा पूरी करने के लिए तो धन चाहिए। हम तो ठहरे जंगल में रहने वाले दरिद्र! धन कहां से लायें?" अगस्त्य ने कहा।

"स्वामिन्! आपके पास जो तपोबल है यही सब कुछ है। आप चाहें तो संसार का सारा ऐश्वर्य पल-भर में खड़ा कर सकते हैं।" लोपामुद्रा ने कहा।

"तुम्हारा कहना तो ठीक है। किन्तु यदि मैं तपोबल से धनार्जन करने लग जाऊं तो फिर मेरा तपोबल सांसारिक वस्तु के लिए खर्च हो जायगा। क्या तुम्हें यह पसन्द है कि मैं इस प्रकार तपोबल गंवाऊं?" अगस्त्य ने पूछा।

"नहीं, मैं यह नहीं चाहती कि आपकी तपस्या इन बातों के लिए नष्ट हो। मेरी मंशा तो यही थी कि आप तपोबल का सहारा लिये बगैर ही कहीं से काफी धन ले आते।" लोपामुद्रा ने उत्तर दिया।

"अच्छा, भाग्यवती! मैं वही करूंगा जिससे तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।" कहकर अगस्त्य मुनि एक मामूली ब्राह्मण की भांति राजाओं से धन की याचना करने चल पड़े।

●

अगस्त्य ऋषि एक ऐसे राजा के यहां गये, जो अपने अटूट खजाने के लिए प्रसिद्ध था। जाकर बोले—

"राजन्, कुछ धन की याचना करने आया हूं। किन्तु मुझे दान देने से ऐसा न हो कि किसी और जरूरतमंद को तकलीफ पहुंचे या और आवश्यक खर्च में कमी पड़ जाय।"

राजा ने अपने राज्य के आय और व्यय का सारा हिसाब उठाकर अगस्त्य ऋषि के सामने रख दिया और कहा—"आप ही स्वयं देख लें। व्यय से अधिक जितनी आय हो वह आप ले लें।" अगस्त्य ने सारा हिसाब उलट-पुलट कर देखा तो मालूम हुआ कि जितनी आमदनी है उतना ही खर्च भी है। बचत कुछ नहीं है। किसी भी सरकार का आय और व्यय बराबर ही होता है। उन दिनों भी यही बात थी।

अगस्त्य ने सोचा कि यदि मैं यहां से कुछ लूंगा तो प्रजा को कष्ट पहुंचेगा, इसलिए राजा को आशीष देकर वे दूसरे राजा के यहां जाने लगे। यह देखकर राजा ने कहा—"मैं भी आपके साथ चलूंगा।" अगस्त्य ने उसे भी अपने साथ ले लिया और एक दूसरे राजा के यहां गये। वहां भी यही हाल था।

इस प्रकार अगस्त्य ऋषि ने अपने अनुभव से जान लिया कि न्यायोचित ढंग से कर लेकर अपने राजोचित कर्त्तव्य का शास्त्रानुसार पालन करने वाले किसी राजा से कितना-सा भी दान लिया जायगा उतना ही कष्ट उसकी प्रजा को पहुंचेगा, यह सोच अगस्त्य तथा सब राजाओं ने तय किया कि इलवल नामके एक अत्याचारी असुर राजा के पास जाकर दान लिया जाय।

●

इलवल और वातापी दोनों असुर भाई-भाई थे। ब्राह्मणों से उनको बड़ी नफरत थी। उन दिनों ब्राह्मण लोग मांस खा लेते थे। इससे फायदा उठाकर इलवल ब्राह्मणों को न्योता देता और अपने भाई वातापी को असुर-माया से बकरा बनाकर उसीका मांस ब्राह्मण मेहमानों को खिलाता। ब्राह्मणों के खा चुकने पर इलवल पुकारता—"वातापी! आ जाओ!" मरे को जिलाने की शक्ति इलवल को प्राप्त थी। इससे वातापी ब्राह्मणों का पेट चीरकर हंसता हुआ सजीव निकल आता। इस प्रकार कितने ही ब्राह्मणों को असुरों ने मार डाला था। असुर सोचते थे कि इस प्रकार वे धर्म को धोखा देकर पुण्य-सुख भी लूट रहे हैं और ब्राह्मणों का काम तमाम करके अपना उद्देश्य पूरा कर रहे हैं। लेकिन यह उनकी भूल थी।

अगस्त्य के आने की खबर पाकर दोनों भाई बड़े खुश हुए कि अच्छा मोटा-ताजा शिकार फंसा है। उन्होंने ऋषि का आदरपूर्वक स्वागत किया और भोजन के लिए न्योता दिया। हमेशा की तरह वातापी को बकरा बनाकर उसका मांस अगस्त्य को खिलाया गया। वे यह सोचकर बड़े खुश हो रहे थे कि बस, ये घड़ी-भर के ही मेहमान हैं।

और मुनि जब भोजन कर चुके तो इलवल ने पुकारा—"वातापी! आओ, भाई, जल्दी आओ। देर मत करना, नहीं तो कहीं ऋषि तुझे हजम न कर जायं।"

यह सुन अगस्त्य बोल उठे—"वातापी! अब आने की जल्दी न

कर। संसार की भलाई के लिए तू हजम कर लिया गया है।" कहते-कहते मुनि ने जोर की डकार ली और अपने पेट पर हाथ फेरा।

इलवल घबरा गया। चिल्ला-चिल्ला कर भाई का नाम लेकर पुकारने लगा, लेकिन वातापी हो तो आवे।

अगस्त्य मुनि मुस्करा कर बोले—"क्यों व्यर्थ को अपना गला बैठा रहा है। वातापी तो हजम हो चुका है।"

असुर अगस्त्य ऋषि के पैरों पर गिर पड़ा और क्षमा मांगी तथा जितने धन की उन्हें इच्छा थी उनके चरणों में लाकर रख दिया। ऋषि ने उसे क्षमा कर दिया, धन लेकर आश्रम लौटे और लोपामुद्रा की इच्छा पूरी की।

●

अगस्त्य ने लोपामुद्रा से पूछा—"तुम्हें अच्छे-अच्छे दस पुत्र चाहिएं या दस को हराने योग्य एक?"

लोपामुद्रा ने कहा—"नाथ! मुझे एक ही ऐसा बेटा चाहिए जो यशस्वी हो, विद्वान् हो और धर्म पर अटल रहे।"

कथा है कि लोपामुद्रा के ऐसा ही एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

अगस्त्य ऋषि के बारे में एक कथा और है:—

एक बार विन्ध्याचल को मेरु पर्वत की ऊंचाई देखकर ईर्ष्या हो गई और वह स्वयं भी मेरु जितना ऊंचा होने की इच्छा से बढ़ने लगा। बढ़ते-बढ़ते विन्ध्याचल इतना ऊंचा हो गया कि सूर्य और चन्द्रमा की चाल तक के रुक जाने का डर हो गया। देवताओं ने अगस्त्य ऋषि से इस संकट से छुटकारा दिलाने की प्रार्थना की। अगस्त्य ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। वे विन्ध्याचल के पास गये और बोले—"पर्वत-श्रेष्ठ! जरा मुझे रास्ता दीजिए। एक आवश्यक कार्य से मुझे दक्षिण-देश जाना है। सो आप मुझे रास्ता दे दीजिए और मेरे लौट आने तक रुके रहिए। उसके बाद आप बढ़ सकते हैं।"

विन्ध्याचल की अगस्त्य पर बड़ी श्रद्धा थी। इस कारण

अगस्त्य का अनुरोध पाकर अपनी बढ़ती रोकली। अगस्त्य दक्षिण-देश चले तो गये, किन्तु वापस न लौटे। और विन्ध्याचल उनकी बाट जोहता हुआ आज तक रुका पड़ा है और बढ़ने नहीं पाता! इस प्रकार अगस्त्य ऋषि दक्षिण देश में ही बस गये।

: ३२ :

ऋष्यश्रृंग

कुछ लोगों का खयाल है कि बच्चों को विषय-सुख का जरा भी ज्ञान न होने दिया जाय तो वे पक्के ब्रह्मचारी बन सकते हैं। यह सरासर गलत खयाल है। इस ढंग से तो जिस किले का बचाव किया जाता है, वह सहज ही में दुश्मन के हाथ आ जाता है। इस पर प्रकाश डालने वाली बड़ी रोचक कथा महाभारत और रामायण' में कही गई है। महाभारत के अनुसार लोमश ऋषि ने यह कथा पाण्डवों को विस्तारपूर्वक सुनाई—

महर्षि विभाण्डक ब्रह्मा के समान तेजस्वी थे। उनके ऋष्यश्रृंग नाम के पुत्र थे। उनके साथ वह वन में रहा करते थे। ऋष्यश्रृंग ने अपने पिता के सिवा और किसी मनुष्य को नहीं देखा था। स्त्रियों के तो अस्तित्व का भी उन्हें पता न था। इस भांति ऋश्यश्रृंग बचपन से ही विशुद्ध ब्रह्मचारी रहे।

●

एक बार अंग-देश में भी भारी अकाल पड़ा। बारिश न होने के कारण सब फ़सलें सूख गईं। लोग भूख और प्यास के मारे तड़प-तड़प कर मरने लगे। चौपायों के भी कष्ट की सीमा न रही। अकाल को यों देश पर हावी होते देखकर अंग-नरेश रोमपाद बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने ब्राह्मणों से सलाह ली कि प्रजा का यह दुःख कैसे दूर किया जाय। ब्राह्मणों

ने कहा--"राजन् ! ऋष्यश्रृंग नाम के एक ऋषिकुमार हैं । वे ब्रह्मचर्य-व्रत पर अटल हैं, यहां तक कि उन्हें स्त्रियों के अस्तित्व तक का भी पता नहीं । उन्हें अगर आप राजधानी में बुला सकें तो उन महातपस्वी के राजधानी में पदार्पण करते ही वर्षा होने लग जायगी।"

यह सुनकर राजा रोमपाद अपने मन्त्रियों से सलाह करने लगे कि ऋषि-कुमार ऋष्यश्रृंग को ऋषि विभांडक के आश्रम से राजधानी में कैसे बुलाया जाये । उनकी सलाह से राजा ने शहर की कुछ सुन्दरी वारांगनाओं को बुलाकर आज्ञा दी कि वे वन में जाकर किसी-न-किसी उपाय से ऋषि-कुमार को हर लायें ।

गणिकाएं बड़े असमंजस में पड़ गईं । राजाज्ञा को न मानना दण्ड को न्योता देना था और अगर मानतीं तो उधर ऋषि विभाण्डक के शाप का डर था । करें तो क्या करें ? आखिर विवश होकर उन्हें राजा की आज्ञा माननी ही पड़ी। राजा ने उन्हें काफी धन और साज-समान देकर विदा किया ।

वारांगनाओं की इस टोली की नायिका बड़ी चतुर थी । उसने एक सुन्दर बजरा बनवाया । उसमें उसने एक छोटा-मोटा बगीचा भी लगा दिया । पेड़-पौधे, झाड़-झंखाड़ सब नकली थे, फिर भी देखने से जरा भी पता नहीं चलता था कि यह बगीचा नहीं, बजरा है । इस बगीचे के बीच में एक आश्रम बना दिया गया । जब सब तैयारियां हो चुकीं तो बजरा चलाती हुई सब गणिकाएं विभांडक के आश्रम के नजदीक जा पहुंचीं । बजरा वहीं किनारे के पेड़ से खूब सटाकर बांध दिया । इसके बाद डरी और सहमी हुई वे ऋषि के आश्रम के पास जा पहुंचीं।

ऋषि विभाण्डक उस समय आश्रम के अन्दर नहीं थे। कहीं बाहर गय हुए थे । यह मौका देखकर उन गणिकाओं में से जो सबसे सुन्दर थी वह आश्रम के अन्दर चली गई । ऋषि-कुमार ऋष्यश्रृंग आश्रम में अकेले थे ।

"ऋषि-कुमार आप सकुशल तो हैं ? फल-फूल तो आपको काफी मिल

रहे हैं न? वन में ऋषियों की तपस्या कुशल-पूर्वक हो रही है न? आपके पूज्य पिता का तपः-तेज बढ़ ही तो रहा है? वेदाध्ययन ठीक से चल रहा है न?" गणिका तरुणी ने ऋषियों की-सी परिभाषा में कुशल-प्रश्न किये।

अतिथि का सौन्दर्य, सुकुमार शरीर और सुमधुर कण्ठध्वनि भोले मुनिकुमार के लिए बिलकुल नई थी। यह सब सुन-देख उनके मन में एक नई उमंग उठने लगी। स्वाभाविक वासना सजग हो उठी। वे अपने उद्वेग को रोक न सके। उन्होंने समझा तो यही था कि यह भी कोई ऋषि-कुमार ही होगा; पर उनके मन में न जाने क्यों कुछ गुदगुदी-सी पैदा हो गई।

"आपके शरीर से आभा-सी फूट रही है। आप कौन हैं? मैं आपको प्रणाम करता हूं। आपका आश्रम कहां है? आप कौन-सा व्रत धारण किये हुए हैं?" स्त्री और पुरुष का भेद न जानने वाले भोले ऋष्यश्रृंग ने उस गणिका तरुणी से पूछा और उठकर आगन्तुक अतिथि के पांव धोये, अर्घ दिया और उसका हर तरह से आदर-सत्कार किया।

तरुणी ने मीठे स्वर में कहा—"यहां से तीन योजन की दूरी पर हमारा आश्रम है। मैं वहां से ये फल लाया हूं। आप मुझे प्रणाम न करें। मैं इस योग्य नहीं हूं। हमारा नमस्कार करने का ढंग निराला है। चाहता हूं कि उसी ढंग पर आपको नमस्कार करूं।"

ऋषि-कुमार उसके हाव-भाव और मधुर स्वर से मुग्ध होकर देखते रहे कि इतने में उस गणिका-सुन्दरी ने नगर से लाये हुए विविध पकवान, मोदक आदि उन्हें खिलाये। उसके बाद सुगंधित तथा रंगबिरंगी फूलकी मालाएं पहना दीं और तरह-तरह के पेय पदार्थ भी पीने को दिये। उसके बाद उसने ऋषि-कुमार का आलिंगन करके चुंबन लिया और हंसकर बोली, "यही हमारा नमस्कार करने का ढंग है।"

इस प्रकार ऋषि-कुमार और वह गणिका-सुन्दरी हास-विलास कर रहे थे कि उस तरुणी को ख़याल आया कि अब ऋषि विभाण्डक के

लौटने का वक्त हो गया है। वह कुछ चंचल हो उठी और ऋषि-कुमार से बोली--"अब बहुत देर हो गई। अग्निहोत्र का समय हो आया। अब मुझे चलना चाहिए। कभी आप भी हमें अनुगृहीत करें।"

इस प्रकार कहकर वह गणिका जल्दी से आश्रम से खिसक गई।

उधर विभाण्डक ऋषि आश्रम लौटे तो वहां का हाल देखकर चौंक पड़े। हवन-सामग्रियां इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं। आश्रम साफ नहीं किया गया था। लताएं और पौधे टूटे पड़े थे और उनके पत्ते इधर-उधर बिखरे पड़े थे। ऋषिकुमार का मुख मलिन था। हमेशा की भांति उसमें ब्रह्मचर्य का तेज नहीं था। कामवासना के कारण वे उद्भ्रांत-से मालूम होते थे।

"बेटा, होम के लिए लकड़ियां (समिधा) क्यों नहीं लाये? इन कोमल पौधों को किसने तोड़ डाला? आहुति के लिए दूध-दही लिया या नहीं? यहां तुम्हारी सेवा-टहल के लिए कोई आया था क्या? तुम्हें यह अद्भुत फूलों का हार किसने पहनाया? बेटा, तुम्हारे मुख पर मलिनता क्यों छाई हुई है?" विभाण्डक ने आतुर होकर पूछा।

भोले ऋषि-कुमार ने उत्तर दिया—"पिताजी, अलौकिक रूप वाले कोई एक ब्रह्मचारी कहीं से आये हुए थे। उनका तेज, उनकी मधुर बोली और उनके अद्भुत रूप का वर्णन मैं कैसे करूं? उनकी बातों और उनके नैनों ने मेरी अन्तरात्मा में न जाने कैसा अवर्णनीय आनन्द और स्नेह भर दिया है। जब उन्होंने मुझे अपनी कोमल बांहों से आलिंगन में ले लिया तब मुझे ऐसे अलौकिक सुख का अनुभव हुआ जो कि इन फलों को खाने में भी नहीं हुआ था।" भोले-भाले ऋष्यश्रृंग इसी भांति उस गणिका की वेष-भूषा और व्यवहार का वर्णन करने लगे जिसे वे भ्रमवश ब्रह्मचारी समझे हुए थे। फिर बोले—

"मेरा सारा शरीर मानों जल रहा है। मेरे मन में उस ब्रह्मचारी के पीछे-पीछे जाने की प्रबल इच्छा उठती है। आप भी उन्हें यहां बुलाइयेगा पिताजी? उनका तेज और उनके व्रत की महिमा में आपको

कैसे बताऊं? उनको फिर देखने को मेरा जी ललचा रहा है।" इस प्रकार ऋष्यशृंग की बातें धीरे-धीरे इस हद तक पहुंच गईं कि वे रोने-कलपने लगे।

विभाण्डक को सब बातें धीरे-धीरे समझ में आ गईं। उन्होंने पुत्र को समझाकर कहा—"बेटा! यह किसी राक्षस की माया है। राक्षस लोग हमेशा तपस्या में विघ्न डालने की ताक में रहते हैं। तपस्या भंग करने का कोई प्रयत्न उठा नहीं रखते। तरह-तरह की चालें चलते हैं। उनसे सावधान रहना। उन्हें पास न फटकने देना।"

इसके बाद विभाण्डक कुचक्र रचने वालों की तलाश में तीन दिन तक फिरते रहे और जंगल की चप्पा-चप्पा भूमि छान डाली। फिर भी कोई न मिला। हताश होकर वे आश्रम लौट आये।

कुछ दिन बाद ऋषि विभाण्डक फिर एक बार फल-मूल लाने जंगल में दूर निकल गये। इतने में वही गणिका ऋष्यशृंग के आश्रम की ओर धीरे से आई। उसे दूरी से देखते ही ऋष्यशृंग उसकी ओर ऐसे झपटे जैसे बांध के अचानक टूट जाने पर पानी प्रबल वेग से प्रवाहित होता है।

"तेजोमय ब्रह्मचारी! चलो, चलो। पिताजी के आने से पहले तुम्हारे आश्रम में चले चलें।" ऋष्यशृंग ने कहा और बिना बुलाये ही वे उस गणिका के साथ हो लिये।

नकली आश्रम वाला बजरा नदी के किनारे बंधा था। दोनों जने उस पर चढ़ गये। ऋष्यशृंग के बजरे पर चढ़ते ही गणिकाओं ने उसे खोल दिया और वेग से उसे अंगनरेश की राजधानी की ओर चलाने लगीं। रास्ते में कितने ही मनोरंजक दृश्यों से ऋषिकुमार का मन बहलाती हुईं गणिका सुन्दरियां उन्हें अंगनरेश की सभा में ले आईं।

●

अंगनरेश रोमपाद के आनन्द की सीमा न रही। ऋष्यशृंग के

पदार्पण करते ही सारे देश में खूब वर्षा होने लगी। सूखी झील और ताल-तलैये लबालब भर गये। खेत लहलहा उठे। नदियां उमड़ पड़ीं। प्रजा आनन्द मनाने लगी।

रोमपाद ने ऋषि-कुमार को रनिवास में ठहराया और उनकी सेवा-टहल के लिए दास-दासियां नियुक्त कर दीं। राजकुमारी शान्ता का ब्याह भी ऋष्यश्रृंग के साथ कर दिया।

●

राजा की सभी कामनाएं तो पूरी हो गईं; किन्तु उन्हें इस बात का भय बना रहा कि ऋषि विभाण्डक अपने पुत्र की खोज में आकर कहीं मुझे शाप न दे दें। मंत्रियों से सलाह करके राजा ने यह प्रबंध किया कि विभाण्डक के क्रोध को शांत करने का हर तरह का उपाय किया जाये। इसके लिए राजा ने जंगल से लेकर राजधानी तक के तमाम रास्ते पर जहां-तहां सैकड़ों की संख्या में ग्वालों को गाय-बैलों के साथ ठहरा दिया। ग्वालों को कहा गया कि महर्षि विभाण्डक इस रास्ते से आने वाले हैं। उनका खूब आदर-सत्कार करना और कहना—"ये खेत, गाय-बैल आदि सब आप ही के पुत्र की सम्पत्ति हैं। हम सब आप ही के अनुचर हैं। हमें आज्ञा कीजिये! आपके लिए हम क्या करें?" ऐसा कह-सुनकर हर तरह से मुनि के क्रोध को शांत करने की सब लोग कोशिश करना।

उधर विभाण्डक ऋषि जब आश्रम लौटे तो वहां पुत्र को न पाकर बड़े घबराये। उन्होंने सारा बन छान डाला; पर कुमार का पता न चला। इससे वे बड़े क्रोध से भर उठे। उन्हें विचार आया कि हो न हो यह अंग-देश के राजा की करतूत होगी। यह विचार आया कि ऋषि तुरंत ही रोमपाद राजा की राजधानी की ओर रवाना हो गये। वे नदियों और गांवों को पार करते हुए आगे बढ़ने लगे। क्रोध के कारण ऋषि की आंखें लाल हो रही थीं, मानों अंग-नरेश को जलाकर भस्म ही कर देंगे।

किन्तु रोमपाद की आज्ञानुसार रास्ते में ग्वालों ने खूब दूध पिलाकर और मीठे वचनों से ऐसा स्वागत किया कि राजधानी में पहुंचते-पहुंचते ऋषि का क्रोध नहीं के बराबर रह गया।

●

रोमपाद के राजभवन में पहुंचकर विभाण्डक ने देखा, ऋष्यश्रृंग भवन में उस प्रकार विराजमान हैं जैसे स्वर्ग में इन्द्र। उनके बगल में रोमपाद की राजकुमारी, ऋष्यश्रृंग की पत्नी, विराजमान थी। उसकी शोभा अनोखी ही थी।

यह सब देखकर विभाण्डक बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने राजा को आशीर्वाद दिया और बेटे से बोले—"इस राजा की जो भी इच्छा हो पूरी करना! एक पुत्र होने के बाद जंगल में लौट आना।" ऋष्यश्रृंग ने ऐसा ही किया।

●

लोमश मुनि युधिष्ठिर से कहते हैं— "नल के साथ दमयन्ती, वसिष्ठ के साथ अरुन्धती, राम के साथ सीता, अगस्त्य के साथ लोपामुद्रा और युधिष्ठिर, तुम्हारे साथ द्रौपदी की भांति ऋष्यश्रृंग के साथ राजकुमारी शान्ता भी बन में चली गई। बन में उसने ऋष्यश्रृंग की बड़े प्रेम के साथ सेवा-टहल की और उनकी तपस्या में भी भाग लिया। यह वही स्थान है जहां किसी समय ऋष्यश्रृंग का आश्रम था। इस नदी में स्नान करो और पवित्र होओ।"

पांडवों ने बड़ी श्रद्धा के साथ उस तीर्थ में स्नान-पूजा की।

: ३३ :

यवक्रीत की तपस्या

महर्षि लोमश के साथ तीर्थाटन करते हुए पांडव एक बार रैभ्याश्रम नाम के किसी बन में जा पहुंचे।

"वह देखो, गंगा का किनारा !" लोमश ने कहा। सबकी आंखें उसी ओर मुड़ गईं। लोमश ने उस स्थान की सारी महिमा पांडवों को बताई और बोले–– "युधिष्ठिर ! यही वह जगह है जहां दशरथ के पुत्र भरत ने स्नान किया था। वृत्रासुर को कुचाल से मारने के कारण इन्द्र को ब्रह्महत्या का जो पाप लगा था, उसका यहीं प्रक्षालन हुआ था। महर्षि सनत्कुमार को यहीं सिद्धि प्राप्त हुई थी। सामने जो पहाड़ दिखाई दे रहा है उसी पर अदिति ने सन्तान की कामना से तपस्या की थी और भोजन बनाया था। युधिष्ठिर ! इस पवित्र पर्वत पर चढ़कर अपने यशो-पथ के विघ्नों को दूर करलो ! इस गंगा में स्नान करने से अंदर का अहंकार और क्रोध आप ही आप दूर हो जाता है।"

लोमश ऋषि बोले––"और सुनो। ऋषि-कुमार यवक्रीत का यहीं पर नाश हुआ था।" इस भूमिका के साथ यवक्रीत की कथा उत्सुक पांडवों को सुनाने लगे––

"भरद्वाज और रैभ्य दो तपस्वी ब्राह्मण जंगल में पास-पास आश्रम बनाकर रहते थे। दोनों में गहरी मित्रता थी। रैभ्य के दो लड़के थे–– परावसु और अर्वावसु। पिता और पुत्र सब वेद-वेदांगों के पहुंचे हुए विद्वान् माने जाते थे। उनकी विद्वत्ता का यश खूब फैला हुआ था।

भरद्वाज तपस्या में ही समय बिताते थे। उनके एक पुत्र था जिसका नाम था यवक्रीत। यवक्रीत ने देखा कि ब्राह्मण लोग रैभ्य का जितना आदर करते हैं उतना मेरे पिता का नहीं करते। रैभ्य और उनके लड़कों की विद्वत्ता के कारण लोगों में उनकी बड़ी इज्जत होती देखकर यवक्रीत के मनमें जलन पैदा हो गई। ईर्ष्या में उसका शरीर जलने लगा।

●

अपनी अविद्या को दूर करने की इच्छा से यवक्रीत ने देवराज इंद्र की तपस्या शुरू की। आग में अपने शरीर को तपाते हुए यवक्रीत ने अपनेआपको और देवराज को बड़ी यातना पहुंचाई। आखिर यव-

क्रीत की कठोर तपस्या देखकर देवराज को दया आई। उन्होंने प्रकट होकर यवक्रीत से पूछा--- "किस कारण यह कठोर तप कर रहे हो ?"

यवक्रीत ने कहा--- "देवराज, मुझे संपूर्ण वेदों का ज्ञान अनायास ही हो जाय और वह भी ऐसे कि जिनका अब तक किसी ने अध्ययन न किया हो। गुरु के यहां सीख तो सकता हूं; पर कठिनाई इस बात की है कि एक-एक छन्द को रटना पड़ता है और कई दिन तक कष्ट उठाना पड़ता है। चाहता हूं कि बिना आचार्य के मुख से सीखे ही मैं भारी विद्वान् बन जाऊं। मुझे अनुगृहीत कीजिए।"

यह सुनकर इन्द्र हंस पड़े। बोले--- "ब्राह्मण ! तुम उलटे रास्ते चल पड़े हो। अच्छा यही है कि किसी योग्य आचार्य के यहां जाकर शिष्य बनकर रहो और अपने परिश्रम से वेदों का अध्ययन करके विद्वान् बनो।" कहकर इन्द्र अन्तर्द्धान हो गये।

किन्तु भरद्वाज-पुत्र ने इस पर भी अपना हठ न छोड़ा। उसने और भी घोर तप करना शुरू कर दिया। उसकी कठोर तपस्या के कारण देवताओं को बड़ी तकलीफ पहुंची। देवराज फिर प्रकट हुए और यवक्रीत से बोले--- "मुनि-कुमार ! तुमने बगैर सोचे-समझे यह हठ पकड़ा है। तुम्हारे पिता वेदों के ज्ञाता हैं। तुम स्वयं वेद सीख सकते हो। जाओ और आचार्य से वेद सीखकर पण्डित बनो। शरीर को व्यर्थ कष्ट न पहुंचाओ।"

इन्द्र के दुबारा आग्रह करने पर भी यवक्रीत ने अपना हठ न छोड़ा। उसने कहा--- "यदि मेरी कामना को आप पूरी न करेंगे तो मैं अपने शरीर का एक-एक अंग काटकर जलती आग में आहुति देने वाला हूं। मैं अपनी तपस्या तब तक नहीं छोड़ूंगा जब तक कि आप मेरी इच्छा पूरी न कर दें।"

यवक्रीत की विलक्षण तपस्या जारी रही। इस बीच में एक दिन जब वह गंगा-स्नान करने जा रहा था कि रास्ते में एक बूढ़े को गंगा के किनारे पर बैठे-बैठे किनारे पर से बालू की मुट्ठी भर के गंगा की

बहती धारा में फेंकते देखा।

उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। बोला—"यह क्या कर रहे हो, बूढ़े बाबा।"

बूढ़े ने कहा— "गंगा पार करने में लोगों को बड़ा कष्ट होता है। सोचता हूं कि रेत डाल कर गंगा पार एक बांध बना दिया जाय जिससे लोगों के आने-जाने में सहूलियत हो जाय।"

यह सुनकर यवक्रीत हंस पड़ा। बोला— "बूढ़े बाबा ! यह भी कभी हो सकता है कि बहती धारा में रेत डालकर बांध लगाया जाये ? बेकार का परिश्रम है यह तुम्हारा ! कुछ और काम करो तो ठीक।"

बूढ़े ने कहा—"क्यों, मेरा यह परिश्रम बेकार का क्यों है ? आप भी तो बग़ैर सीखे ही वेदों का पार पाने के लिए तप कर रहे हैं ! उसी भांति मैं भी गंगा पर बांध बांधने की कोशिश कर रहा हूं।"

●

यवक्रीत समझ गया कि यह बूढ़ा और कोई नहीं, स्वयं इन्द्र हैं और उसे सीख देने के निमित्त यह परिश्रम कर रहे हैं। उसे ज्ञान हो गया। नम्रता से वह बोला—"देवराज ! अगर आपके निकट मेरा यह प्रयत्न व्यर्थ है तो फिर मुझे ऐसा वर दीजिये कि जिससे मैं भारी विद्वान् बन जाऊं।"

इन्द्र बोले—"तथास्तु ! अभी से जाकर वेदों का अध्ययन शुरू करदो। समय पाकर तुम बड़े विद्वान् बन जाओगे।"

यवक्रीत वर पाकर आश्रम लौट आया।

: ३४ :

यवक्रीत की मृत्यु

इन्द्र से वरदान पाकर यवक्रीत ने वेदों का अध्ययन करके भारी विद्वत्ता प्राप्त करली। उसे इस बात का बड़ा गर्व था कि इन्द्र के वरदान

से मुझे वेदों का ज्ञान हुआ है। उसका इस प्रकार डींग मारना उसके पिता भरद्वाज को अच्छा न लगा। उन्हें डर हुआ कि कहीं मित्र रैभ्य का अनादर करके यह नाश को न पहुंच जाये।

भरद्वाज ने बेटे को बहुत समझाया कि इस प्रकार गर्व करना ठीक नहीं। वह बोले—"बेटा! देवताओं से वरदान पाना कोई बड़ी बात नहीं। नीच लोग भी हठ पकड़कर तपस्या करने लग जाते हैं तो विवश होकर देवताओं को वरदान देना ही पड़ता है। पर इससे वर पाने वालों की बुद्धि फिर जाती है। वे गर्वीले हो जाते हैं और फिर उस घमंड के कारण शीघ्र ही उनका विनाश हो जाता है।" और अपनी बात की पुष्टि में पुराणों में से एक दृष्टांत देते हुए भरद्वाज ने नीचे लिखी कथा सुनाई:—

●

पुराने समय में बालतिहि नाम के एक यशस्वी ऋषि थे। उनके एक पुत्र था जिसकी छोटी उम्र में ही मृत्यु हो गई थी। पुत्र के विछोह से व्यथित होकर ऋषि ने एक अमर पुत्र की कामना करते हुए घोर तपस्या की।

देवता प्रकट होकर ऋषि से बोले—"मनुष्य जाति अमरत्व को प्राप्त नहीं कर सकती। मनुष्य की आयु की सीमा निर्दिष्ट होती है। सो आप अपनी सन्तान की आयु की कोई हद निश्चित कर दें।"

ऋषि ने सोचकर कहा—"तो फिर ऐसा वर दीजिये कि जब तक वह सामने का पहाड़ अचल रहेगा तब तक मेरा पुत्र भी जीवित रहेगा।" देवताओं ने "तथास्तु" कहकर वर दे दिया।

उचित समय पर ऋषि के एक पुत्र हुआ जिसका नाम मेधावी रक्खा गया।

मेधावी को इस बात का बड़ा गर्व था कि मेरे प्राणों को कोई कुछ क्षति नहीं पहुंचा सकता। मैं पहाड़ के समान अचल रहूंगा। इस घमण्ड के कारण वह सबके साथ बड़ी ढिठाई से पेश आता। किसी को कुछ समझता ही नहीं था।

एक दिन धनुषाक्ष नाम के किन्हीं महात्मा की मेधावी ने अवहेलना की। धनुषाक्ष ने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया—"तू भस्म हो जा !"

किन्तु आश्चर्य ! ऋषि-कुमार मेधावी पर शाप का जरा भी प्रभाव न हुआ। वह अचल, नीगोग खड़ा रहा। देखकर ऋषि विस्मित रह गये। अचानक धनुषाक्ष को मेधावी को मिले वरदान की याद आई और तुरन्त अपने तपोबल से जंगली भैंसे का रूप धारण करके पहाड़ पर झपट कर सींग से ऐसी टक्कर मारी कि पहाड़ देखते-देखते उखड़ गया और उसी क्षण मेधावी के भी प्राण-पखेरू उड़ गये। उसका मृत शरीर धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा।

●

"इस पौराणिक आख्यायिका से सबक लो और वरदान पाने का गर्व मत करो। अपनी तबाही का स्वयं ही कारण न बनो। शिष्टता और नम्रता का व्यवहार करो और महात्मा रैभ्य से छेड़-छाड़ न करो।" भरद्वाज ने यवक्रीत को सावधान करते हुए कहा।

●

वसन्त की सुहावनी ऋतु थी। पेड़-पौधे और लताएं रंग-बिरंगे फूलों से लदी थीं। सारा बन-प्रदेश सौन्दर्य से सुभोभित था। संसार भर में कामदेव का राज हो रहा था।

रैभ्याश्रम की फुलवारी में परावसु की पत्नी घूम रही थी। पवित्रता, सौंदर्य एवं धैर्य की पुतली-सी वह तरुणी, किन्नर-कन्या-सी प्रतीत हो रही थी। इतने में दैवयोग से यवक्रीत उधर से आ निकला। परावसु की पत्नी पर उसकी नजर पड़ी। देखकर वह मुग्ध हो गया। उसके मन में कुवासना जाग उठी।

वासना से यवक्रीत का मस्तिष्क फिर गया। उसने परावसु की पत्नी को पुकारा—"सुन्दरी ! इधर तो आओ।" ऋषि-पत्नी उसकी भाव-भंगी और बातों से लज्जित और आश्चर्य-चकित रह गई। परन्तु फिर भी यवक्रीत शाप न दे बैठे, इस भय से उसके पास चली गई। यवक्रीत की

बुद्धि तो ठिकाने न थी। उसने ऋषि-पत्नी को अकेले में ले जाकर ऐसा व्यवहार किया जिससे वह विक्षुब्ध हो गई।

●

रैभ्यमुनि जब आश्रम लौटे तो अपनी बहू को रोते हुए देखा। पूछने पर उन्हें यवक्रीत के कुत्सित व्यवहार का पता लगा। यह जानकर उनके क्रोध की सीमा न रही। वे आपे से बाहर हो गये। गुस्से में अपने सिर का एक बाल तोड़ कर अभिमन्त्रित करके होमाग्नि में डाला। वेदी से एक ऐसी कन्या निकली जो ऋषि की बहू के समान सुन्दरी थी।

मुनि ने एक और बाल चुन कर अग्नि में डाला तो एक भीषण रूप वाला दैत्य निकल आया। दोनों को रैभ्य ने आज्ञा दी कि जाकर यवक्रीत का वध करें। दोनों पिशाच 'जो आज्ञा' कहकर वहां से रवाना हो गए।

●

यवक्रीत शौच गया हुआ था। इतने में रूपवती डाइन ने उसके साथ खिलवाड़ करके उसका मन मोह लिया और चोरी से उसका कमण्डल लेकर खिसक गई। इसी समय पिशाच भाला तानकर ऋषि-कुमार पर झपटा।

यवक्रीत हड़बड़ा कर उठा। उस अवस्था में वह शाप भी नहीं दे सकता था। सो उसने पानी के लिए कमण्डल की तरफ देखा तो वह नदारद। बड़ा घबराया और पानी की तलाश में तालाब की ओर भागा। तालाब भी सूखा पड़ा था। वह पास वाले झरने की ओर भागा तो उसमें भी पानी नहीं था। जिस किसी भी जलाशय के पास गया उसे सूखा पाया। पिशाच भीषण रूप से उसका पीछा कर रहा था। डर के मारे यवक्रीत भागा-भागा फिर रहा था। उसका तपोबल तो नष्ट हो ही चुका था। कोई चारा न पाकर आखिर उसने अपने पिता की यज्ञशाला के अन्दर घुसने की कोशिश की। यज्ञशाला के द्वार पर जो द्वारपाल खड़ा था वह काना था। यवक्रीत भय के मारे चिल्लाता हुआ भागा आया तो वह उसे पहचान न सका और उसे रोक दिया। इतने में पिशाच ने

उस पर तानकर भाला मारा। यवक्रीत वहीं ढेर होकर गिर पड़ा।

●

भरद्वाज आश्रम में आये तो देखा कि यज्ञशाला तेजविहीन है। द्वार पर उनका पुत्र भाला खाकर मरा पड़ा है। उन्होंने समझ लिया कि रैंप्य की अवहेलना करने के कारण यवक्रीत ने यह दण्ड पाया है। पुत्र को मरा देखकर उनसे न रहा गया। उन्हें रैंप्य पर बड़ा क्रोध आया। आखिर पिता जो ठहरे!

शोक-संतप्त होकर विलाप करने लगे—"अरे बेटा, यह क्या कर लिया तुमने? क्या अपने घमण्ड की ही बलि चढ़ गये? अरे, यह कोई भारी पाप था जो तुमने वे सब वेद सीख लिये जो किसी ब्राह्मण को नहीं आते थे? तो फिर इसके लिए तुम्हें क्यों शाप दिया गया? रैंप्य ने मेरे इकलौते बेटे को मुझसे निर्दयता से छीन लिया है। तो मैं फिर क्यों चुप रहूं? मैं भी शाप देता हूं कि रैंप्य भी अपने ही किसी बेटे के हाथों मारा जायगा।"

पुत्र-शोक और क्रोध के कारण भरद्वाज बिना सोचे-समझे और जांच-पड़ताल किए अपने मित्र को इस प्रकार शाप दे बैठे। पर जब उनका क्रोध जरा शांत हुआ तो उनको बड़ा पछतावा हुआ। वह कहने लगे—"हाय, मैंने यह क्या कर डाला! जिसके कोई सन्तान न हो वही बड़ा भाग्यवान है। फिर एक तो मेरा बेटा मुझसे बिछुड़ा और ऊपर से अपने प्रिय मित्र को भी शाप देकर मैंने उसका अहित किया। इस से तो मेरा जीना भी बेकार है।"

यह निश्चय करके भरद्वाज मुनि ने अपने पुत्र का दाह-संस्कार करके उसी आग में आप भी कूदकर प्राण त्याग दिए।

✓

: ३५ :

विद्या और शिष्टता

एक बार रैभ्य महर्षि के शिष्य राजा बृहद्युम्न ने एक भारी यज्ञ किया। यज्ञ कराने के लिए राजा ने आचार्य रैभ्य से अपने दोनों पुत्रों को भेजने का अनुरोध किया। रैभ्य ने पुत्रों को जाने की अनुमति दे दी। परावसु और अर्वावसु दोनों प्रसन्न होकर बृहद्युम्न की राजधानी में गये।

यज्ञ की तैयारियां हो ही रही थीं कि इसी बीच एक दिन परावसु के जी में आया कि जरा पत्नी से मिल आऊं। रातों-रात चल पड़े और पौ फटने से पहले ही आश्रम में आ पहुंचे। दैवयोग से आश्रम के नजदीक किसी झाड़ी के पास रैभ्य मृगचर्म ओढ़े पड़े थे। परावसु ने उन्हें जंगली जानवर समझ कर भय के मारे उन पर हथियार चला दिया। रैभ्य उसी क्षण आर्तनाद करके मर गये।

धोखे में पिता को मारने के कारण परावसु को बड़ा दुःख हुआ। पर भरद्वाज के शाप की याद करके मन को समझा लिया। पिता का दाह-संस्कार जल्दी से करके नगर को लौटे और भाई अर्वावसु को सारा हाल कहा। वह बोले—"मेरे इस पापकृत्य से राजा के यज्ञ-कार्य में विघ्न न पड़े, इसलिए मैं अकेला ही यज्ञ का काम चला लूंगा और तुम जाकर मेरी जगह ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त कर आओ। शास्त्रों में कहा है कि अनजान में की गई हत्या का प्रायश्चित्त हो सकता है। सो तुम मेरे बदले व्रत रखो और प्रायश्चित्त पूरा करके लौट आओ। तुम अकेले यज्ञ-कार्य न चला सकोगे इसलिए मैं यह अनुरोध कर रहा हूं।"

धर्मात्मा अर्वावसु ने यह बात मान ली और बोले—"ठीक है, राजा

का यज्ञ आप सुचारु रूप से करा दीजिए। मैं अकेले यह काम नहीं संभाल सकूंगा। आपकी जगह ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त मैं कर दूंगा और व्रत समाप्त करके लौट आऊंगा।"

यह कह कर अर्वावसु बन में चले गये और विधिवत् व्रत धारण करके भाई की ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त पूरा किया। व्रत समाप्त होने पर वह वापस यज्ञशाला में आगये।

पर परावसु ने हत्या तो खुद की थी और प्रायश्चित्त अपने भाई से करवाया था। इस कारण उनका ब्रह्महत्या का दोष न धुल सका। उसके फल-स्वरूप उनके मन में अनेक कुविचार उठने लगे। जब उन्होंने अर्वावसु को यज्ञशाला में आते देखा तो उनके मन में ईर्ष्या पैदा हो गई। अर्वावसु के मुख-मंडल से विशुद्ध ब्रह्म-तेज की आभा फूट रही थी। यह परावसु न देख सके। अपने को वे हलका अनुभव करने लगे और डाह तो उनके मन में पैदा हो ही गया था। उन्होंने अर्वावसु पर दोषारोपण करके उन्हें अपमानित करने का विचार किया। वह अपने स्थान से ही चिल्लाकर राजा बृहद्युम्न से कहने लगे—"ब्रह्महत्या करने वाला यह घातक इस पवित्र यज्ञशाला में कैसे प्रवेश कर रहा है ?"

जब यह सुना तो राजा ने नौकरों को आज्ञा दी कि अर्वावसु को यज्ञशाला से बाहर कर दें।

अर्वावसु को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने राजा से नम्रतापूर्वक कहा—"राजन्, ब्रह्महत्या मैंने नहीं की है। मैं सच कहता हूं। असल में ब्रह्महत्या तो मेरे भाई परावसु ने की। मैंने तो उनके निमित्त प्रायश्चित्त किया और उनका पाप दूर किया है।" लेकिन अर्वावसु की इस बात पर किसीने भरोसा नहीं किया और उनका बड़ा अपमान करके यज्ञशाला से निकाल दिया।

सब लोग भी अर्वावसु की निन्दा करने लगे। कहने लगे—"कैसा अंधेर है! एक तो ब्रह्महत्या की और उसका प्रायश्चित्त भी कर आये

और दोष उल्टे भाई पर मढ़ने चले !

इस प्रकार अपमानित होकर और हत्यारे कहलाकर धर्मात्मा अर्वावसु कुंठित हृदय से यज्ञशाला से चुपचाप निकल गये। वे सीधे बन में गये और घोर तपस्या करने लगे।

●

देवताओं ने प्रकट होकर पूछा —"धर्मात्मा ! आपकी कामना क्या है ?"

यज्ञशाला से निकलते समय अर्वावसु के मन में भाई के प्रति जो क्रोध था वह अब तक शान्त हो चुका था। सो उन धर्मात्मा ने देवताओं से प्रार्थना की कि भाई परावसु का दोष धुल जाये और पिता रैभ्य फिर से जीवित हो उठें।

देवताओं ने प्रसन्न होकर "तथास्तु" कह दिया।

●

लोमश ऋषि ने युधिष्ठिर से कहा—"युधिष्ठिर, यही वह स्थान है जहां महा विद्वान रैभ्य का आश्रम था। पांडु-पुत्रो ! गंगा के पवित्र जल में स्नान करके क्रोध से निवृत्त हो जाओ।"

: ३६ :

मुनि अष्टावक्र

लोमश के साथ तीर्थाटन करते हुए एक बार पांडव किसी बन में जा पहुंचे। उपनिषदों में वह श्वेतकेतु के आश्रम के नाम से वर्णित है। उस पवित्र वन के बारे में महर्षि लोमश ने युधिष्ठिर को यह कथा कही—

महर्षि उद्दालक वेदान्त का प्रचार करने वाले महात्माओं में श्रेष्ठ माने जाते थे। उनके शिष्यों में से कहोड़ भी एक थे। कहोड़ आचार्य

की खूब सेवा-टहल करते थे और बड़े संयमी थे। पर लिखने-पढ़ने में तेज न थे। इस कारण उद्दालक के दूसरे शिष्य कहोड़ की हँसी उड़ाते थे। फिर भी उद्दालक ने कहोड़ के शील-स्वभाव और संयम से खुश होकर अपनी कन्या सुजाता उन्हें ब्याह दी।

कहोड़ के सुजाता से एक पुत्र हुआ। कहते हैं कि वह जब गर्भ में था तभी उसको सारे वेद आते थे। किन्तु पिता कहोड़ तो थे अविद्वान। वेद-मन्त्रों का न तो ठीक-ठीक उच्चारण कर सकते थे, न स्वर-सहित गा ही सकते थे। इस कारण उनका गलत-सलत वेद-पाठ गर्भ के शिशु के लिए असह्य हो उठा और वह वहां टेढ़ा-मेढ़ा हो गया। टेढ़े-मेढ़े शरीर के कारण बच्चे का नाम अष्टावक्र पड़ गया।

अष्टावक्र ने बालपन में ही बड़ी विद्वत्ताका परिचय दिया। जब वे बारह साल के थे तभी वेद-वेदांगों का अध्ययन पूर्ण कर चुके थे।

एक बार बालक अष्टावक्र ने सुना कि मिथिला में राजा जनक एक भारी यज्ञ कर रहे हैं जिसमें बड़े-बड़े पण्डितों का शास्त्रार्थ होने वाला है। वे तुरन्त अपने भानजे श्वेतकेतु को भी साथ लेकर यज्ञ के लिए चल पड़े।

मिथिला नगरी पहुंचकर वे यज्ञशाला की ओर जा ही रहे थे कि सड़क पर से राजा जनक परिवार के साथ जाते दिखाई दिये। राजसेवक आगे-आगे कहते जा रहे थे—"राजाधिराज जनक आ रहे हैं। हट जाओ, रास्ता दो। रास्ता दो।" अष्टावक्र को जब नौकरों ने रास्ते से हटने के लिए कहा तो उन्होंने जवाब दिया—

"शास्त्रों में कहा गया है कि अन्धे, अपाहिज, औरतें और बोझा उठाने वाले जब जा रहे हों तो स्वयं राजा को उनके लिए रास्ता देना चाहिए और अगर वेद पढ़े हुए ब्राह्मण जा रहे हों तो राजा उनको रास्ते से हटने के लिए नहीं कह सकता। समझे?"

लड़के की गंभीर बातें सुनकर राजर्षि जनक दंग रह गये। वे बोले—"ब्राह्मण-पुत्र ठीक कहते हैं। आग के आगे छोटे-बड़े का अन्तर

नहीं होता। आग की जरा-सी चिनगारी भी सारे जंगल को जला सकती है। इसलिए हट जाओ, ब्राह्मण-पुत्र को रास्ता दो।" कहकर राजा जनक ने अपने परिवार-सहित हटकर अष्टावक्र को रास्ता दे दिया।

●

अष्टावक्र और श्वेतकेतु यज्ञशाला में प्रवेश करने लगे।

"यहां बालकों का क्या काम? वेद पढ़े हुए लोग ही इस यज्ञशाला में जा सकते हैं।" द्वारपाल ने यह कहकर लड़कों को रोका। अष्टावक्र ने उत्तर दिया—"हम बालक नहीं हैं। दीक्षा लेकर वेद सीख चुके हैं। जो वेदान्त का पार पा गये हों उनकी आयु या बाहरी शकल-सूरत देखकर कोई उन्हें बालक नहीं ठहरा सकता।" और यह कहकर अष्टावक्र यज्ञशाला के अन्दर घुसने लगे।

द्वारपाल ने डांटकर कहा—"ठहरो! अभी तुम बच्चे हो। अपने मुंह बड़े न बनो। उपनिषदों का ज्ञान और वेदांग के तत्व जानना ऐसा-वैसा काम नहीं है। तुमने इसे बच्चों का खेल समझ रखा है क्या?"

अष्टावक्र ने कहा—"देखो भाई, सेमर के फल की तरह ऊपर से मोटाताजा और अन्दर हल्की रुई से भरा रहना किस काम का? शरीर की बनावट और कद से ज्ञान का अन्दाजा नहीं किया जाता। बड़ा वही नहीं है जो कद का लंबा हो। लंबे कद का न होने पर भी अगर किसी में ज्ञान हो तो शास्त्रों में उसे बड़ा माना गया है। जिसमें ज्ञान का अभाव हो, वह उमर का चाहे बूढ़ा ही क्यों न हो, बालक ही समझा जाता है। इसलिए बालक समझकर मुझे मत रोको।"

द्वारपाल ने फिर कहा—"तुम बालक होकर बड़ों की-सी बातें न करो। छोटे मुंह बड़ी बात करना ठीक नहीं। क्यों व्यर्थ की बहस करते हो?"

अष्टावक्र ने समझाकर कहा—"भाई द्वारपाल! बालों का पक जाना उम्र के पक्का होने की निशानी नहीं है। किसी ऋषि ने यह नहीं कहा कि बूढ़ी उमर, पके बाल, धन-दौलत और बन्धु-मित्रों की भीड़ के होने से

ही कोई बड़ा बन जाता है। बड़ा वही होता है जो वेदों और वेदांगों का गहरा अध्ययन करके उनका अर्थ साफ समझा हुआ हो। मैं यहां पर इसी उद्देश्य से आया हूं कि महाराज की सभा के विद्वानों से मिलकर कुछ बातें करूं। जाओ, महाराज जनक को मेरे आने की खबर दो और कहो कि अष्टावक्र मुनि आये हैं।"

द्वारपाल से यह चर्चा हो ही रही थी कि महाराज जनक वहां आ पहुंचे। द्वारपाल ने बालक के साहस की राजा को खबर दी। जनक ने अष्टावक्र को देखते ही पहचान लिया कि यह तो वही ब्राह्मण-बालक है जिससे सड़क पर भेंट हुई थी।

वह बोले––"बालक ! मेरी सभा के विद्वान बड़े-बड़े पंडितों को शास्त्रार्थ में हराकर समुद्र में गिरा चुके हैं। आप तो निरे बालक हैं ! आप यह दुःसाहस क्यों करने चले हैं ?"

अष्टावक्र ने कहा––"आपकी सभा के विद्वानों ने शायद कुछ नामधारी पंडितों को हराया होगा और इसीका उन्हें बड़ा घमण्ड होगया मालूम होता है। मैं तो यह सही तब मानूंगा जब वे मेरे जैसे वेदान्त के पहुंचे हुए विद्वानों को शास्त्रार्थ में हरावें। अपनी माता के मुंह मैंने सुना था कि मेरे पिताजी को आपके विद्वानों ने शास्त्रार्थ में हराकर समुद्र में डुबोया था। मैं उसीका ऋण चुकाने यहां आया हूं। आप विश्वास रखें कि मैं आपके विद्वानों को हार मनवाके रहूंगा। मेरे शास्त्रार्थ में हार खाकर वे उसी प्रकार लुढ़क जायंगे जैसे तेज दौड़ने वाली गाड़ी की धुरी के टूट जाने पर गाड़ी लुढ़क पड़ती है। अतः आप अपने विद्वानों से मेरी भेंट कराने की कृपा करें।"

●

मिथिला-नरेश के विख्यात पण्डित और बालक अष्टावक्र में शास्त्रार्थ शुरू हुआ। दोनों तरफ से प्रश्नों और उत्तरों की बौछार-सी होने लगी। अन्त में सभासदों को मानना पड़ा कि अष्टावक्र की जीत हो गई। मिथिला नगर के विद्वानों ने लज्जा के मारे सिर झुका लिया। शर्त के अनुसार उन्हें

समुद्र में डुबो दिया गया और वरुणालय सिधारे।

अष्टावक्र के स्वर्गवासी पिता की आत्मा अपने पुत्र की प्रशंसा को सुनकर आनन्दित हो उठी और उसके मुंह से ये उद्‌गार निकल पड़े—

"यह कोई अटूट नियम नहीं कि पुत्र पिता ही को पड़े। हो सकता है कि कमजोर पिता के बलिष्ठ और मन्द-मति के विद्वान पुत्र हो। किसी की शकल-सूरत या आयु को देखकर उसकी महानता का निर्णय करना ठीक नहीं। बाहरी रंग-रूप अक्सर लोगों को धोखे में डालता है।"

: ३७ :

भीम और हनुमान

जब से अर्जुन दिव्य अस्त्र-शस्त्र पाने के लिए हिमालय पर तपस्या करने गये थे तब से पांडवों और द्रौपदी के लिए दिन काटना कठिन हो गया।

अक्सर द्रौपदी करुण-स्वर में कहती—"अर्जुन के बिना मुझे यहां काम्यक बन में बिलकुल अच्छा नहीं लगता। ऐसा मालूम होता है मानों बन की सुन्दरता ही लुप्त हो गई है। सव्यसाची (अर्जुन) को देखे बिना मेरा जी घबरा रहा है। मुझे जरा भी चैन नहीं पड़ती।"

द्रौपदी की ऐसी बातें सुनकर एक बार भीमसेन बोला—"कल्याणी! अर्जुन की याद में तुम जो बातें कहती हो, वह मुझे ऐसे आह्लादित करती हैं मानों अमृत की धारा हृदय में बह रही हो। बिना अर्जुन मुझे भी ऐसा प्रतीत होता है मानों इस सुन्दर बन की शोभा ही न रही हो, मानों इसमें चारों ओर अंधेरा छाया हुआ हो। अर्जुन को देखे बिना मुझे भी चैन नहीं पड़ती। ऐसा लगता है मानों दिशाएं घने

अन्धकार से आच्छादित हो गई हैं। क्यों भाई सहदेव! तुम्हें कैसा लगता है?"

सहदेव ने कहा--"भाई अर्जुन के बिना तो सारा आश्रम सूना-सूना लग रहा है। कहीं और जगह चलें और उनकी याद को भूलने का प्रयत्न करें तो कैसा?"

युधिष्ठिर ने पुरोहित धौम्य से कहा--"अर्जुन को दिव्यास्त्र प्राप्त करने को गये इतने दिन हो गये; वह अभी तक लौटा नहीं। मैंने तो उसे इसलिए हिमालय भेजा था कि वह देवराज से दिव्यास्त्र प्राप्त कर आये। अगर युद्ध हुआ तो यह तय बात है कि भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य धृतराष्ट्र के पुत्रों के ही पक्ष में लड़ेंगे। महारथी कर्ण भी हैं। मैंने सोचा कि जब ऐसे-ऐसे महारथियों का युद्ध में सामना करना पड़े तो अच्छा हो कि अर्जुन भी हिमालय जाकर देवराज इन्द्र से दिव्यास्त्र प्राप्त कर आये। बिना ऐसा किये हम इन महारथियों से पार न पा सकेंगे। यह काम बड़ा ही कठिन है। और अर्जुन को ऐसे कठिन काम पर भेज कर हम यहां आराम से दिन बिता रहे हैं, यह हमें बहुत खटकता है। अर्जुन का बिछोह अब हम से सहा नहीं जाता। यहां हम उसके साथ रह चुके हैं, इससे उसकी बड़ी याद आती है। अच्छा हो, यहां से कहीं दूर जाकर उसके बिछोह को भूलने की कोशिश करें। आप ही बताइए कि हम कहां जायें?"

धौम्य ने अनेक जंगलों और पवित्र तीर्थों के बारे में युधिष्ठिर को बताया। सबने तय किया कि कहीं दूर की जगहों में विचरण कर के अर्जुन के बिछोह का दुःख दूर करने का प्रयत्न करें। यह सोचकर सब धौम्य के साथ चल पड़े और तीर्थों में घूमते हुए और हर तीर्थ की पवित्र कथा धौम्य के मुंह से सुनते हुए उन्होंने कुछ बरस बिताये। इस भ्रमण में वे कहीं ऊंचे पहाड़ों पर चढ़ते तो कहीं घने जंगलों को पार करते। कभी-कभी द्रौपदी थक कर चूर हो जाती तो उस सुकोमल राजकुमारी की व्यथा देखकर सब और दुःखी हो जाते। ऐसे अवसरों पर भीमसेन

बहादुरी से सबको धीरज बंधाता और अपने शारीरिक बल से काम लेकर सबका श्रम दूर करता। भीमसेन की आसुरी स्त्री हिडिंबा का पुत्र घटोत्कच भी समय-समय पर आकर उन सबकी सहायता करता रहता था।

●

पांडव हिमालय के दृश्य निहारते हुए जा रहे थे कि एक बार उनको एक भयावने जंगल से होकर जाना पड़ा। रास्ता बहुत ही कठिन था। मार्ग में द्रौपदी को तकलीफें उठाते देख युधिष्ठिर का जी भर आया। भीमसेन से बोले—"भाई भीम, द्रौपदी से इस रास्ते नहीं चला जायेगा। इसलिए लोमश ऋषि के साथ मैं और नकुल तो आगे बढ़ते हैं और तुम व सहदेव द्रौपदी को लेकर गंगा के मुहाने पर जाकर रहो। जबतक हम तीनों न लौट आयें, द्रौपदी की सावधानी के साथ रक्षा करते हुए वहीं रहना।"

किंतु भीमसेन न माना। वह बोला—"महाराज! एक तो द्रौपदी कभी इस बात पर राजी नहीं होगी। दूसरे, जब एक अर्जुन के बिछोह का आपको इतना दुःख हो तो मुझे, सहदेव को और द्रौपदी को देखे बगैर आपसे कैसे रहा जायगा? फिर राक्षसों और हिंस्र जन्तुओं से भरे इस भीषण बन में आपको अकेला छोड़ जाने को भी मैं कभी राजी नहीं होऊंगा। इसलिए हम सब साथ ही चलेंगे। अगर कहीं द्रौपदी को चलने में कठिनाई मालूम होगी तो मैं उसे अपने कन्धे पर बिठा कर ले चलूंगा। नकुल और सहदेव को भी मैं उठा ले चलूंगा। आप उनकी चिन्ता न करें।"

भीमसेन की बातों से युधिष्ठिर हर्ष से फूल उठे। उन्होंने भीम को छाती से लगा लिया और आशीर्वाद दिया— "भगवान् करे, तुम्हारा शारीरिक बल हर घड़ी बढ़ता ही जाय।"

इतने में द्रौपदी मुसकराती हुई युधिष्ठिर से बोली— "आप मेरी चिन्ता न करें। किसी को मुझे उठा ले चलने की आवश्यकता नहीं।

में खुद ही चल सकती हूं।" और पांडव फिर साथ-साथ चल पड़े।

●

हिमालय की गोदी में विचरण करते हुए पांडव महाराज सुबाहु के कुलिन्द देश में जा पहुंचे। महाराज ने उनका खूब आदर-सत्कार किया। कुछ दिन सुबाहु के राज्य में ठहरकर आराम करने के बाद उन्होंने फिर यात्रा शुरू कर दी और चलते-चलते नारायणाश्रम नाम के रमणीक बन-प्रदेश में जा पहुंचे। उस जगह के सुन्दर दृश्यों को देखते हुए वे कुछ दिन वहां रहे।

उत्तर-पूरब से मलयानिल मन्द गति से बह रहा था। सुहावना मौसम था। द्रौपदी आश्रम के बाहर खड़ी मौसम की बहार ले रही थी। इतने में एक सुन्दर फूल हवा में उड़ता हुआ उसके पास आ गिरा। द्रौपदी ने उसे उठा लिया और वह उसकी महक और सौन्दर्य पर मुग्ध हो गई। ऐसे ही कुछ और फूल पाने के लिए उसका जी मचल उठा।

भीमसेन के पास जाकर बोली— "भीम, देखा तुमने कैसा कोमल और सुन्दर फूल है यह! कैसी मनोहर सुगन्ध है इसमें! कैसी इसकी निकाई है। मैं यह फूल युधिष्ठिर को भेंट करूंगी। तुम जाकर ऐसे ही कुछ और फूल ला सकोगे? काम्यक बन में इसी फूल का पौधा लगायेंगे।" यह कहती द्रौपदी हाथ में फूल लिये युधिष्ठिर के पास दौड़ी गई।

अपनी प्रिय द्रौपदी की इच्छा पूरी करने के लिए भीमसेन उसी फूल की तलाश में निकल पड़ा। पवन उस दैवी फूल की सौरभ लिये बह रही थी। भीमसेन उसीको सूंघता हुआ उत्तर-पूरब की दिशा में अकेले आगे बढ़ चला। रास्ते में कितने ही जंगली जानवरों से उसका सामना हुआ। फिर भी भीमसेन उनकी जरा भी परवाह न करता हुआ आगे बढ़ता चला।

चलते-चलते वह पहाड़ की घाटी में जा पहुंचा जहां केले के पेड़ों का एक विशाल बगीचा लगा हुआ था। बगीचे के बीच एक बड़ा भारी

बंदर रास्ता रोके लेटा हुआ था। बन्दर का शरीर लाल था और उसमें से ऐसी आभा फूट रही थी मानों आग का कोई बड़ा गोला हो। यह देखकर भीम जोर से चिल्ला उठा।

बन्दर ने जरा आंखें खोलीं और बड़ी लापरवाही से भीम की तरफ देखकर कहा—"मैं कुछ अस्वस्थ हूं। इसीलिए लेटा हुआ हूं। जरा आंख लगी थी तो तुमने आकर नींद में खलल डाल दी। मुझ सोते को क्यों जगाया तुमने? तुम तो मनुष्य हो। तुम में विवेक होना चाहिए। हम पशु हैं, इससे हममें तो विवेक का अभाव है; पर तुम जैसे विवेकशील मनुष्यों के लिए यह उचित नहीं कि किसी जानवर को दुःख पहुंचाओ; बल्कि तुम्हें तो चाहिये था कि हम नासमझ जानवरों पर दया करते। मालूम होता है कि तुम्हें धर्म का ज्ञान नहीं है। पर जाने भी दो, यह बताओ कि तुम हो कौन? कहां जाना चाहते हो? इस पहाड़ी पर इसके आगे बढ़ना संभव नहीं। यह तो देवलोक जाने का रास्ता है। कोई मनुष्य यहां से आगे जा नहीं सकता। तुम यहां इस बन में मन चाहे जितने फल खा सकते हो और खा-पीकर वापस लौट जाओ।

एक बन्दर के इस प्रकार मनुष्य-जैसा उपदेश देने पर भीमसेन को बड़ा क्रोध आया और बोला—"कौन हो तुम जो बन्दर की-सी शकल के होने पर भी बड़ी-बड़ी बातें करते हो? जानते हो, मैं कौन हूं? मैं हूं क्षत्रिय कुरुवंश का वीर और कुन्ती देवी का बेटा और वायु का पुत्र। समझे! मुझे रोको मत! मेरे रास्ते से हट जाओ और मुझे आगे जाने दो।"

भीम की बातें सुनकर बन्दर जरा मुसकराया और बोला—"ठीक है, मैं हूं तो बन्दर ही, पर इतना कहे देता हूं कि इस रास्ते आगे बढ़ने की कोशिश न करना, नहीं तो खैर नहीं है।"

भीम ने कहा—"देखो जी, मैंने तुमसे कब पूछा था कि मैं उधर जाऊं या नहीं और गया तो ठीक होगा या नहीं? इन बातों को छोड़ो और रास्ते से हट जाओ और मुझे आगे जाने दो।"

बन्दर ने कहा--"देखो भाई, मैं तो हूं बूढ़ा। कठिनाई से उठ-बैठ सकता हूं। ठीक है, यदि तुम्हें आगे बढ़ना ही है तो मुझे लांघ कर चले जाओ।"

भीमसेन ने कहा--"शास्त्रों में किसी जानवर को लांघना अनुचित कहा गया है। इसीसे मैं रुक गया, नहीं तो कभी का तुम्हें और इस पहाड़ को वैसे ही एक छलांग में लांघ कर चला गया होता जैसे हनुमान ने समुद्र को लांघा था।"

बन्दर ने कहा--"भाई, मुझे जरा बताना तो कि वह हनुमान कौन था जो समुद्र लांघ गया था?"

भीमसेन जरा कड़क कर बोला--"क्या कहा बन्दर, तुमने? तुम महावीर हनुमान को नहीं जानते जिन्होंने भगवान् रामचन्द्र की पत्नी सीता को खोजने के लिए एक सौ योजन का चौड़ा समुद्र एक छलांग में लांघ दिया था? वे मेरे बड़े भाई हैं, समझे! और यह भी जान लो कि मैं बल और पराक्रम में उन्हीं के समान हूं। मुझे किसी आवश्यक काम पर यहां आना पड़ा है। तुम मुझे न रोको। उठकर रास्ता दे दो, नहीं तो फिर मेरा क्रोध तुम्हें अभी ठिकाने लगा देगा। नाहक मृत्यु को न्योता न दो।"

बन्दर बड़े करुणस्वर में बोला-- "हे वीर! शांत हो जाओ! इतना क्रोध न करो। बुढ़ापे के कारण मुझसे हिला-डुला भी नहीं जाता। यदि मुझे लांघना तुम्हें अनुचित लगता हो तो मेरी इस पूंछ को हटा कर एक ओर कर दो और चले जाओ।"

यह सुन भीम को बड़ी हँसी आई। उसे अपनी ताकत का बड़ा घमंड था। सोचा कि इस बन्दर की पूंछ को पकड़ कर ऐसे खीचूंगा कि याद रक्खेगा। यह सोचकर भीमसेन ने बन्दर की पूंछ एक हाथ से पकड़ ली।

लेकिन आश्चर्य! भीम ने पूंछ पकड़ तो ली; पर वह उससे जरा भी हिली नहीं-- उठाने को कौन कहे! खुद भीम बड़ा ताज्जुब करने लगा

कि बात क्या है ? उसने दोनों हाथों से पूंछ पकड़ कर खूब जोर लगाया। उसकी भौंहें चढ़ गईं। आंखें निकल आईं और शरीर से पसीना बह चला। किन्तु पूंछ जैसी-की-तैसी ही रही। जरा भी नहीं हिली-डुली। भीम बड़ा लज्जित हुआ। उसका गर्व चूर हो गया। उसे बड़ा विस्मय होने लगा कि मुझसे ताकतवर यह कौन है ? भीम के मन में बलिष्ठों के लिए बड़ी श्रद्धा थी। वह नम्र हो गया।

बोला--"मुझे क्षमा करें। आप कौन हैं ? सिद्ध हैं, गन्धर्व हैं, देव हैं, कौन हैं आप ? एक शिष्य के नाते पूछता हूं। आप ही की शरण लेता हूं।"

हनुमान ने कहा--"हे कमलनयन पाण्डुवीर ! सम्पूर्ण विश्व के प्राणाधार वायु-देव का पुत्र हनुमान मैं ही हूं। भैया, भीम ! यह देवलोक जाने का रास्ता है। इस रास्ते में यक्ष और राक्षस भरे पड़े हैं। इस रास्ते जाने से तुम पर विपदा आने की शंका थी। इसी से मैंने तुम्हें रोका। मनुष्य इस रास्ते नहीं चल सकते। फिर तुम जिस सुगंधित फूल की खोज में आये हो उसके पौधे तो उस झरने और जलाशय के आस-पास के उपवन में लहरा रहे हैं। चले जाओ और अपनी इच्छा भर फूल चुन लो।"

"वानर-श्रेष्ठ! मुझसे बढ़कर भाग्यवान और कौन होगा जो मुझे आपके दर्शन प्राप्त हुए। अब मेरी केवल यही कामना है कि जिस आकार में आपने समुद्र लांघा था उसके भी दर्शन मैं कर लूं।" कहकर भीमसेन ने अपने बड़े भाई हनुमान के आगे दण्डवत् की।

भीम की बात पर हनुमान मुसकराये और अपना शरीर बढ़ा कर सारी दिशाओं में व्याप्त हो गये मानों एक पहाड़ सामने खड़ा हो गया हो। भीम हनुमान के दैवी रूप के बारे में बहुत सुन चुका था, पर अब उसने देख भी लिया। हनुमान का विशाल-काय शरीर और सूर्य की प्रभा के समान तेज ने उसे चकाचौंध कर दिया। उसकी आंखें आप-ही-आप झपक गईं।

हनुमान ने अपनी बढ़ती रोककर कहा—"भीम! इससे और बड़ा शरीर बढ़ाकर तुम्हें दिखाने का यह समय नहीं है। इतना जान लो कि वैरियों के सामने मेरा शरीर और भी विशाल बन सकता है।"

इसके बाद हनुमान ने अपना शरीर पहले का-सा छोटा कर लिया और भीमसेन को गले लगा लिया। महावीर मारुति के गले लगाते ही भीमसेन की सारी थकावट दूर हो गई और वह पहले से भी ज्यादा ताकतवर हो गया।

हनुमान ने प्रसन्न होकर कहा—"वीरवर भीम, अब तुम अपने आश्रम लौट जाओ। समय पड़ने पर मेरा स्मरण करना। तुम्हारे इस मनुष्य-शरीर को जब मैंने गले लगाया तो मुझे वह आनन्द प्राप्त हुआ जो उन दिनों भगवान् रामचन्द्र के स्पर्श से हुआ करता था। भाई, जिस वर की इच्छा हो मुझसे मांगो।"

"हे महावीर, मुझे आपके दर्शन हुए, यह हम पांचों भाइयों का अहोभाग्य था। यह निश्चित है कि आपकी सहायता से हम सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करेंगे।" भीमसेन ने श्रद्धा के साथ कहा।

मारुति ने अपने छोटे भाई को आशीर्वाद देते हुए कहा—"भीम! जब तुम लड़ाई के मैदान में सिंह की भांति गरजोगे तब मेरी भी गर्जना तुम्हारी गर्ज के साथ मिलकर शत्रुओं के हृदयों को हिला दिया करेगी। युद्ध के समय तुम्हारे भाई अर्जुन के रथ पर उड़नेवाली ध्वजा पर मैं विद्यमान रहूंगा। विजय तुम्हारी ही होगी।"

इसके बाद हनुमान ने भीमसेन को पास के झरने में जो सुगन्धित फूल खिले थे, उन्हें जाकर दिखाये।

फूलों को देखते ही भीमसेन को बनवास का दुःख झेलती हुई द्रौपदी का स्मरण हो आया। उसने जल्दी से फूल तोड़े, महावीर को फिर प्रणाम किया और आश्रम की ओर वेग से लौट चला।

: ३८ :

"मैं बगुला नहीं हूं"

पाण्डवों के बनवास के समय एक बार मार्कण्डेय मुनि पधारे। इस अवसर पर बातचीत के दौरान में युधिष्ठिर स्त्रियों के गुणों की बड़ी प्रशंसा करते हुए बोले--

"स्त्रियों की सहनशीलता और सतीत्व से बढ़कर आश्चर्य की बात संसार में और क्या हो सकती है ? बच्चे को जन्म देने से पहले स्त्री को कितना असह्य कष्ट उठाना पड़ता है। दस महीने तक वह बच्चे को अपनी कोख में पालती है। अपने प्राणों को जोखिम में डालकर, अवर्णनीय पीड़ा सहकर बच्चे को जन्म देती है। उसके बाद कितने प्रेम से उस बच्चे को पालती है। उसे सदा यही चिन्ता लगी रहती है कि मेरा बच्चा कैसा होगा ! पति के अत्याचारी होने पर भी, उसके घृणा करने पर भी, स्त्री उसके सारे अत्याचार चुपचाप सह लेती है और उसके प्रति अपने मन की श्रद्धा कभी कम नहीं होने देती। सचमुच यह एक आश्चर्यजनक ही बात है !"

यह सुनकर महर्षि मार्कण्डेयम एक कथा सुनाने लगे :

कौशिक नाम के एक ब्राह्मण थे। वह ब्रह्मचर्य-व्रत पर अटल थे। एक दिन कौशिक पेड़ की छांह में बैठे वेद-पाठ कर रहे थे कि इतने में उनके सिर पर किसी पंछी ने बीट कर दी। कौशिक ने ऊपर देखा तो पेड़ की डाल पर एक बगुला बैठा दिखाई दिया। ब्राह्मण ने सोचा, इसी बगुले ने मेरे सिर पर बीट की होगी। उन्हें बड़ा क्रोध आया। उनकी क्रोधभरी दृष्टि बगुले पर पड़ी कि ब्राह्मण के विशुद्ध ब्रह्मचर्य के कारण पंछी तत्काल ही भस्म होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। बगुले के मृत-शरीर को

देखते ही ब्राह्मण का मन उद्विग्न हो उठा। उन्हें बड़ा पछतावा होने लगा।

मन की भावनाओं के कार्यरूप में परिणत होने के लिए कितने ही बाहरी कारणों की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु बाहरी कारण भावनाओं का हर वक्त साथ नहीं देते। इसी कारण हम कितनी ही बुराइयों से अक्सर बच जाते हैं। यदि यह बात न हो, यदि मन की सारी भावनाएं तत्काल ही कार्यरूप में परिणत होने लग जायं तो फिर इस संसार के कष्टों को कोई सहन न कर सके।

कौशिक बड़े पछताये कि एक निर्दोष पंछी को मैंने मार दिया। क्रोध में आकर मैंने जो भावना की उसने यह क्या अनर्थ कर दिया! यह सोचकर उन्हें बड़ा शोक हुआ। इतने में भिक्षा का समय हो आया। कौशिक भिक्षा के लिए चल पड़े।

एक द्वार पर भिक्षा के लिए वह खड़े हुए। घर की मालकिन अन्दर बरतन साफ़ कर रही थी। कौशिक ने सोचा, काम पूरा होने पर मेरी तरफ ध्यान देगी। किन्तु इतने में स्त्री का पति, जो किसी काम पर बाहर गया हुआ था, लौट आया। आते ही बोला—'बड़ी भूख है।' पति की बात सुनते ही गृह-पत्नी ब्राह्मण की परवाह न करके अपने पति की सेवा-टहल में लग गई। पानी लाकर पांव धोये, आसन बिछाया। उसके बैठने पर थाली परोस कर उसके सामने रख दी और बैठकर पंखा झलने लगी।

कौशिक द्वार पर खड़े ही रहे। जब उस स्त्री का पति भोजन कर चुका तभी कौशिक के लिए वह भिक्षा लाई। भिक्षा देते हुए उसने कौशिक से कहा—"महाराज, आपको बहुत देर ठहरना पड़ा, क्षमा कीजिएगा।"

स्त्री की इस लापरवाही के कारण कौशिक क्रोध के मारे प्रज्वलित अग्नि से मालूम पड़ रहे थे। बोल उठे—"देवी! मुझे और बहुत घरों में जाना है। यह तुम्हारे लिए उचित नहीं था जो तुमने मुझे इतनी देर ठहरा रखा।"

स्त्री ने कहा--"ब्राह्मण-श्रेष्ठ ! पति की सेवा-शुश्रूषा में लगी रही। इसी कारण कुछ देर हो गई, क्षमा कीजिएगा।"

कौशिक को अपनी दृढ़-व्रतता और जीवन की पवित्रता का बड़ा घमंड था। वह उस स्त्री को उपदेश देने लगे--"नारी ! माना कि पति की सेवा-टहल करना स्त्री का धर्म होता है। किन्तु ब्राह्मण का अनादर करना भी ठीक नहीं। मालूम होता है तुम्हें अपने सतीत्व का बड़ा घमंड है।"

स्त्री ने विनीत भाव से कहा--"नाराज न होइयेगा। अपने पति की शुश्रूषा में रहनेवाली स्त्री पर कुपित होना उचित नहीं। मुझे पेड़वाला बगुला समझने की गलती न कीजिएगा। आपका क्रोध पति की सेवा में लगी रहने वाली सती का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मैं बगुला नहीं हूं।"

स्त्री की बातें सुनकर ब्राह्मण कौशिक चौंक उठे। उन्हें बड़ा अचरज हुआ कि इस स्त्री को बगुले के बारे में कैसे पता लगा? वे आश्चर्य कर रहे थे कि इतने में वह बोली--

"महात्मन् ! आपने धर्म का मर्म न जाना। शायद आपको इस बात का भी पता नहीं कि क्रोध एक ऐसा शत्रु है जो मनुष्य के शरीर ही के अन्दर रहते हुए उसका नाश कर देता है। मेरा अपराध क्षमा करें और मिथिलापुरी के रहनेवाले धर्मव्याध से जाकर उपदेश ग्रहण करें।"

ब्राह्मण विस्मित होकर बोले--"देवी ! आपका कल्याण हो। आप मेरी निन्दा जो कर रही हैं, मेरा विश्वास है कि वह मेरी भलाई के ही लिए है।"

उस साध्वी नारी को यों आशीर्वाद देकर कौशिक मिथिला नगरी को चल पड़े।

●

मिथिला पहुंच कर कौशिक धर्मव्याध की खोज करने लगे।

उन्होंने सोचा कि जो महात्मा मुझे उपदेश देने के काबिल हैं वे अवश्य ही कहीं किसी आश्रम में रहते होंगे। इस विचार से कितने ही सुन्दर भवनों और सुहावने बाग-बगीचों में ढूंढ़ा; पर कौशिक को कोई पता न चला। अंत में एक कसाई की दुकान मिली जिस पर एक हट्टा-कट्टा आदमी बैठा मांस बेच रहा था। लोगों ने कौशिक को बताया---"वह जो दुकान पर बैठे हैं वे ही धर्मव्याध हैं!"

ब्राह्मण बड़े कुत्सित भाव से नाक-भौंह सिकोड़ कर दूर ही पर खड़े रहे। उन्हें कुछ समझ में नहीं आया। ब्राह्मण को यों भ्रम में पड़े-से देखकर कसाई जल्दी से उठकर उनके पास आया और बड़ी नम्रता के साथ बोला---"भगवन्! स्वस्ति। उस सती साध्वी ने ही तो आपको मेरे पास नहीं भेजा है ?"

सुनकर कौशिक सन्न रह गये।

"द्विजवर! मैं आपके यहां आने का उद्देश्य जानता हूं। चलिये, घर पर पधारिये। आपकी इच्छा पूरी होगी।" यह कहकर धर्मव्याध ब्राह्मण को अपने घर ले गया। वहां पहुंचकर कौशिक ने धर्मव्याध को अपने माता-पिता की बड़ी श्रद्धा के साथ सेवा-टहल करते देखा। इसके बाद इससे निवृत्त होकर कसाई धर्मव्याध ने ब्राह्मण कौशिक को बताया कि जीवन क्या है, कर्म क्या होता है और मनुष्य के कर्त्तव्य क्या होते हैं। यह उपदेश पाकर कौशिक अपने घर लौट आये और धर्मव्याध के उपदेश के अनुसार अपने माता-पिता की सेवा-टहल में लग गये जिनकी उपेक्षा करके वह वेदाध्ययन और तपस्या में लगे थे।

धर्मव्याध की कथा गीता के उपदेश का ही एक दूसरा रूप है। कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसमें परमात्मा व्याप्त न हो। इसलिए कोई भी काम ऐसा नहीं जो ईश्वरीय न हो। समाज के प्रचलित ढांचे के कारण, या खास मौका मिलने या न मिलने के कारण, अथवा अपनी पहुंच या विशेष परिश्रम के कारण भिन्न-भिन्न मनुष्य भिन्न-भिन्न कामों में लग जाते हैं। इसमें ऊंच-नीच का या और किसी तरह का प्रश्न ही कहां

उठ सकता है ? किसी भी काम को, उस काम के धर्म से डिगे बगैर करना ही ईश्वर की भक्ति करना है। धर्मव्याध की कथा का यही उपदेश है और यही गीता का भी उपदेश है।

: ३९ :

दुष्टों का जी कभी नहीं भरता

पांडवों के बनवास के समय कुछ ब्राह्मण पांडवों के आश्रम गये थे। वहां से लौटकर वे हस्तिनापुर पहुंचे और धृतराष्ट्र को पाण्डवों के हाल-चाल सुनाये। धृतराष्ट्र ने जब यह सुना कि पांडव बन में आंधी और धूप में बड़ी तकलीफ उठा रहे हैं तो उनके मन में चिन्ता होने लगी। सोचने लगे, इस अनर्थ का अंत भी कभी होगा ? इसके नतीजे से कहीं मेरे कुल का सर्वनाश न हो जाय !

भीम का क्रोध अबतक अगर रुका हुआ है तो युधिष्ठिर के समझाने-बुझाने और दवाव के कारण ही। वह कबतक अपना क्रोध रोक सकेगा ? सबर की भी तो हद होती है; किंतु किसी-न-किसी दिन पांडवों का क्रोध बांध तोड़कर ऐसा बह निकलेगा कि जिससे सारे कौरव-वंश का सफाया हो जाने की ही संभावना है। यह सोचकर धृतराष्ट्र का मन कांप उठा।

कभी सोचते—"अर्जुन और भीम तो हमसे बदला लेकर ही रहेंगे। शकुनि, कर्ण, दुर्योधन और नासमझ दुःशासन को न जाने क्यों ऐसी मूर्खता-भरी धुन सवार है ? ये क्यों नहीं सोचते कि पेड़ की डाली के सिरे तक पहुंच जाना खतरे से खाली नहीं होता ? थोड़े से शहद के लालच में पड़कर ये लोग शाख के सिरे तक पहुंच चुके हैं। वे यह क्यों नहीं देखते कि भीमसेन के क्रोध-रूपी सर्वनाश का गड्ढा इन्हें निगल जाने के लिए मुंह-बाये पड़ा है ?"

कभी सोचते—"आखिर हम लोग लालच में क्यों पड़ गये ? हमें

कमी किस बात की थी? सब कुछ हमें मिला है। फिर भी हम क्यों लोभ में फंसे? क्यों अन्याय करने पर उतारू हो गये? जो कुछ प्राप्त था उसीका ठीक से उपभोग करते हुए सुखपूर्वक नहीं रह सकते थे? लेकिन हाय! लालच में पड़कर हमने जो पाप किये हैं उनका फल जरूर ही भुगतना पड़ेगा। पाप के जो बीज बोये हैं सो पाप ही की फसल काटनी होगी। और पांडवों का हम क्या बिगाड़ सके? अर्जुन इन्द्रलोक जाकर दिव्यास्त्र प्राप्त करके कुशल-पूर्वक लौट आया है। सशरीर स्वर्ग जाकर सकुशल लौट आना कोई मामूली बात है? कभी किसीसे यह हो सका है कि सदेह इन्द्रलोक जाये और उसे फिर छोड़कर इस लोक में वापस लौट आवे? यदि अर्जुन ने यह असंभव काम संभव कर दिखाया है तो वह केवल बदला लेने की ही गरज से किया होगा।" इसी भांति धृतराष्ट्र सोच किया करते। मन में तरह-तरह की आशंकाएं उठतीं और उनके मन में व्यथा समाई रहती।

लेकिन दुर्योधन और शकुनि और ही कुछ सोचते थे। चिंता करना तो दूर, उन्हें तो अजीब आनन्द आ रहा था और उनका विचार था कि अब आगे शुभ दिन ही आनेवाले हैं।

कर्ण और शकुनि दुर्योधन की चापलूसी किया करते—"राजन्! जो राज्य-श्री युधिष्ठिर का तेज और शोभा बढ़ा रही थी, वह अब हमारे पास आ गई है। बलिहारी है आपकी कुशाग्र-बुद्धि की, जिसके कारण हमें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है।"

किंतु दुर्योधन को भला इतने से संतोष कहां होता! कर्ण से बोला—"कर्ण! तुम्हारा कहना ठीक तो है; परंतु मैं तो चाहता हूं कि पांडवों को मुसीबतों में पड़े हुए अपनी आंखों से देखूं और उनके सामने अपने सुख-भोग और ऐश्वर्य का प्रदर्शन भी करूं जिससे उनको अपनी दयनीय हालत का जरा पता तो चले। जबतक शत्रु की तकलीफ को हम अपनी आंखों से देख न लेंगे तबतक हमारा आनन्द अधूरा ही रह जायेगा। कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिसमें

अपना यह काम भी पूर्ण हो जावे। पिताजी की भी इसमें सम्मति लेनी होगी न?

"पिताजी सोचते हैं कि पांडवों में हमसे ज्यादा तपोबल है। इससे पिताजी पांडवों से कुछ डरते रहते हैं। इस कारण बन में जाकर पांडवों से मिलने की इजाजत देने में झिझकते हैं। वे डरते हैं कि कहीं हमपर इससे कोई आफत न आजाय। लेकिन मैं कहता हूं कि यदि हमने द्रौपदी और भीमसेन को जंगल में पड़े तकलीफ उठाते न देखा तो हमारे इतने करने-धरने का लाभ ही क्या रहा? मैं केवल इतने से ही संतोष नहीं मान सकता कि हमें विशाल राज्य मिला है और उसका उपभोग करते हैं। मैं तो पांडवों का कष्ट अपनी आंखों देखना चाहता हूं। इसलिए कर्ण, तुम और शकुनि कुछ ऐसा उपाय करो जिससे बन में जाकर पांडवों को देखने की पिताजी अनुमति दे दें।"

कर्ण ने हामी भर दी।

अगले दिन पौ फटने से पहले ही कर्ण दुर्योधन के पास जा पहुंचा। उसके चेहरे पर आनन्द की झलक देखकर दुर्योधन ने उत्सुकता से पूछा कि बात क्या है। कर्ण बोला—"मुझे उपाय सूझ गया। द्वैतबन में कुछ ग्वालों की बस्तियां हैं जो हमारे अधीन हैं। हर साल उन बस्तियों में जाकर चौपायों की गिनती लेना राजकुमारों का ही काम होता है। बहुत काल से यह प्रथा चली आ रही है। इसलिए उस बहाने हम पिताजी की अनुमति आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। क्यों, ठीक है न?"

कर्ण ने बात पूरी की भी न थी कि दुर्योधन और शकुनि बांसों उछल पड़े। बोले—"बिलकुल ठीक सूझी है तुमको।" कहते-कहते दोनों ने कर्ण की पीठ थप-थपाई और विदा हुए।

ग्वालों की बस्ती के चौधरी को बुला भेजा गया और कुमारों ने उससे बातचीत भी कर ली।

•

चौधरी ने राजा धृतराष्ट्र से बिनती करके कहा—"महाराज!

गायें तैयार हैं । बन के एक रमणीक स्थान पर राजकुमारों के लिए हर तरह का प्रबन्ध किया जा चुका है । प्रथा के अनुसार राजकुमार उस स्थान पर पधारें । चौपायों की संख्या, उम्र, रंग, नस्ल, नाम इत्यादि की जांच करके खाते में दर्ज कर लें, जैसा कि सदा होता आया है । बछड़ों पर चिह्न लगाने के बाद बन में कुछ देर आखेट खेलकर थोड़ा मन बहला लें । चौपायों की गिनती की रस्म भी अदा हो जायगी और राजकुमारों का मन भी बहल जायगा ।"

राजकुमारों ने भी पिता से आग्रह करके प्रार्थना की कि वे इसकी अनुमति दे दें ।

किंतु धृतराष्ट्र ने न माना । बोले— "मानता हूं कि राजकुमारों के लिए आखेट का खेल बड़ा अच्छा होता है । चौपायों की गिनती लेना और जांच करना भी आवश्यक ही है; परंतु फिर भी सुनता हूं कि आजकल द्वैतबन में पांडव ठहरे हुए हैं । इसलिए राजकुमारों का वहां जाना ठीक नहीं । उनके और तुम्हारे बीच मनमुटाव हो चुका है । ऐसी स्थिति में तुम लोगों को ऐसी जगह, जहां भीम और अर्जुन हों, भेजने पर मैं कभी सहमत नहीं हो सकता ।"

दुर्योधन ने विश्वास दिलाया कि पांडव जहां होंगे वहां वे सब नहीं जायेंगे और बड़ी सावधानी से काम लेंगे ।

"तुम्हारे हजार सावधान रहने पर भी मुझे भय है कि कोई आफत जरूर आ जायगी । तुम्हारे लिए यह उचित नहीं कि बनवास के दुःख से क्षुब्ध हुए पांडवों के नजदीक जाओ । हो सकता है, तुम्हारे अनुचरों में से ही कोई पांडवों से अशिष्टता का व्यवहार कर बैठे जिससे भारी अनर्थ हो सकता है । केवल गायों की गिनती का ही काम हो तो उसके लिए तुम्हारे बजाय किसी और को भी भेजा जा सकता है ।" राजा ने बेटों को समझाते हुए कहा ।

यह सुनकर शकुनि बोला— "राजन् ! युधिष्ठिर धर्म के ज्ञाता हैं । भरी सभा में वे जो प्रतिज्ञा कर चुके हैं उससे विमुख नहीं होंगे । पांडव उनका

कहा अवश्य मानेंगे। हमपर अपना क्रोध प्रकट न करेंगे। आखिर दुर्योधन आखेट ही तो खेलना चाहते हैं? वे कोई ऐसा कार्य न करेंगे जिससे कोई बिगाड़ पैदा हो। आप उन्हें न रोकिए। चौपायों की गिनती का भी काम हो जायगा और दुर्योधन की इच्छा भी पूरी हो जायगी। मैं भी उनके साथ जाऊंगा और कोई अनहोनी बात न होने दूंगा। आप विश्वास मानें, पांडवों के पास तक हम नहीं फटकेंगे। मैं इस बात का वचन देता हूं। आप निश्चिन्त होकर अनुमति दीजिए।"

विवश होकर धृतराष्ट्र ने अनुमति दे दी। बोले--"तो फिर जैसी तुम्हारी इच्छा।"

●

मन में जिसने वैर-भाव को जगह दी हो वह संतोष से सदा के लिए हाथ धो बैठता है। द्वेष वह आग है जो बुझाये नहीं बुझती। जलती आग को कहीं ईंधन डालकर बुझाया जा सकता है? ईंधन पाकर तो वह और भी प्रबल हो उठती है तथा और भी ज्यादा ईंधन पाने के लिए लालायित हो उठती है। द्वेष रखने वाले का जी कभी नहीं भरता।

: ४० :

दुर्योधन अपमानित होता है

एक बड़ी सेना और असंख्य नौकर-चाकरों को साथ लेकर कौरव द्वैतबन के लिए रवाना हुए। दुर्योधन और कर्ण फूले न समाते थे। वे सोचते थे, पांडवों को कष्टों में पड़े देखकर खूब आनन्द आयेगा। उन्होंने पहुंचने पर अपने डेरे ऐसे स्थान पर लगाये जहां से पांडवों का आश्रम चार कोस की दूरी पर ही था।

कुछ देर विश्राम करने के बाद वे ग्वालों की बस्तियों में गये,

चौपायों की गिनती की, मुहर लगाकर विधिवत् रस्म अदा की। इसके बाद ग्वालों के खेल और नाच देखकर कुछ मनोरंजन किया। फिर जंगली जानवरों के शिकार की बारी आई।

शिकार खेलते-खेलते दुर्योधन उस जलाशय के पास जा पहुंचा जो पांडवों के आश्रम के पास ही था। तालाब का स्वच्छ जल, चारों ओर से रमणीक दृश्य आदि देखकर दुर्योधन खुश हुआ। सबसे बढ़कर आनंद तो उसे इस बात से हुआ कि जलाशय के पास ठहरे हुए पांडवों के हाल-चाल भी देखे जा सकेंगे। दुर्योधन ने अपने लोगों को आज्ञा दी कि डेरे अब तालाब के किनारे लगा दिये जायं।

◆

दैवयोग से उसी समय गन्धर्वराज चित्रसेन भी अपने परिवार के साथ उसी जलाशय के तट पर डेरा डाले हुए था। दुर्योधन के कर्मचारी डेरा लगवाने वहां गये तो गन्धर्वराज के अनुचरों ने उन्हें वहां डेरा डालने से मना किया।

अनुचरों ने लौटकर दुर्योधन को इसकी खबर दी कि कोई विदेशी नरेश अपने परिवार के साथ सरोवर के तटपर ठहरे हुए हैं और उनके नौकर हमें वहां ठहरने नहीं दे रहे हैं। यह सुनते ही दुर्योधन गुस्से से आग-बबूला हो उठा। वह बोला—"किस राजा की मजाल है जो मेरी आज्ञा को पूरा न होने दे? जाओ, अपना काम पूरा करके आओ और कोई रोके तो उसकी और उसके परिवार की खूब खबर लो।"

आज्ञा पाकर दुर्योधन के अनुचर फिर जलाशय के पास गये और किनारे पर तंबू गाड़ने लगे। गन्धर्वराज के नौकर इसपर बहुत बिगड़े और दुर्योधन के अनुचरों की खूब खबर ली। वे कुछ न कर सके और प्राण लेकर भाग खड़े हुए।

दुर्योधन को जब इस बात का पता चला तो उसके क्रोध की सीमा न रही। अपनी सेना लेकर तालाब की ओर बढ़ा।

यहां पहुंचना था कि गन्धर्वों और कौरवों की सेनाएं आपस में भिड़

गईं। घोर संग्राम छिड़ गया। पहले गन्धर्वों ने खुले तौर से आमने-सामने का युद्ध किया जिसमें उनको हार खानी पड़ी। यह देखकर गन्धर्वराज क्रुद्ध हो उठा और माया-युद्ध शुरू कर दिया। ऐसे-ऐसे मायास्त्र उसने कौरव -सेना पर बरसाये कि कौरवों की सेना उनके आगे ठहर न सकी। यहां तक कि कर्ण-जैसे महारथियों के भी रथ और अस्त्र चूर-चूर हो गये और वे उलटे पांव भाग खड़े हुए। अकेला दुर्योधन लड़ाई के मैदान में अन्त तक डटा रहा। गन्धर्वराज चित्रसेन ने उसे पकड़ लिया और रस्सी से बांधकर अपने रथ पर बिठा लिया और शंख बजाकर विजय-घोष किया। इस तरह कौरवों के पक्ष के सब प्रधान वीरों को गन्धर्वों ने कैद कर लिया। कौरवों की सेना तितर-बितर हो गई, कितने ही सैनिक खेत रहे। बचे-खुचे सनिकों में से कुछ ने पांडवों के आश्रम में जाकर दुहाई मचाई और रक्षा की प्रार्थना की।

●

दुर्योधन और उसके साथियों को इस प्रकार अपमानित होते सुनकर भीम बड़ा खुश हुआ। युधिष्ठिर से बोला-- "भाई साहब, गन्धर्वों ने तो वही कर दिया जो हमें करना चाहिये था। दुर्योधन हमारा मजाक उड़ाने के ही लिए यहां आया था। सो उसे ठीक सजा मिली। गन्धर्वराज का हमें आभार मानना चाहिए जो उन्होंने हमारी जिम्मेदारी स्वयं पूरी कर दी।"

युधिष्ठिर ने गंभीर स्वर में कहा--"भैया! तुम्हारा इस तरह आनंद मनाना ठीक नहीं। ये हमारे ही कुटुम्ब के हैं जिनको गन्धर्वराज ने कैद कर रक्खा है। यह देखते हुए भी हम हाथ-पर-हाथ धरकर बैठे रहें, यह हमारे लिए उचित नहीं। अच्छा यही है कि तुम अभी चले जाओ और किसी तरह अपने बन्धुओं को गन्धर्वों से छुड़ा लाओ।"

युधिष्ठिर की बात सुनकर भीमसेन झल्ला उठा। बोला-- "आप भी कैसे अजीब हैं जो ऐसी आज्ञा दे रहे हैं। जिस पापी ने हमें लाख के घर में ठहराकर आग की भेंट चढ़ाने का कुचक्र रचा, भला बताइये तो, उसे

मैं क्यों छुड़ा लाऊं ? क्या आप यह भूल गये कि इसी दुरात्मा दुर्योधन ने मुझे विष मिला अन्न खिलाया था और गंगा में डुबोकर मार डालने का प्रयत्न किया था ? ऐसे पापात्मा पर आप कैसे दया करते हैं ? जिन्होंने प्यारी द्रौपदी को भरी सभा में खींच लाकर अपमानित किया, आप कैसे कहते हैं कि उन्हीं नीचों को हम अपना भाई मानें ?"

भीम ये बातें कर ही रहा था कि इतने में बन्दी दुर्योधन और उसके साथियों का आर्त्तनाद सुनाई दिया। सुनकर युधिष्ठिर बड़े विचलित होकर बोले-- "भीमसेन की बात ठीक नहीं है। भाइयो! अभी जाकर कौरवों को छुड़ा लाना चाहिए।"

युधिष्ठिर के आग्रह करने पर भीम और अर्जुन ने कौरवों की बिखरी सेना को फिर से इकट्ठा किया और जाकर गन्धर्व-सेना पर टूट पड़े।

पांडवों को देखते ही गन्धर्वराज चित्रसेन का क्रोध शांत हो गया। उसने कहा-- "मैंने तो दुरात्मा कौरवों को शिक्षा देने के लिए ही यह सब किया था। यदि आप चाहते हैं तो इनको मैं अभी मुक्त किये देता हूं।" यह कह कर चित्रसेन ने कौरवों को बन्धन-मुक्त कर दिया और साथ ही उन्हें यह भी आदेश दिया कि वे इसी घड़ी हस्तिनापुर लौट जायें। अपमानित कौरव फौरन हस्तिनापुर की ओर भाग खड़े हुए। कर्ण, जो लड़ाई में भाग खड़ा हुआ था, रास्ते में दुर्योधन से मिला।

दुर्योधन ने क्षुब्ध होकर कहा-- "कर्ण! अच्छा होता यदि मैं चित्रसेन के हाथों ही वहां मारा गया होता।"

कर्ण ने उसे बहुत समझाया, फिर भी दुर्योधन का क्षुब्ध हृदय जरा भी शांत न हो सका। बोला-- "दुःशासन! अब मेरा जीना बेकार है। मैं यहीं अनशन करके प्राण-त्याग कर दूंगा। तुम्हीं जाकर राज-काज संभाल लेना। शत्रुओं के सामने मेरा घोर अपमान हो चुका है। इसके बाद मेरा जीना बिलकुल बेकार है।"

दुर्योधन को बहुत ग्लानि अनुभव होने लगी। यह देख दुःशासन

की आंखें भर आईं। रोते-रोते दुर्योधन के पांव पकड़कर रुद्ध-कण्ठ से आग्रह करने लगा कि आप ऐसा न करें। भाइयों का यह करुण विलाप कर्ण से न देखा गया।

बोला--"कुरुवंश के सुपुत्रो! यह तुम्हें शोभा नहीं देता कि इस प्रकार दीनों की भांति विलाप करो। शोक करने से तुम्हारा क्या भला होगा? रोने-कलपने से भी कहीं कुछ काम बना है? धीरज धरो। तुम्हारे शोक करने से तुम्हारे शत्रु पांडवों को ही आनन्द होगा। दूसरा और कुछ फायदा नहीं होगा। पांडवों को ही देखो। कितने भारी अपमान उन्हें सहने पड़े थे। फिर भी उन्होंने कभी अनशन का नाम तक न लिया!"

कर्ण की बातों का समर्थन करते हुए शकुनि बोला--

"दुर्योधन! कर्ण की बात मानो। तुम्हें भी हमेशा उलटा ही सूझा करता है। प्राण छोड़ने की क्या बात करने लगे! जब राज्य के उपभोग करने का समय है तो तुमको उपवास करने की सूझती है! तुम्हारे सिवा और कौन इस विशाल राज्य का शासक हो सकता है एवं उपभोग कर सकता है? चलो, उठो। अभी तो हस्तिनापुर चलो। अगर तुम्हें अपने किये पर पछतावा हो रहा है तो फिर चलकर पांडवों से मित्रता कर लेते हैं और उनका राज्य उन्हें वापस देकर फिर सुखपूर्वक दिन बितावेंगे।"

शकुनि की बात सुनते ही दुर्योधन मानों स्वप्न से जाग पड़ा। वह चौंक उठा। उसकी बुद्धि पर जो थोड़ा-सा प्रकाश पड़ा था वह फिर लुप्त हो गया और फिर से अन्धेरा छा गया। एकदम चिल्ला उठा--"ऐसे कैसे पांडवों से संधि की जा सकती है। उनपर तो विजय ही पाना पड़ेगा। और मैं वह पाकर ही रहूंगा।"

दुर्योधन के ये आशाजनक वचन सुनकर कर्ण ने उसकी खूब सराहना की और बोला--"धन्य हो दुर्योधन! आखिर मरने से फायदा क्या हो सकता है? जीवित रहने से तो बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है।"

वे सब हस्तिनापुर की ओर चल पड़े। रास्ते में कर्ण ने दुर्योधन को विश्वास दिलाने की खातिर कहा कि "मैं अपने खड्ग

की सौगन्द खाकर कहता हूं कि तेरह बरस बाद लड़ाई में अर्जुन का जरूर वध करूँगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है।" इससे दुर्योधन को बड़ी सांत्वना मिली और उसकी ग्लानि कम होने लगी।

: ४१ :

कृष्णा की भूख

पांडवों के बनवास के समय दुर्योधन ने एक भारी यज्ञ किया था। दुर्योधन की तो इच्छा राजसूय-यज्ञ करने की थी; किंतु पण्डित ब्राह्मणों ने कहा कि धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर के रहते उसे राजसूय-यज्ञ करने का अधिकार नहीं। तो ब्राह्मणों की सलाह मानकर दुर्योधन ने वैष्णव नामक यज्ञ करके ही संतोष माना।

यज्ञ के समाप्त होने पर उसके बारे में नगर के लोगों की यह राय हुई कि युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ की तुलना में दुर्योधन का वैष्णव-यज्ञ सोलहवां हिस्सा भी नहीं था; किंतु दुर्योधन के मित्रों ने तो उसकी प्रशंसा के पुल बांध दिये। वे कहने लगे कि मांधाता, ययाति, भरत जैसे यशस्वी महाराजाओं ने जो भारी यज्ञ किये थे, दुर्योधन का वैष्णव-यज्ञ उनकी बराबरी करने योग्य है। इस प्रशंसा को सुनकर दुर्योधन गर्व और आनन्द से फूल उठा। राजभवन का आश्रय लेकर जीविका चलाने वाले चापलूस लोगों ने दुर्योधन के यज्ञ की महिमा खूब बढ़ा-चढ़ाकर इधर-उधर कही, उसपर खील बरसाईं और चन्दन छिड़का। इस अवसर पर महाबली कर्ण उठा और भरी सभा में दुर्योधन को संबोधन करके बोला—

"राजन्! आप इस बात का सोच न कीजिए कि राजसूय-यज्ञ न कर सके। शीघ्र ही पांचों पांडव युद्ध में हारकर हमारे हाथों मारे जाएंगे और तब आप राजसूय-यज्ञ भी कर सकेंगे। मैं शपथ खाकर कहता हूं

कि जबतक युद्ध में अर्जुन का वध न कर दूं तब तक न तो पानी से अपने पांव धोऊंगा, न मांस खाऊंगा, न मदिरा पियूंगा और न किसी मांगने वाले को 'नाहीं' कहूंगा। यह मेरा प्रण है।"

कर्ण की इस प्रतिज्ञा पर धृतराष्ट्र के पुत्रों ने बड़ा शोर मचाकर अपने आनन्द का प्रदर्शन किया। कर्ण की शपथमात्र से ही उनको यह विश्वास हो गया कि बस अब पांडवों का काम ही तमाम हो चुका है।

●

यज्ञशाला में कर्ण ने अर्जुन को मारने की जो प्रतिज्ञा की उसकी खबर जासूसों द्वारा युधिष्ठिर को मिली। इससे युधिष्ठिर बड़े व्याकुल हो गये। बड़ी देर तक पृथ्वी पर टकटकी-सी बांधे देखते रह गये। कर्ण दैवी कवच-कुण्डलों के साथ पैदा हुआ है। उसका पराक्रम भी अद्भुत है और अब वह ऐसी प्रतिज्ञा कर चुका है, यह सब समय का फेर ही तो है। इससे मालूम होता है कि समय हमारे अनुकूल नहीं है। यह सोचते-सोचते युधिष्ठिर बड़े चिन्तित हो गये।

एक दिन बड़े सवेरे युधिष्ठिर ने नींद खुलने के जरा देर पहले एक सपना देखा। अक्सर सपने या तो नींद के शुरू में आते हैं या नींद खुलने से थोड़ी देर पहले। युधिष्ठिर ने सपने में देखा---द्वैतबन के हिंस्र जन्तुओं का एक झुण्ड आकर उनके आगे पुकार मचा रहा है और आर्त्त-स्वर में कह रहा है कि "महाराज! आप लोगों ने शिकार खेल-खेलकर हम सबों का करीब-करीब अन्त ही कर डाला है। इससे पहले कि हमारा सर्वनाश ही हो जाय, आपसे हमारी प्रार्थना है कि आप और किसी जंगल में चले जाइये। हमारी संख्या बहुत घट चुकी है। थोड़ेसे जो जीवित बचे हैं, उन्हींके द्वारा वंश की वृद्धि होनी है। हमारी नस्ल का बढ़ना-न-बढ़ना आपकी ही कृपा पर निर्भर है। आपका कल्याण हो! आप हमपर दया करें।" कहते-कहते जानवरों की आंखों में आंसू उमड़ आये। यह देख-

कर युधिष्ठिर का जी भर आया। चौंककर उठ बैठे तो पता चला कि यह तो सपना था; परन्तु फिर भी युधिष्ठिर बड़े बेचैन हो उठे। इस सपने से उन्हें बड़ी व्यथा पहुंची। भाइयों से सपने का हाल कहा और सबसे सलाह करके वे किसी दूसरे बन में चले गये।

एक बार महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्यों को साथ लेकर दुर्योधन के राजभवन में पधारे। वैसे दुर्योधन को महर्षियों के प्रति अधिक श्रद्धा न थी; किंतु दुर्वासा कहीं शाप न दे बैठें, इस डर से खुद उनका बड़ी नम्रता के साथ स्वागत किया और बड़े यत्न से उनका सत्कार किया। दुर्योधन के सत्कार से ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और कहा—"वत्स, कोई वर चाहो तो मांग लो।"

दुर्वासा अपने क्रोध के लिए बड़े विख्यात थे। ऐसे क्रोधी ऋषि को संतुष्ट करने से दुर्योधन को ऐसा आनन्द हुआ मानों मृत्यु के मुंह से निकल आया हो। सोचा, कौन-सा वर मांगूं? बहुत दिमाग लड़ाने पर भी उसकी बुद्धि में औरों की बुराई के सिवा और कुछ न सूझा। बोला—"मुनिवर! प्रार्थना यही है कि जैसे आपने शिष्यों-समेत अतिथि बनकर मुझे अनुगृहीत किया, वैसे ही बन में मेरे भाई पांडवों के यहां भी जाकर उनका सत्कार स्वीकार करें। राजाधिराज युधिष्ठिर हमारे कुल के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। आप उनके पास जाइए और उनके अतिथि बनने की कृपा कीजिये। और फिर एक छोटी-सी बात मेरे लिए और करने की कृपा करें। वह यह कि आप अपने शिष्यों-समेत ठीक ऐसे समय युधिष्ठिर के आश्रम में जायें जब राजकुमारी द्रौपदी पांडवों एवं उनके परिवार को भोजन करा चुकी हो और जब सभी लोग आराम से बैठे विश्राम कर रहे हों। बस, यही मेरी प्रार्थना है। इससे मुझपर बड़ा अनुग्रह होगा।"

लोगों को कठिनाइयों की कसौटी में कसकर परख लेने का महर्षि दुर्वासा को बड़ा चाव था। इसलिए उन्होंने दुर्योधन की प्रार्थना तुरन्त मान ली।

दुर्वासा से ऐसी अजीब प्रार्थना करने का दुर्योधन का उद्देश्य यही था कि क्रोधी ऋषि पांडवों के पास ऐसे समय पर जायं जब ऋषि का समुचित सत्कार करना पाण्डवों से न हो सके और ऋषि क्रोध में आकर उन्हें शाप दे दें। दुर्योधन चाहता तो ऋषि से कोई ऐसा वर मांग सकता था जिससे उसकी भलाई होती। पर उसने तो अपने शत्रुओं को हानि पहुंचाना ही श्रेयस्कर समझा। दुरात्माओं का स्वभाव ऐसा ही होता है!

दुर्योधन की प्रार्थना मानकर दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यों के साथ युधिष्ठिर के आश्रम में जा पहुंचे। युधिष्ठिर ने भाइयों-समेत ऋषि की आवभगत की और दण्डवत करके विधिवत् उनका सत्कार किया। कुछ देर बाद मुनि ने कहा—"अच्छा! अभी स्नान करके आते हैं। तब तक भोजन तैयार करके रखना।" कह कर दुर्वासा शिष्यों-सहित नदी पर स्नान करने चले गये।

●

बनवास के प्रारम्भ में युधिष्ठिर की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने उन्हें एक अक्षयपात्र प्रदान किया था और कहा था कि ठीक बारह बरस तक इसके द्वारा मैं तुम्हें भोजन दिया करूंगा। इसकी विशेषता यह है कि द्रौपदी हर रोज चाहे जितने लोगों को इस पात्र में से भोजन खिला सकेगी; परन्तु सबके भोजन कर लेने पर जब द्रौपदी स्वयं भी भोजन कर चुकेगी तब फिर इस बरतन की यह शक्ति अगले दिन तक के लिए लुप्त हो जायगी।

इस कारण पांडवों के आश्रम में सबसे पहले ब्राह्मणों और अतिथियों को भोजन दिया जाता था। फिर सब भाइयों के भोजन कर लेने के बाद युधिष्ठिर भोजन करते। जब सभी लोग भोजन करके तृप्त हो जाते तब अंत में द्रौपदी भोजन करती और बरतन मांज-धोकर रख देती। जिस समय दुर्वासा ऋषि आये थे तबतक सभी को खिला-पिलाकर द्रौपदी भी भोजन कर चुकी थी इसलिए सूर्यदेव का अक्षयपात्र उस दिन के लिए खाली हो चुका था।

द्रौपदी बड़ी चिन्तित हो उठी कि जब मुनि अपने एक हजार शिष्यों के साथ स्नान-पूजा करके भोजन के लिए आ जायेंगे तब वह उनको क्या खिलायेगी ? उसे कुछ न सूझा। कोई सहारा न पाकर उसने परमात्मा की शरण ली। दीन भाव से वह भगवान् की प्रार्थना करने लगी—"प्रभो! शरणागतों की रक्षा करनेवाले ईश्वर! जिनका कोई सहारा न हो उनके तुम ही तो सहारे हो। दुर्वासा ऋषि के क्रोध रूपी मंझधार से तुम्हीं हमारा बेड़ा पार लगा सकते हो। मेरी लाज रखो भगवान्!"

द्रौपदी इस प्रकार प्रार्थना कर ही रही थी कि इतने में भक्तों को संकट से छुड़ाने वाले भगवान् वासुदेव कहीं से आ गये और सीधे आश्रम के रसोईघर में जाकर द्रौपदी के सामने खड़े हो गये। बोले—"बहन कृष्णा, बड़ी भूख लगी है। कुछ खाने को दो। और कुछ बाद में सोचना। पहले तो खाने को लाओ।"

द्रौपदी और भी बड़ी दुविधा में पड़ गई। बोली—"हे भगवन्! यह कैसी परीक्षा है? मैं खाना खा चुकी हूं। सूर्य के दिये हुए अक्षयपात्र की शक्ति आज के लिए समाप्त हो चुकी है। ऐसे समय पर उधर दुर्वासा ऋषि अतिथि बनकर आये हुए हैं। मैं घबरा रही थी कि क्या करूं? वे थोड़ी देर में अपने शिष्यों-समेत स्नान करके वापस ही आ रहे होंगे। और ऊपर से अब आप आ गये हैं और कहते हैं, भूख लगी है। इस विपदा से कैसे बचूं?"

कृष्ण बोले—"मैं यहां भूख से तड़प रहा हूं और तुम्हें दिल्लगी सूझ रही है। जरा लाओ तो अपना अक्षयपात्र। देखें तो कि उसमें कुछ है भी कि नहीं।"

द्रौपदी हड़बड़ा कर बरतन ले आई। उसके एक छोर पर अन्न का एक कण और साग की पत्ती लगी थी। श्रीकृष्ण ने उसे लेकर मुंह में डालते हुए मनमें कहा—"जो सारे विश्व में व्याप्त है, सारा विश्व ही जिसका रूप है, यह उस हरि का भोजन हो, इससे उसकी भूख मिट

जाय और वह प्रसन्न हो जाय ।"

द्रौपदी तो यह देख लज्जा से सिकुड़-सी गई। सोचा--कैसी हूं मैं, कि मैंने ठीक से बरतन भी न धोया। इसीलिए उसमें लगा अन्न-कण और साग वासुदेव को खाना पड़ा। धिक्कार है मुझे। इस तरह द्रौपदी अपने आपको धिक्कार ही रही थी कि इतने में श्रीकृष्ण ने बाहर जाकर भीमसेन को कहा--"भीम, जरा जल्दी जाकर ऋषि दुर्वासा को शिष्यों-समेत भोजन के लिए बुला लाओ ।"

भीमसेन बड़े वेग से नदी की ओर उस स्थान पर गया जहां दुर्वासा आदि ब्राह्मण शिष्यों-समेत स्नान कर रहे थे। नजदीक जाकर भीमसेन क्या देखता है कि दुर्वासा ऋषि का सारा शिष्य-समुदाय स्नान-पूजा करके भोजन तक से निवृत्त हो चुका है ।

शिष्य दुर्वासा से कह रहे थे--"मुनिवर ! युधिष्ठिर से हम व्यर्थ में कह आये कि भोजन तैयार करके रखें। हमारा तो पेट ऐसा भरा हुआ है कि हमसे उठा भी नहीं जाता। इस समय तो जरा भी खाने की इच्छा नहीं है।"

यह सुन दुर्वासा ने भीमसेन से कहा--"हम सब तो भोजन से निवृत्त हो चुके हैं। युधिष्ठिर से जाकर कहना कि असुविधा के लिए हमें क्षमा करें।" यह कहकर ऋषि अपने शिष्यों-सहित वहां से रवाना हो गये।

सारा विश्व भगवान् श्रीकृष्ण में ही समाया हुआ है। इसलिए उनके चावल का एक कण खाने भर से सारे ऋषियों की भूख मिट गई और वे तृप्त होकर चले गये ।

: ४२ :

जहरीला तालाब

पांडवों के बनवास की अवधि पूरी होने को ही थी । बारह बरस समाप्त होने में कुछ ही दिन रह गये थे ।

पांडवों के आश्रम के पास ही एक गरीब ब्राह्मण की झोंपड़ी थी । एक दिन एक हिरन उधर से आ निकला। झोंपड़ी के बाहर अरणी की लकड़ी टंगी थी । हिरन ने उस पर शरीर रगड़कर खुजली मिटा ली और चल पड़ा । जाते समय अरणी की लकड़ी उसके सींग ही में अटक गई ।

काठ के चौकोर टुकड़े पर मथनी-जैसी दूसरी लकड़ी से रगड़कर उन दिनों आग सुलगा लेते थे । इसीको अरणी कहते थे।

सींग में अरणी के अटक जाने से हिरन घबरा उठा और बड़ी तेजी से भागने लगा । यह देख ब्राह्मण चिल्लाने लगा और दौड़कर पांडवों के आश्रम में जाकर पुकार मचाई कि हमारी अरणी हिरन उठा ले गया है । अब मैं अग्निहोत्र के लिए अग्नि कैसे उत्पन्न करूंगा?

ब्राह्मण पर तरस खाकर पांचों भाई हिरन का पीछा करने लगे। पांडव दौड़े तो बड़े वेग से, पर वे हिरन के पास न पहुंच सके। हिरन उछलता-कूदता छलांगें मारता हुआ भागा और पांडवों को लुभाकर जंगल में बड़ी दूर तक भटका ले गया और उनके देखते-देखते अचानक आंखों से ओझल हो गया ।

पांचों भाई थक कर एक बरगद की छांह में बैठ गये। प्यास के मारे सबके मुंह सूख रहे थे।

लेकिन सबको एक ही चिन्ता थी। नकुल ने बड़े उद्विग्न भाव से युधिष्ठिर से कहा—"हमारे लिए यह कैसी लज्जा की बात है कि इस ब्राह्मण का इतना-सा भी काम हमसे न हो सका!"

नकुल को व्यथित देखकर भीमसेन बोला—"हमें तो उसी घड़ी उन पापियों का काम तमाम कर देना चाहिए था जब कि वे द्रौपदी को सभा के बीच घसीट लाये थे! लेकिन तब हम चुपचाप रहे, इसीका नतीजा है कि आज हमें ऐसे कष्ट झेलने पड़ रहे हैं।" यह कह कर भीमसेन ने अर्जुन की ओर दुःख-भरी निगाह से देखा ।

अर्जुन बोल उठा—"ठीक कहते हो भैया भीम! उस समय तो

उस सूतपुत्र की कठोर बातें सुनकर भी मैं कठपुतला-सा खड़ा रह गया था। उसीके फलस्वरूप अब हमारी यह गति हो रही है।"

युधिष्ठिर ने देखा कि थकावट और प्यास के कारण सबकी सहनशीलता ज़वाब दे रही है। उनसे कुछ कहते न बना। उनको भी असह्य प्यास सताये जा रही थी। पर उसे वे सहन करके शांति से नकुल से बोले--"भैया! जरा उस पेड़ पर चढ़ कर देखो तो सही कि कहीं कोई जलाशय नदी दिखलाई दे रही है?"

नकुल ने पेड़ पर चढ़कर देखा और उतरकर कहा कि दूरी पर कुछ ऐसे पौधे दिखाई दे रहे हैं जो पानी ही के नजदीक उगते हैं। आसपास कुछ बगुले भी बैठे हैं। वहीं कहीं आसपास पानी अवश्य होना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा कि जाकर देखो और पानी मिले तो ले आओ। यह सुन कर नकुल तुरन्त पानी लाने चल पड़ा।

कुछ दूर चलने पर अन्दाज के मुताबिक नकुल को एक जलाशय मिला। वह बड़ा प्रसन्न हुआ। सोचा, पहले तो अपनी प्यास बुझा लूं और फिर तरकस में पानी भरकर भाइयों के लिए ले जाऊंगा। यह सोचकर वह पानी में उतरा। पानी स्वच्छ था। उसने चुल्लू में पानी लिया और उसे पीना ही चाहता था कि इतने में यह आवाज आई--"माद्री के पुत्र! दुःसाहस न करो! यह जलाशय मेरे अधीन है। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। फिर पानी पियो।"

नकुल चौंक पड़ा। पर उसे प्यास इतनी तेज लगी थी कि उस वाणी की परवाह न करके चुल्लू से पानी पी लिया। पानी पीकर किनारे पर चढ़ते ही उसे कुछ चक्कर-सा आया और वह गिर पड़ा।

●

बड़ी देर तक नकुल के न लौटने पर युधिष्ठिर चिन्तित हुए और सहदेव को भेजा। सहदेव जलाशय के नजदीक पहुंचा तो नकुल को जमीन पर पड़ा देखा। उसने सोचा कि हो-न-हो, किसीने भाई को

मार डाला है। पर उसे भी प्यास इतनी तेज लगी थी कि वह ज्यादा कुछ सोच न सका। पानी पीने के लिए वह जलाशय में उतरा। वह पानी पीने को ही था कि पहले-जैसी वाणी सुनाई दी--"सहदेव! यह मेरा जलाशय है। मेरे प्रश्नों का जवाब देने के बाद ही तुम पानी पी सकते हो।"

सहदेव भी प्यास के मारे इतना व्याकुल हो रहा था कि उस वाणी की चेतावनी पर ध्यान न देते हुए पानी पी लिया और किनारे पर चढ़ते-चढ़ते अचेत होकर नकुल के पास ही गिर पड़ा।

जब सहदेव भी बहुत देर तक न लौटा तो युधिष्ठिर घबराकर अर्जुन से बोले--"अर्जुन! दोनों भाई पानी लेने गये हैं। अब तक क्यों नहीं लौटे। जाकर देखो तो उनके साथ कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई? और लौटते समय तरकस में पानी भी लेते आना।"

अर्जुन बड़ी तेजी से चला। तालाब के किनारे पर दोनों भाइयों को मृत पड़ा देखा तो चौंक पड़ा। उसे अचरज हो रहा था और दुःख भी। वह नहीं समझ पाया कि इनकी मृत्यु का कारण क्या है। यही सोचते हुए अर्जुन भी पानी पीने के लिए जलाशय में उतरा कि इतने में वही वाणी सुनाई दी--"अर्जुन! मेरे प्रश्नों का उत्तर देने के बाद ही प्यास बुझा सकते हो। यह तालाब मेरा है। मेरी बात न मानोगे तो तुम्हारी भी वही गति होगी जो तुम्हारे दो भाइयों की हुई है।"

अभिमानी अर्जुन यह सुनकर गुस्से से भर गया। धनुष तानकर ललकारा--"कौन हो तुम? सामने आकर रोको, नहीं तो यह लो। इन्हीं बाणों से तुम्हारे प्राण-पखेरू उड़ा देता हूं।" बात खत्म भी न होने पाई थी कि अर्जुन ने शब्द-भेदी बाण छोड़ने शुरू कर दिये। जिधर से आवाज सुनाई दी उसी ओर निशाना लगाकर वह तीर चलाता रहा; किन्तु उन बाणों का कोई भी असर नहीं हुआ। जरा देर में फिर से आवाज आई--"तुम्हारे बाण मुझे छू तक नहीं सकते। मैं फिर से कहे देता हूं, मेरे प्रश्नों का पहले उत्तर दो और फिर पानी पियो, नहीं

तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है।"

अपने बाणों को बेकार हुए देखकर अर्जुन के क्रोध की सीमा न रही। उसने सोचा कि यहां तो बड़ी जबरदस्त लड़ाई लड़नी होगी। इससे पहले अपनी प्यास तो बुझा ही लूं। फिर लड़ लिया जायगा। यह सोचकर अर्जुन ने जलाशय में उतर कर पानी पी लिया और किनारे आते-आते चारों खाने चित्त होकर गिर पड़ा।

उधर तीनों भाइयों की बाट जोहते-जोहते युधिष्ठिर बड़े व्याकुल हो उठे। भीमसेन से चिन्तित स्वर में बोले—"भैया भीमसेन! न जाने अर्जुन भी क्यों नहीं लौटा! जरा तुम्हीं जाकर देखो कि तीनों भाइयों को क्या हो गया है। लौटती बार पानी भी भर लाना। प्यास सही नहीं जा रही है। समय का रुख भी हमारे विपरीत ही मालूम होता है। जरा होशियारी से जाना, भाई! तुम्हारा भला हो।"

युधिष्ठिर की आज्ञा मानकर भीमसेन तेजी से जलाशय की ओर बढ़ा। तालाब के किनारे पर देखा कि तीनों भाई मरे-से पड़े हैं। देख कर भीमसेन का कलेजा टूक-टूक होने लगा। सोचा, यह किसी यक्ष की करतूत मालूम होती है। जरा पानी पी लेने के बाद देखता हूं कि कौन ऐसा बली है जो मेरे रास्ते में आवे।

यह सोचकर भीमसेन तालाब में उतरना ही चाहता था कि आवाज आई—"भीमसेन! मेरे प्रश्नों का उत्तर दिये बिना पानी पीने का साहस न करो। यदि मेरी बात न मानोगे तो तुम्हारी भी अपने भाइयों जैसी गति होगी।"

"मुझे रोकने वाला तू कौन होता है?" कहता हुआ भीमसेन बेधड़क तालाब में उतर गया और पानी पी लिया। पानी पीते ही और भाइयों की तरह वह भी वहीं ढेर होगया।

उधर युधिष्ठिर अकेले बैठे-बैठे घबराने लगे। बड़े ताज्जुब की बात है कि कोई भी अबतक नहीं लौटा! कभी ऐसी बात हुई नहीं! आखिर भाइयों को हो क्या गया? क्या कारण है कि अभी तक लौटे

नहीं? कहीं किसीने उन्हें शाप तो नहीं दे दिया? या जल की खोज में जंगल में इधर-उधर भटक तो नहीं गये? मैं ही चलकर देखूं कि बात क्या है?

मन-ही-मन यह निश्चय करके युधिष्ठिर भाइयों को खोजते हुए जलाशय की ओर चल पड़े।

: ४३ :

यक्ष-प्रश्न

निर्जन बन था। आदमियों का कहीं नाम-निशान न था। हिरन, सुअर आदि जानवर इधर-उधर घूम रहे थे। ऐसे बन में से होते हुए युधिष्ठिर उसी विषैले तालाब के पास जा पहुंचे जिसका जल पीकर उनके चारों भाई मृत-से पड़े थे। चारों ओर हरी-हरी घास बड़ी मनोरम थी। उस हरित-शय्या पर चारों भाई ऐसे पड़े थे जैसे उत्सव के समाप्त होने पर इन्द्र-ध्वजाएं। यह देख युधिष्ठिर चौंक पड़े। उनके आश्चर्य और शोक की सीमा न रही। असह्य शोक के कारण उनकी आंखों से आंसू बह निकले।

राजाधिराज युधिष्ठिर भीम और अर्जुन के शरीरों से लिपट गये और बिलख उठे—"भैया भीम! तुमने कैसी-कैसी प्रतिज्ञाएं की थीं? क्या वे सब अब निष्फल हो जायंगी? बनवास के समाप्त होते-होते क्या तुम्हारा जीवन भी समाप्त हो गया? देवताओं की भी बातें आखिर झूठी ही निकलीं!"

सब भाइयों की ओर देख वे बच्चों की तरह रो पड़े। वे बार-बार यह सोच-सोचकर विलाप कर उठते कि ऐसा कौन-सा शत्रु हो सकता है जिसमें इन चारों के प्राण लेने की सामर्थ्य थी?

फिर अपनेआपको उलाहना देते हुए कहने लगे—"मेरा

कलेजा भी कैसा पत्थर का है जो नकुल और सहदेव को इस भांति मरे पड़े देखकर टूक-टूक नहीं हो जाता! अब इस संसार में मुझे क्या करना है जो मैं जीता रहूं?"

कुछ देर यों विलाप करने के बाद युधिष्ठिर ने बड़े ध्यान से भाइयों के शरीरों को देखा और अपनेआप से कहने लगे—"यह तो कोई माया-जाल-सा लगता है। इनके शरीरों पर कहीं कुछ घाव नहीं दिखाई देता! चेहरों पर भी कोई परिवर्तन नहीं आया है। ऐसे दीखते हैं जैसे सोये पड़े हों। आसपास जमीन पर किसी शत्रु के पांव के निशान भी तो नहीं नजर आते। हो सकता है, यह भी दुर्योधन का ही कोई षड्यन्त्र हो। संभव है, पानी में विष मिला हो।"

ऐसा सोचते-सोचते युधिष्ठिर भी प्यास से प्रेरित होकर तालाब में उतरने लगे। इतने में वही वाणी सुनाई दी—"सावधान! तुम्हारे भाइयों ने मेरी बात की परवाह न करके पानी पिया था। तुम भी वही भूल न करना। यह तालाब मेरे अधीन है। मेरे प्रश्नों के उत्तर दो और फिर तालाब में उतरकर प्यास बुझाओ।"

युधिष्ठिर ने ताड़ लिया कि कोई यक्ष बोल रहा है। उन्होंने बात मान ली और बोले—"आप प्रश्न कर सकते हैं।"

यक्ष ने प्रश्न किया—सूर्य किसकी प्रेरणा (आज्ञा) से प्रति दिन उगता है?

उ०—ब्रह्म (परमात्मा) की।

प्र०—मनुष्य का कौन सदा साथ देता है?

उ०—धैर्य ही मनुष्य का साथी होता है।

प्र०—कौन-सा ऐसा शास्त्र (विद्या) है जिसका अध्ययन करके मनुष्य बुद्धिमान् बनता है?

उ०—कोई भी ऐसा शास्त्र नहीं। महान् लोगों की संगति से ही मनुष्य बुद्धिमान् बनता है।

प्र०—भूमि से भारी चीज क्या है?

उ०—सन्तान को कोख में धरने वाली माता भूमि से भी भारी होती है।

प्र०—आकाश से भी ऊंचा कौन है ?

उ०—पिता।

प्र०—हवा से भी तेज चलने वाला कौन है ?

उ०—मन।

प्र०—घास से भी तुच्छ कौन-सी चीज होती है ?

उ०—चिन्ता।

प्र०—विदेश जाने वाले का कौन मित्र होता है ?

उ०—विद्या।

प्र०—घर ही में रहने वाले का कौन साथी होता है ?

उ०—पत्नी।

प्र०—मरणासन्न वृद्ध का मित्र कौन होता है ?

उ०—दान; क्योंकि वही मृत्यु के बाद अकेले चलने वाले जीव के साथ-साथ चलता है।

प्र०—बरतनों में सबसे बड़ा कौन-सा है ?

उ०—भूमि ही सबसे बड़ा बरतन है जिसमें सब कुछ समा सकता है।

प्र०—सुख क्या है ?

उ०—सुख वह चीज है जो शील और सच्चरित्रता पर स्थित है।

प्र०—किसके छूट जाने पर मनुष्य सर्व-प्रिय बनता है ?

उ०—अहंभाव से उत्पन्न गर्व के छूट जाने पर।

प्र०—किस चीज के खो जाने से दुःख नहीं होता ?

उ०—क्रोध के खो जाने से।

प्र०—किस चीज को गंवाकर मनुष्य धनी बनता है ?

उ०—लालच को।

प्र०—युधिष्ठिर! निश्चित रूप से बताओ कि किसीका ब्राह्मण होना किस बात पर निर्भर होता है ? उसके जन्म पर, विद्या पर या शील

स्वभाव पर ?

उ०—कुल या विद्या के कारण ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं हो जाता। ब्राह्मणत्व तो शील-स्वभाव ही पर निर्भर होता है। जिसमें शील न हो वह ब्राह्मण नहीं हो सकता। जिसमें बुरे व्यसन हों वह चाहे कितना ही पढ़ा-लिखा क्यों न हो, ब्राह्मण कहला नहीं सकता। चारों वेदों को पार करके भी कोई चरित्र-भ्रष्ट हो तो उसे नीच ही समझना चाहिए।

प्र०—संसार में सबसे बड़े आश्चर्य की बात क्या है ?

उ०—हर रोज आंखों के सामने कितने ही प्राणियों को मृत्यु के मुंह में जाते देखकर भी बचे हुए प्राणी जो यह चाहते हैं कि हम अमर रहें, यही महान् आश्चर्य की बात है।

इसी प्रकार यक्ष ने कई प्रश्न किये और युधिष्ठिर ने उन सबके ठीक-ठीक उत्तर दे दिये।

अंत में यक्ष बोला—"राजन्! मैं तुम्हारे मृत भाइयों में से एक को जिला सकता हूं। तुम जिस किसीको भी जिलाना चाहो वह जीवित हो जायगा।"

युधिष्ठिर ने पल भर सोचा कि किसे जिलाऊं ? और जरा देर रुककर बोले—"जिसका रंग सांवला है, आंखें कमल-सी, छाती विशाल और बांहें लंबी-लंबी हैं और जो तमाल के पेड़-सा गिरा पड़ा है, वही नकुल जी उठे।"

युधिष्ठिर के इस प्रकार बोलते ही यक्ष ने उनके सामने प्रकट होकर पूछा—"युधिष्ठिर! दस हजार हाथियों के बल वाले भीमसेन को छोड़कर नकुल को तुमने क्यों जिलाना ठीक समझा ? मैंने तो सुना था कि तुम भीम को ही ज्यादा स्नेह करते हो। और नहीं तो कम-से-कम अर्जुन को तो जिला लेते जिसकी रणकुशलता ही तुम्हारी रक्षा करती रही है। तब क्या कारण है कि इन दोनों भाइयों को छोड़कर नकुल को तुम जिलाना चाहते हो ?"

युधिष्ठिर ने कहा—"यक्ष! मनुष्य की रक्षा न तो भीम से होती

है, न अर्जुन से। धर्म ही मनुष्य की रक्षा करता है और विमुख होने पर धर्म ही से मनुष्य का नाश भी होता है। मैंने जो नकुल को जिलाना चाहा वह सिर्फ इसी कारण कि मेरे पिता की दो पत्नियों में से—कुन्ती का एक पुत्र मैं तो बचा हुआ हूं, मैं चाहता हूं कि माद्री का भी एक पुत्र जी उठे, जिससे हिसाब बराबर हो जाय। अतः आप कृपाकर नकुल को जिला दें।"

"पक्षपात से रहित मेरे प्यारे पुत्र! तुम्हारे चारों ही भाई जी उठें।" यक्ष ने वर दिया।

यह यक्ष और कोई नहीं स्वयं धर्मदेवता थे। उन्होंने ही हिरन का रूप रखकर पाण्डवों को भुलाया था। उनकी इच्छा हुई कि अपने पुत्र युधिष्ठिर को देखकर अपनी आंखें तो तृप्त कर लें और उसके गुणों और योग्यता की परीक्षा भी ले लें।

उन्होंने युधिष्ठिर के सद्गुणों से मुग्ध होकर उन्हें छाती से लगा लिया और आशीर्वाद देते हुए कहा—

"बारह बरस के बनवास की अवधि पूरी होने में अभी थोड़े ही दिन बाकी रह गये हैं। बारह मास जो तुम्हें अज्ञातवास करना है वह भी सफलता से पूरा हो जायगा। तुम्हें और तुम्हारे भाइयों को कोई भी नहीं पहचान सकेगा। तुम अपनी प्रतिज्ञा सफलता के साथ पूरी करोगे।" इतना कहकर धर्मदेवता अन्तर्द्धान हो गये।

●

बनवास की भारी मुसीबतें पाण्डवों ने धीरज के साथ झेल लीं। अर्जुन अपने पिता इन्द्र देवता से दिव्यास्त्र प्राप्त करके वापस आगया। भीमसेन ने भी सुगंधित फूलों वाले सरोवर के पास भाई हनुमान से भेंट करली थी और उनकी छाती से लगकर दस गुना अधिक ताकतवर हो गया था।

जहरीले तालाब के पास युधिष्ठिर ने स्वयं अपने पिता धर्म देवता के दर्शन किये और उनसे गले लगने का सौभाग्य प्राप्त कर लिया। पिता

के समान ही पुत्र भी धर्मात्मा हुए।

जो यह पवित्र कथा सुनेगा उसका मन कभी अधर्म पर उतारू नहीं होगा, न मित्रों में फूट डालने या दूसरों का धन हरने पर ही उद्यत होगा। इस कथा को सुनने वाले लोग पराई स्त्री या पुरुष की चाह नहीं करेंगे। न तुच्छ वस्तुओं की रक्षा ही करेंगे।

: ४४ :

अनुचर का काम

बनवास की अवधि पूरी होने पर युधिष्ठिर अपने आश्रम के साथी ब्राह्मणों से दुःख के साथ बोले––

"ब्राह्मण देवताओ! धृतराष्ट्र के पुत्रों के जाल में फंसकर यद्यपि हम राज्य से वंचित हो चुके थे और हमारी हालत दीन-दरिद्रों की-सी हो चुकी थी फिर भी आप लोगों के सत्संग से इतने दिन बन में आनन्द-पूर्वक बीते! अब तेरहवां बरस शुरू होने को है। प्रतिज्ञा के अनुसार हमें कहीं एक बरस तक छिपकर रहना होगा कि जिससे दुर्योधन के गुप्तचर हमारा पता न लगा सकें। इस कारण आपसे हमें बिछुड़ना पड़ रहा है। भगवान् जाने हम कब अपना राज्य फिर प्राप्त करेंगे और शत्रुओं के भय से मुक्त होकर आप लोगों के सत्संग में दिन बितायेंगे। आपसे प्रार्थना है कि हमें आशीष देकर विदा करें। हमें ऐसे लोगों से बचकर रहना होगा जो धृतराष्ट्र के पुत्रों के भय से या उनके प्रलोभन में आकर हमारा पता बता सकें।"

इतने दिनों बन में साथ रहने वाले ब्राह्मणों से ये बातें कहते हुए युधिष्ठिर का दिल भर आया। पुरोहित धौम्य युधिष्ठिर को सांत्वना देते हुए बोले–– "वत्स, इतने बड़े शास्त्रज्ञ होकर इस तरह दिल छोटा करना तुम्हें शोभा नहीं देता। धीरज धरो और आगे जो

कुछ करना है उस पर ध्यान दो। विपत्ति तो सब पर पड़ती है। तुम जानते ही हो कि पुराने जमाने में स्वयं देवराज इन्द्र को दैत्यों की प्रवंचना में पड़ कर राज्यच्युत होना पड़ा था और निषद् देश में ब्राह्मण का भेष बनाकर वे रहे थे। किन्तु देवराज छिपे-ही-छिपे ऐसे उपाय भी करते रहे जिससे वे आगे जाकर शत्रुओं की शक्ति तोड़ने में सफल हुए। तुम्हें भी ऐसा ही कुछ करना होगा। संसार की रक्षा के लिए स्वयं भगवान् विष्णु को अदिति के गर्भ में रहना और साधारण मनुष्यों की तरह जन्म लेना पड़ा था। अपना उद्देश्य साधने के लिए उन्होंने वे सब कष्ट झेले और अंत में सम्राट् महाबली से राज्य छीनकर मनुष्यमात्र की रक्षा की। भगवान् नारायण को भी वृत्रासुर के वध के लिए इन्द्र के वज्र में प्रवेश करके छिपना पड़ा था। इसी प्रकार देवताओं का काम बनाने के लिए अग्नि को जल में छिपकर रहना पड़ा था। रोज हम देखते हैं कि भगवान् सूर्य भी तो प्रतिदिन पृथ्वी के उदर में मानों विलीन हो जाते हैं और फिर निकलते हैं! भगवान् विष्णु ने महाबली रावण का वध करने की खातिर महाराज दशरथ के यहां मनुष्य-योनि में जन्म लेकर बरषों तक कितने ही भारी कष्ट उठाये थे। इसीतरह कितने ही महान् लोगों को छिपकर रहना पड़ा है और उन्होंने अन्त में अपना उद्देश्य प्राप्त किया है। उन्हींकी भांति कार्य करने ही पर तुम विजय प्राप्त करोगे और भाग्यवान बनोगे। किसी तरह की चिन्ता न करो।"

युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों की अनुमति लेकर उन्हें और अपने परिवार के और लोगों से कहा कि वे नगर को लौट जायं। युधिष्ठिर की बात मानकर सब लोग नगर लौट आये और यह खबर उड़ा दी कि पाण्डव हम लोगों को आधी रात में सोता छोड़कर न जाने कहां चले गए। यह सुन लोगों को बड़ा दुःख हुआ।

इधर पाण्डव बन के एक एकान्त स्थान में बैठकर आगे की बातों पर सोच-विचार करने लगे। युधिष्ठिर ने अर्जुन से पूछा—"अर्जुन!

तुम लौकिक व्यवहार अच्छी तरह जानते हो। बताओ कि यह तेरहवां बरस किस देश में और किस तरह बिताया जाय ?"

अर्जुन ने जवाब दिया—"महाराज ! स्वयं धर्मदेव ने इसके लिए आपको वरदान दिया है। सो इसमें सन्देह नहीं कि हम बारह महीने बड़ी सुगमता के साथ इस प्रकार बिता सकेंगे कि जिसमें किसीको हमारा सही परिचय प्राप्त न हो सके। अच्छा यही होगा कि हम सब एक साथ ही रहें। कौरवों के देश के आसपास पांचाल, मत्स्य, शाल्व, वैदेह बाल्हिक, दशार्ण, शूरसेन, मगध आदि कितने ही मनोरंजक देश हैं। इनमें से आप जिसे पसन्द करें वहीं जाकर रह जायंगे। यदि मुझसे पूछा जाय तो मैं कहूंगा कि मत्स्य के देश में जाकर रहना ठीक होगा। इस देश के अधीश राजा विराट हैं। विराट का नगर बहुत ही सुन्दर और समृद्ध है। मेरी तो ऐसी ही राय होती है। आगे आप जो उचित समझें।"

युधिष्ठिर ने कहा—"मत्स्याधिपति राजा विराट को तो मैं भी जानता हूं। वे बड़े शक्ति-संपन्न हैं। हमें बहुत चाहते भी हैं। धर्म पर चलने वाले और वयोवृद्ध हैं। दुर्योधन की बातों में भी वे आने वाले नहीं हैं। अतः मैं भी यही उचित समझता हूं कि राजा विराट के यहां छिपकर रहा जाय।"

"यह तो तय हुआ— लेकिन यह भी तो निश्चय होना है कि हम विराट के यहां रहकर कौनसा काम करेंगे ?"—अर्जुन ने पूछा और यह पूछते हुए वह शोक से आतुर हो उठा। यह सोचकर उसका जी भर आया कि जिन महात्मा युधिष्ठिर को कपट छू तक न गया था, जिन्होंने राजसूय-महायज्ञ करके सुयश एवं राजाधिराज की पदवी पाई थी, उन्हींको छद्मवेष में रहकर एक दूसरे राजा के यहां नौकरी करनी पड़ेगी।

अर्जुन का प्रश्न सुनकर युधिष्ठिर कहने लगे— "मैंने सोचा है कि राजा विराट से प्रार्थना करूं कि मुझे अपने दरबारी काम-काज के लिए रख लें। राजा के साथ मैं पांसा खेला करूंगा और उसमें अपनी चतुरता दिखाकर उनका मन बहलाया करूंगा। संन्यासी का-सा भेष बनाकर कंक

के नाम से म राजा के यहां रहूंगा। चौसर खेलने के अलावा राजपण्डित का भी काम मैं कर लूंगा। ज्योतिष, शकुन, नीति आदि शास्त्रों तथा वेदवेदांगों का मुझे जो ज्ञान प्राप्त है, उससे राजा को हर तरह से प्रसन्न रक्खूंगा। साथ ही सभा में राजा की सेवा-टहल भी कर लूंगा। कह दूंगा कि राजा युधिष्ठिर का मैं मित्र रह चुका हूं और सारे शास्त्र उन्हींसे सीखे हैं। मैं यह सब बड़ी सावधानी से कर लूंगा जिससे राजा विराट को मुझपर जरा भी सन्देह न हो। तुम लोग मेरी चिन्ता न करना।"

अपने बारे में यह कहने के बाद युधिष्ठिर ने भीम से पूछाः—

"भीमसेन! राजा विराट के यहां तुम कौन-सा काम करोगे?" यह पूछते-पूछते युधिष्ठिर की आंखें भर आईं। गद्गद् स्वर में कहने लगे— "यक्षों और राक्षसों को कुचलने वाले भीम! तुम्हींने उस ब्राह्मण की खातिर बकासुर का वध करके सारी एकचक्रा नगरी को बचाया था। हिडिंबासुर का तुम्हींने वध किया था। जटासुर का वध करके हमें जिलाया था। यह अनुपम बल, यह अदम्य क्रोध और यह विख्यात वीरता लेकर तुम कैसे मत्स्यराज के यहां दब कर रह सकोगे और कौन-सी नौकरी करोगे?"

भीमसेन बोला—"भाई साहब! आप अच्छी तरह जानते हैं कि मैं रसोई बनाने के काम में बड़ा ही कुशल हूं। इसलिए मेरा खयाल है कि राजा विराट के यहां मैं रसोइया बन कर रह सकता हूं। ऐसे स्वादिष्ट पदार्थ बनाकर राजा विराट को खिलाऊंगा जैसे उन्होंने कभी खाये न होंगे। मेरे काम से निश्चय ही वे बड़े खुश होंगे। जलाने के लिए जंगल से लकड़ी चीरकर मैं ले आया करूंगा। इसके अलावा राजा के यहां जो पहलवान आया करेंगे उनके साथ कुश्ती लड़ा करूंगा और उन्हें पछाड़ कर राजा का मन बहलाया करूंगा।"

भीमसेन के कुश्ती का नाम लेने से युधिष्ठिर का मन जरा विचलित हो गया। उन्हें इस बात का भय था कि भीमसेन कुश्ती लड़ने में कहीं कोई अनर्थ न कर बैठे। भीम ने यह बात तुरंत ताड़ ली और समझाकर बोला—

"भाई साहब, आप बेफिक्र रहिये। मैं किसीको जान से नहीं मारूंगा। हां, जरा तोड़-मरोड़कर उन्हें सताऊंगा जरूर, लेकिन किसीको खत्म नहीं करूंगा। कभी-कभी हठीले बैलों, भसों और जंगली जानवरों को काबू में करके भी विराट का मन बहलाया करूंगा।"

इसके बाद युधिष्ठिर ने अर्जुन से पूछा--"भैया अर्जुन, तुम्हें कौन सा काम करना पसन्द है? तुम्हारी वीरता की कान्ति तो छिपाये नहीं छिप सकती। कैसे उसे छिपा सकोगे?"

अर्जुन बोला--"भाई साहब, मैं विराट के रनिवास में रानियों व राजकुमारियों की सेवा-टहल किया करूंगा। उर्वशी से मुझे नपुन्सकत्व का शाप भी मिला है। जब मैं देवराज के यहां गया हुआ था, उर्वशी ने मुझसे प्रेमयाचना की थी। मैंने यह कहकर इन्कार कर दिया कि आप मेरे लिए माता के समान हैं। इससे नाराज होकर उसने मुझे शाप दे दिया कि तुम्हारा पुरुषत्व नष्ट हो जाय। इसके बाद देवराज इन्द्र ने अनुग्रह करके मुझे बताया कि तुम जब चाहो तभी केवल एक ही बरस के लिए उर्वशी के शाप का यह प्रभाव तुम पर रहेगा। वही शाप इस समय हमारा काम देगा। मैं सफेद शंख की चूड़ियां पहन लूंगा। स्त्रियों की भांति चोटी गूंथ लूंगा और कंचुकी भी पहन लूंगा। इस प्रकार विराट के अन्तःपुर में रहकर स्त्रियों को नाचना और गाना भी सिखलाऊंगा। कह दूंगा कि मैंने युधिष्ठिर के रनिवास में द्रौपदी की सेवा में रहकर यह हुनर सीख लिया है।" यह कहकर अर्जुन द्रौपदी की ओर देखकर मुसकरा दिया।

अर्जुन की बात सुनकर युधिष्ठिर फिर उद्विग्न हो उठे। वे बोले--"दैव की गति कैसी है। जो कीर्त्ति और पराक्रम में वासुदेव के समान है, जो भरतवंश का रत्न है और जो सुमेरु पर्वत के समान गर्वोन्नत है, उसी अर्जुन को राजाविराट के पास नपुन्सक बनकर जाना पड़े और रनिवास में नौकरी करने की प्रार्थना करनी पड़े! क्या हमारे प्रारब्ध में यह भी बदा था?"

इसके बाद युधिष्ठिर की दृष्टि नकुल और सहदेव पर पड़ी। सन्तप्त होकर पूछा—"भैया नकुल ! सुन्दर सांवले रंग के राजकुमार ! तुम्हारा कोमल शरीर यह दुःख कैसे उठा सकेगा ? बताओ तुम कौनसा काम करना चाहोगे ?"

नकुल ने कहा—"मैं विराट के अस्तबल में काम करूंगा। घोड़ों को साधने और उनकी देख-रेख करने में मेरा मन लग जायगा। घोड़ों के इलाज के बारे में मैंने काफी ज्ञान प्राप्त किया है। किसी भी घोड़े को मैं काबू में ला सकता हूं। घोड़ों को, चाहे वे सवारी के हों चाहे रथ-जैसे वाहनों में जोतने के लिए हों, उन्हें सधाने में मुझे निपुणता प्राप्त है। विराट से कह दूंगा कि पाण्डवों के (युधिष्ठिर के) यहां मैं अश्वपाल के काम पर लगा हुआ था। निश्चय ही मुझे अपनी पसन्द का काम मिल जायगा।"

अब सहदेव की बारी आई। "बुद्धि में बृहस्पति तथा नीति-शास्त्र की निपुणता में शुक्राचार्य ही जिसकी समता कर सकते हैं और मंत्रणा देने में जिसका कोई सानी नहीं रख सकता, ऐसा मेरा छोटा भाई सहदेव क्या करेगा ?"—युधिष्ठिर ने रुद्धकण्ठ से पूछा।

सहदेव ने कहा—"मेरी इच्छा है कि मैं तन्तिपाल का नाम रख कर विराट के चौपायों की देख-भाल करने के काम में लग जाऊं। मैं विराट के गाय-बैलों को किसी तरह की बीमारी न होने दूंगा और जंगली जानवरों से उनकी रक्षा किया करूंगा। ऐसी कुशलता के साथ उनकी देखभाल किया करूंगा कि मत्स्यराज की गायें संख्या में बढ़ती जायं, हृष्ट-पुष्ट हों और अधिक दूध भी देने लगें। बैल और सांडों के लक्षणों से भी मैं भलीभांति परिचित हूं।"

इसके बाद युधिष्ठिर द्रौपदी से पूछना चाहते थे कि तुम कौन-सा काम कर सकोगी ? किंतु उनसे पूछते न बना। मुंह से शब्द निकलते नहीं थे। वे मूक-से बने रहे। जो प्राणों से भी प्यारी है, माता के समान जिसकी पूजा और रक्षा होनी चाहिए, वह सुकुमार राजकुमारी किसीकी

कैसे और कौन-सी नौकरी कर सकेगी ! युधिष्ठिर को कुछ न सूझा। मन-ही-मन व्यथित होकर रह गये ।

युधिष्ठिर के मन की व्यथा द्रौपदी ताड़ गई और स्वयं ही बोल उठी—"महाराज, आप मेरे कारण शोकातुर कदापि न हों ! मेरी ओर से निश्चिन्त रहें। सैरन्ध्री बन कर मैं राजा विराट के रनिवास में काम कर लूंगी । रानियों और राजकुमारियों की सहेली बनकर उनकी सेवा-टहल भी करती रहूंगी । अपनी स्वतंत्रता व सतीत्व पर जरा भी आंच न आने दूंगी । राजकुमारियों की चोटी गूंथने और उनके मनोरंजन के लिए हंसी-खुशी से बातें करने के काम में लग जाऊंगी । मैं कहूंगी कि सम्राट् युधिष्ठिर के राजमहल में महारानी द्रौपदी की सेवा-शुश्रूषा करती रही हूं। इस प्रकार राजा विराट के रनिवास में सेवा करती हुई छिपी रहूंगी।"

यह सुनकर युधिष्ठिर मुग्ध हो गए। द्रौपदी की सहनशीलता की प्रशंसा करते हुए बोले—"धन्य हो कल्याणी ! वीर-वंश की बेटी हो तुम ! तुम्हारी ये मंगलकारिणी बातें तुम्हारे कुल के ही अनुरूप हैं !"

●

पाण्डवों के यों निश्चय कर चुकने पर धौम्य मुनि उनको आशीर्वाद व उपदेश देते हुए बोले—"किसी राजा के यहां नौकरी करते हुए बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए। राजा की सेवा में तत्पर रहना चाहिए, किन्तु अधिक बातें न करनी चाहिए। राजा के पूछने ही पर कुछ सलाह देना चाहिए। उसके बिना पूछे आप ही मंत्रणा देने लगना राजसेवक के लिए उचित नहीं। समय पाकर राजा की स्तुति भी करनी चाहिए। मामूली-से-मामूली काम के लिए भी राजा की अनुमति ले लेनी चाहिए। राजा मानों मनुष्य के रूप में आग है। उसके न तो बहुत नजदीक जाना चाहिए, न बहुत दूर ही हट जाना चाहिए। मतलब यह कि राजा से न तो अधिक हेल-मेल रखना चाहिए, न उसकी लापरवाही ही करनी चाहिए। राजसेवक चाहे कितना ही विश्वस्त क्यों न हो, कितने ही अधिकार उसे क्यों न प्राप्त हों, उसको चाहिए कि सदा पद-च्युत होने

के लिए तैयार रहे और दरवाजे की ही ओर देखता रहे। राजाओं पर भरोसा रखना नासमझी है। यह समझ कर कि अब तो राज-स्नेह प्राप्त हो गया है, उसके आसन पर बैठना या उसके वाहनों पर चढ़ना अनुचित है। राजसेवक को चाहिए कि वह कभी सुस्ती न करे और अपने मन पर काबू रक्खे। राजा चाहे गौरवान्वित करे चाहे अपमानित, सेवक को चाहिए कि अपना हर्ष या विषाद प्रकट न होने दे।

"भेद की जो बातें की जायं उन्हें बाहर किसी से न कहे। उन्हें पचा लेना चाहिए। प्रजाजनों से रिश्वत न लेनी चाहिए। किसी दूसरे सेवक से जलना न चाहिए। हो सकता है, राजा सुयोग्य व्यक्तियों को छोड़कर निरे मूर्खों को ऊंचे पदों पर नियुक्त करे। इससे जी छोटा न करना चाहिए। राजभवन की स्त्रियों से प्रेम या हेल-मेल न रखना चाहिए। उनसे खूब चौकन्ना रहना चाहिए।"

इस प्रकार राजसेवकों के ध्यान देने योग्य कितनी ही बातें पाण्डवों को समझाने के बाद पुरोहित धौम्य ने उन्हें आशीर्वाद दिया और बोले—"पाण्डु-पुत्रो! एक बरस इस भांति विराट के यहां सेवक बनकर रहना और धीरज से काम लेना। इसके बाद तुम्हारा राज्य फिर तुम्हारे हाथ आ जायगा और तुम सुखपूर्वक राज करते हुए जीते रहोगे।"

: ४५ :

अज्ञातवास

युधिष्ठिर ने गेरुआ वस्त्र पहना और संन्यासी का भेष धर लिया। अर्जुन के तो शरीर में ही नपुंसक के-से परिवर्तन हो गये। और सबने भी अपना-अपना भेष इस प्रकार बदल लिया कि कोई उन्हें पहचान

न सके, किंतु शकल-सूरत के बदल जाने पर भी क्षत्रियों की-सी स्वाभाविक कांति और तेज कहां छिप सकता था ? राजा विराट के यहां चाकरी करने गये तो विराट ने उन्हें अपना नौकर बनाकर रखना उचित न समझा। एक-एक के बारे में उनका यही विचार हुआ कि ये तो राज करने योग्य प्रतीत होते हैं। मन में शंका तो हुई, पर पांडवों के बहुत आग्रह करने और विश्वास दिलाने पर राजा ने उन्हें अपनी सेवा में ले लिया। पांडव अपनी-अपनी पसन्द के कामों पर नियुक्त कर लिये गए।

युधिष्ठिर कंक के नाम से विराट के दरबारी बन गए और राजा के साथ चौसर खेल कर दिन बिताने लगे। भीमसेन रसोइयों का मुखिया बनकर रह गया। वह कभी-कभी मशहूर पहलवानों से कुश्ती लड़ कर या हिंस्र जन्तुओं को वश में करके राजा का दिल बहलाया करता था।

अर्जुन बृहन्नला के नाम से रनिवास की स्त्रियों को—खास कर विराट की कन्या उत्तरा और उसकी सहेलियों एवं दास-दासियों को नाच, गाना और बाजा बजाना सिखलाने लगा।

नकुल घोड़ों को साधने, उनकी बीमारियों का इलाज करने और उनकी देखभाल करने में बड़ी चतुरता का परिचय देते हुए राजा को खुश करता रहा।

सहदेव गाय-बैलों की देखभाल करता रहा।

पांचालराज की पुत्री द्रौपदी, जिसकी सेवा-टहल के लिए कितनी ही दासियां होनी चाहिएं थीं, अब अपने पतियों की प्रतिज्ञा पूरी करने के हित दूसरी रानी की आज्ञा-कारिणी दासी बन गई। विराट की पत्नी सुदेष्णा की सेवा-शुश्रूषा करती हुई रनिवास में सैरन्ध्री का काम करने लगी।

●

रानी सुदेष्णा का भाई कीचक बड़ा ही बलिष्ठ और प्रतापी वीर था। मत्स्यदेश की सेना का वही नायक बना हुआ था और अपने कुल के लोगों को साथ लेकर कीचक ने बूढ़े विराटराज की शक्ति और सत्ता

खूब बढ़ा दी थी। कीचक की धाक लोगों पर जमी हुई थी। लोग कहा करते थे कि मत्स्यदेश का राजा तो कीचक है, विराट नहीं। यहां तक कि स्वयं विराट भी कीचक से डरा करते थे और उसका कहा मानते थे।

कीचक को अपने बल और प्रभाव का बड़ा घमण्ड था। ऊपर से राजा विराट ने भी तो उसे सिर चढ़ा रक्खा था। इस कारण उसकी बुद्धि फिर गई। और जब से द्रौपदी पर उसकी नजर पड़ी तो उसके मन की वासना प्रबल हो उठी। उसने सोचा--आखिर दासी ही तो है। इसे सहज ही में राजी कर लिया जा सकता है। इस विचार से कीचक ने कई बार सती द्रौपदी के साथ छेड़-छाड़ करने की चेष्टा की।

कीचक की इन हरकतों से द्रौपदी बड़ी कुण्ठित हो उठी। किंतु किसी से कुछ कहते भी न बन पड़ा। संकोच के मारे रानी सुदेष्णा से भी कुछ कह नहीं सकी। हां, उसने इतनी बात अवश्य फैला रक्खी थी कि मेरे पति गन्धर्व हैं। जो भी मुझे बुरी नजर से देखने या छेड़ने की कोशिश करेगा उसकी मेरे पति कसकर खबर लेंगे--गुप्त रूप से हत्या कर देंगे। द्रौपदी के सतीत्व, शील स्वभाव और तेज को देखकर सबने उसकी बातों पर विश्वास कर लिया था; किंतु धूर्त्त कीचक को तो गन्धर्वों का भी डर न था। वह अपनी हरकतों से बाज नहीं आया। कितनी ही बार उसने द्रौपदी से छेड़-छाड़ की। जब किसी तरह काम बनता न दीखा तो उसने अपनी बहन रानी सुदेष्णा का सहारा लिया। वह गिड़गिड़ाकर बोला--"बहन! जब से मेरी नजर तुम्हारी सैरन्ध्री पर पड़ी है, मुझे न दिन को चैन है, न रात को नींद। मुझ पर दया करके किसी-न-किसी उपाय से तुम उसे मेरी इच्छा के अनुकूल बना दो तो बड़ा उपकार हो।" सुदेष्णा ने उसे बहुत समझाया; पर कीचक अपने हठ से न टला। अन्त में विवश होकर सुदेष्णा ने अनमने मन से कीचक की सहायता करना स्वीकार कर लिया। भाई और बहन दोनों ने मिलकर द्रौपदी को फँसाने का कुचक्र रच

ही लिया ।

इस कुमन्त्रणा के अनुसार एक रात को कीचक के भवन में बड़े स्वादिष्ट पदार्थ और मदिरा तैयार की गई । रानी सुदेष्णा ने द्रौपदी के हाथ में एक सुन्दर सोने का कलश देकर कहा—"भैया के यहां बड़ी अच्छी किस्म की मदिरा तैयार की गई है । जाकर यह कलश भर के ले आ ।"

सुनकर द्रौपदी का कलेजा धड़क उठा। बोली—"इस अंधेरी रात में मैं कीचक के यहां अकेली कैसे जाऊं ? महारानी, मुझे डर लगता है । आपकी कितनी ही और दासियां हैं । किसी दूसरी को भेज दीजिए ।"

द्रौपदी ने बड़ी मिन्नतें कीं; किन्तु सुदेष्णा न मानी । क्रोध का अभिनय करती हुई बोली—"तुम्हीं को जाना पड़ेगा । यह मेरी आज्ञा है । और किसीको नहीं भेजा जा सकता । जाओ ।" विवश होकर द्रौपदी को जाना पड़ा ।

कीचक ने वही व्यवहार किया जिसका द्रौपदी को डर था । कामान्ध कीचक ने द्रौपदी से आग्रह किया, मिन्नतें कीं और बहुत तंग किया ।

द्रौपदी ने कहा— "सेनापति, आप राजकुल के हैं और मैं तो हूं नीच नौकरानी । तब फिर आप मुझे कैसे चाहने लगे ? अधर्म करने पर क्यों तुले हुए हैं ? तिस पर मैं ब्याही हुई पराई स्त्री हूं । इस कारण सावधान ही रहें । यदि आपने मेरा स्पर्श तक किया तो आपका सर्वनाश हो जायगा । ध्यान रहे मेरे रक्षक गन्धर्व हैं । वे क्रोध में आगये तो आपका प्राण ही लेकर छोड़ेंगे ।"

अनुनय-विनय और आग्रह से काम न बनते देखकर दुष्ट कीचक ने बल-पूर्वक अपनी इच्छा पूरी करनी चाही और द्रौपदी का हाथ पकड़कर खींचने लगा । द्रौपदी ने मधुकलश वहीं पटक दिया और झटका मारकर कीचक की पकड़ से हाथ छुड़ाकर राजसभा की ओर भागने लगी । कीचक गुस्से से भर उसका पीछा करने लगा । द्रौपदी हरिणी की भांति भय-विह्वल होकर राजा की दुहाई मचाती भागी और राजसभा

में पहुंच गई। इतने में कीचक भी उसके नजदीक आया। अपनी शक्ति और पद के मद में अन्धा होकर भरी सभा में उसने द्रौपदी को ठोकर मार कर गिरा दिया और अपशब्द भी कहे। सभासद् सारे देखते रह गए। किसीकी हिम्मत न पड़ी कि इस अन्याय का विरोध करे। मत्स्य-देश के राजा तक को जिसने मुट्ठी में कर लिया था ऐसे प्रभावशाली सेनापति के खिलाफ कुछ भी बोलने की किसीकी हिम्मत न पड़ी। सब-के-सब मारे डर के चुप्पी साधे बैठे रहे।

अपमानित द्रौपदी लज्जा और क्रोध के मारे आपे से बाहर होगई। अपनी हीन और निःसहाय अवस्था पर उसे बड़ा क्षोभ हुआ। उसका धीरज टूट गया। अपना परिचय संसार को मिल जाने से जो अनर्थ हो सकता था उसकी भी परवाह न करके रातोंरात वह भीमसेन के पास चली गई और सोते से भीमसेन को जगाया। भीम चौंक कर उठ बैठा।

आंसू बहाती और सिसकती हुई द्रौपदी उससे बोली— "भीम, मुझसे यह अपमान नहीं सहा जाता। नीच दुरात्मा कीचक का इसी घड़ी वध करना होगा। महारानी होकर भी मैं अगर विराट की रानियों के लिए चन्दन घिसने वाली दासी बनी तो यह तुम्हीं लोगों की प्रतिज्ञा कायम रखने के लिए। तुम लोगों की खातिर ऐसे लोगों की सेवा-चाकरी कर रही हूं जो आदर के भी योग्य नहीं हैं। मैं हमेशा निर्भय रही हूं, यहां तक कि स्वयं कुन्तीदेवी और तुमसे भी मैं कभी नहीं डरी; किन्तु आज यहांतक नौबत पहुंच गई कि रनिवास में हर घड़ी कांपती हुई सबकी सेवा-टहल कर रही हूं। मेरे इन हाथों को तो देखो।" कहकर द्रौपदी ने भीमसेन को अपने हाथ दिखलाये। भीमसेन ने देखा कि चन्दन घिसने के कारण द्रौपदी के कोमल हाथों में छाले पड़े हुए हैं। आतुर होकर उसने द्रौपदी के हाथों को अपने मुखपर रखकर प्रेम से दबा लिया।

भीमसेन ने द्रौपदी के आंसू पोंछे और जोश में आकर बोला— "कल्याणी, अब मैं न तो युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा का पालन करूंगा, न

अर्जुन की सलाह ही पर ध्यान दूंगा। जो तुम कहोगी वही करूंगा। इसी घड़ी जाकर कीचक और उसके सारे भाई-बन्धुओं को नष्ट किये देता हूं।" कहकर भीम फुरती से उठ खड़ा हुआ।

भीम को इस प्रकार जाते देख द्रौपदी जरा संभल गई। उसने भीमसेन को सचेत करते हुए कहा कि उतावली से कोई काम कर डालना ठीक नहीं। कुछ देर तक दोनों कुछ सोचते रहे और अन्त में यह निश्चय किया कि कीचक को धोखे से राजा की नृत्यशाला के किसी एकांत स्थान में रात को अकेले में बुला लिया जाय और वहीं उसका काम तमाम किया जाय।

●

अगले दिन सुबह जब कीचक ने द्रौपदी को देखा तो बोला—"सैरंध्री! तुम्हें कल मैंने सभा में ठोकर मार कर गिराया था। सभा के सब लोग देख रहे थे; किंतु किसीका साहस न हुआ कि तुम्हें बचाने के लिए आगे बढ़े। सुनो, यह विराट मत्स्य-देश का राजा है सही; पर है नाममात्र का। असल में तो मैं ही यहां का सब कुछ हूं। यदि मेरी इच्छा पूरी करोगी तो महारानी का-सा सुख भोगोगी। और मैं तुम्हारा दास बनकर रहूंगा। मेरी बात मान लो।"

द्रौपदी ने कुछ ऐसा भाव बताया मानों कीचक की बात उसे स्वीकार है। वह बोली—

"सेनापति! मैं आपकी बात मानने को राजी हूं। मेरी बात पर विश्वास करें। मैं सच कहती हूं। यदि आप मुझे वचन दें कि आप मेरे साथ सम्भोग करने की बात किसीको मालूम न होने देंगे तो मैं आपके अधीन होने को तैयार हूं। मैं लोक-निन्दा से डरती हूं और यह नहीं चाहती कि यह बात आपके साथी-संबंधियों को मालूम हो। बस इतनी-सी ही बात है।"

यह सुनकर कीचक मारे आनन्द के नाच उठा। द्रौपदी जो भी कुछ कहे उसे मानने के लिए वह तैयार होगया।

द्रौपदी बोली—"नृत्यशाला में स्त्रियां दिन के समय नाच सीखती

रहती हैं और रात को सब अपने-अपने घर चली जाती हैं। रात में वहां कोई नहीं रहता। इसलिए आज रात को आप वहीं आकर मुझसे मिलें। मैं वहीं कहीं किवाड़ खुले रखकर लेटी रहूंगी और वहीं मैं आपकी इच्छा पूर्ण करूंगी।"

कीचक के आनन्द का ठिकाना न रहा।

●

रात हुई। कीचक स्नान करके खूब बन-ठनकर निकला और दबे पांव नृत्यशाला की ओर बढ़ा। किवाड़ खुले थे। कीचक जल्दी से अंदर घुस गया ताकि कोई देख न ले।

नृत्यशाला में अंधेरा था। कीचक ने गौर से देखा तो पलंग पर कोई लेटा हुआ दिखाई दिया। अंधेरे में टटोलता हुआ पलंग के पास पहुंचा। पलंग पर भीमसेन सफेद रेशम की साड़ी पहने लेटा हुआ था। कीचक ने उसे सैरन्ध्री समझा और धीरे से उसपर हाथ फेरा। कीचक का हाथ फेरना था कि भीमसेन उसपर ऐसे झपटा जैसे हिरन पर शेर झपटता है। एक धक्के में भीम ने कीचक को गिरा दिया और अन्धेरे में ही दोनों में कुश्ती शुरू होगई। कीचक ने यही समझा कि सैरन्ध्री के गन्धर्वों में से किसीके साथ लड़ रहा हूं। वैसे कीचक भी कुछ कम ताकतवर नहीं था। उन दिनों कुश्ती लड़ने में भीम, बलराम और कीचक तीनों को एक समान निपुणता और यश प्राप्त था। इसलिए दोनों में ऐसा द्वन्द्व होने लगा, जैसा बाली और सुग्रीव का प्राचीन काल में हुआ बतलाते हैं।

कीचक बली था अवश्य; पर कहां भीम और कहां कीचक! वह भीम के आगे ज्यादा न ठहर सका। जरा देर में ही भीम ने कीचक की ऐसी गति बना दी कि उसका एक गोलाकार मांस-पिंड बन गया। फिर द्रौपदी से विदा लेकर भीम रसोईघर में चला गया और नहा-धोकर आराम से सो रहा।

इधर द्रौपदी ने नृत्यशाला के रखवालों को जगाया और बोली—"कीचक हमेशा मुझे तंग किया करता था। आज भी वह तंग करने

आया था। तुम लोगों को मालूम है ही कि मेरे पति गंधर्व हैं। उन्होंने क्रोध में आकर कीचक का वध कर दिया है। अधर्म के रास्ते चलने के कारण गन्धर्वों के हाथों तुम्हारे सेनापति वह मरे पड़े हैं!"

रखवालों ने देखा कि वहां पर सेनापति कीचक नहीं, बल्कि खून से लथपथ एक मांस-पिंड पड़ा था।

: ४६ :

विराट की रक्षा

कीचक के वध की बात विराट के नगर में फैली तो लोगों में बड़ा आतंक छा गया। द्रौपदी के प्रति सब सशंक हो गये। लोग आपस में कानाफूसी करने लगे। कहने लगे कि सैरंध्री है भी तो बड़ी सुन्दर! जो इसकी ओर आर्कषित न हो वही गनीमत। और फिर इसके पति गंधर्व! किसीने आंख उठाकर देखा कि यमराज के घर पहुंचा! इस कारण यह तो एक प्रकार से नगर के प्रजाजन और राज-घराने के लोगों पर मानों आफत के समान है। सबको यह डर बना रहेगा कि गंधर्व नाराज होकर कहीं नगर पर कुछ आफत न बुलादें। इससे कुशल तो इसीमें है कि इस सैरंध्री को ही नगर से बाहर निकाल दिया जाय।

यह सोचकर कीचक के सम्बन्धी व हितचिंतक सब रानी सुदेष्णा के पास गये और उससे प्रार्थना की कि सैरंध्री को किसी तरह नगर से निकाल दिया जाय।

सुदेष्णा ने द्रौपदी से कहा—"बहन! तुम बड़ी पुण्यवती हो। अबतक तुमने हमारे यहां जो सेवा की उसी से हम सन्तुष्ट हो गईं। बस अब इतनी दया करो कि हमारा नगर छोड़कर चली जाओ। तुम्हारे गन्धर्व हमारे नगर पर न जाने कब और क्या आफत बुलादें!"

यह उस समय की बात है जब पाण्डवों के अज्ञातवास की अवधि

पूरी होने में केवल एक ही महीना रह गया था। सुदेष्णा की बात सुनकर द्रौपदी बड़ी चिन्तित हो गई। बोली—"रानी! मुझसे नाराज न होइये। मैंने कोई अपराध नहीं किया। मुझे एक महीने की और मोहलत दीजिए। तबतक मेरे गन्धर्व पति कृत-कार्य हो जायेंगे। ज्यों ही उनका उद्देश्य पूरा हो जायगा, मैं भी उनके साथ मिल जाऊंगी। इसलिए अभी मुझे कामपर से न निकालिये। मेरे पति गन्धर्वगण इसके लिए आपका और राजा विराट का बड़ा आभार मानेंगे।"

सुदेष्णा को डर था कि कहीं सैरन्ध्री नाराज न हो जाय और उसके पति और कोई आफत खड़ी न करदें, इसलिए उसने यह बात मान ली।

●

जबसे पाण्डवों के बारह वर्ष के वनवास की अवधि पूरी हुई, तबसे दुर्योधन के गुप्तचरों ने पाण्डवों की खोज लगानी शुरू करदी। कितने ही देशों, नगरों और गांवों को छान डाला। कोई ऐसी जगह नहीं छोड़ी जहां छिपकर रहा जा सकता था। महीनों इसी काम में लगे रहने पर भी जब पांडवों का कहीं पता न लगा तो हारकर वे दुर्योधन के पास लौट आये और बोले—

"नरेन्द्र! हमने पाण्डवों को खोजने में ऐसे स्थानों को भी ढूंढ़ा, जहां मनुष्य रह ही नहीं सकते। ऐसे-ऐसे जंगल छान डाले जो झाड़-झंखाड़ से भरे हैं। कोई आश्रम ऐसा नहीं रहा जिसमें हमने उन्हें न खोजा हो। यहांतक कि पहाड़ की चोटियों तक को ढूंढ़े बिना न छोड़ा। ऐसे नगरों में जहां कि लोग भरे रहते हैं, हमने एक-एक से पूछ कर पता लगाया; परन्तु फिर भी पांडवों का कहीं भी पता नहीं मिला। आप निश्चय मानें कि पाण्डव अब मिट ही चुके हैं।"

इन्हीं दिनों हस्तिनापुर में कीचक के वध की खबर फैल गई। यह भी सुनने में आया कि किसी स्त्री के कारण यह वध हुआ। यह खबर पाते ही दुर्योधन ने ताड़ लिया कि हो-न-हो कीचक का वध भीम ने ही किया होगा और वह भी द्रौपदी के कारण। महाबली कीचक को मारना

सिर्फ दो ही व्यक्तियों के बूते का काम है; और बलराम का कीचक से कोई बैर नहीं। इसलिए निश्चय ही भीम ने कीचक को मारा होगा।

अपना यह विचार दुर्योधन ने राजसभा में भी प्रकट किया। वह बोला—"मेरा खयाल है कि पांडव विराट-नगर में ही कहीं छिपे हुए हैं। वैसे भी राजा विराट मेरी मित्रता अस्वीकार करते आये हैं। सो हमें कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे इस बात का ठीक-ठीक पता लग जाय कि पाण्डव सचमुच विराट के यहां शरण लिये हुए हैं या नहीं। मुझे तो यही अच्छा उपाय लगता है कि इस मत्स्यदेश पर धावा बोल दें और विराट की गायें उठा ले आवें। यदि पाण्डव वहीं हैं तो निश्चय ही विराट की तरफ से हमारे विरुद्ध लड़ने आवेंगे। यदि हम अज्ञातवास की अवधि पूरी होने से पहिले उनका पता लगा लें तो शर्त के अनुसार उन्हें और बारह बरस के लिए बनवास करना होगा। यदि पाण्डव विराट के यहां न भी हों तो भी हमारा कुछ बिगड़ेगा नहीं। हमारे तो दोनों हाथों लड्डू हैं।"

दुर्योधन की यह बात सुनकर त्रिगर्त देश का राजा सुशर्मा उठा और बोला—"राजन्! मत्स्यदेश के राजा विराट मेरे शत्रु हैं। कीचक ने भी मुझे बहुत तंग किया है। अब जब कि कीचक की मृत्यु हो चुकी है, मत्स्यराज की शक्ति नहीं के बराबर ही समझनी चाहिए। इस अवसर से लाभ उठाकर मैं उससे अपना पुराना वैर चुका लेना चाहता हूं। अतः मुझे इस बात की अनुमति दी जाय कि मैं मत्स्यदेश पर आक्रमण कर दूं।"

कर्ण ने सुशर्मा की बात का अनुमोदन किया और फिर सबकी राय से यह निश्चय किया गया कि विराट के राज्य पर दोनों ओर से आक्रमण किया जाय। राजा सुशर्मा अपनी सेना लेकर मत्स्यदेश पर दक्षिण की ओर से हमला करें और जब विराट अपनी सेना लेकर उसका मुकाबला करने जायं तब ठीक इसी मौके पर उत्तर की ओर से दुर्योधन अपनी सेना लेकर अचानक विराट-नगर पर छापा मार दें।

इस योजना के अनुसार राजा सुशर्मा ने दक्षिण की ओर से मत्स्यदेश पर आक्रमण कर दिया। मत्स्यदेश के दक्षिणी हिस्से में त्रिगर्तराज

की सेना छा गई और गायों के झुण्ड-के-झुण्ड सुशर्मा की फौज ने हथिया लिये; लहलहाते खेत उजाड़ डाले; बाग-बगीचों को तबाह कर दिया। ग्वाले और किसान जहां-तहां भाग खड़े हुए और राजा विराट के दरबार में जाकर दुहाई मचाई। विराट को बड़ा खेद हुआ कि महाबली कीचक ऐसे अवसर पर नहीं रहा।

उन्हें चिन्ताकुल होते देखकर कंक (युधिष्ठिर) ने उनको सांत्वना देते हुए कहा—"राजन्! चिन्ता न करें। यद्यपि मैं संन्यासी ब्राह्मण हूं फिर भी अस्त्र-विद्या सीखा हुआ हूं। मैंने सुना है कि आपके रसोइये वल्लभ, अश्वपाल ग्रथिक और ग्वाला तंतिपाल भी बड़े कुशल योद्धा हैं। मैं कवच पहन कर रथारूढ़ होकर युद्ध-क्षेत्र में जाऊंगा। आप भी उनको आज्ञा दे दें कि रथारूढ़ होकर मेरे साथ चलें। सबके लिए रथ और शस्त्रास्त्र देने की आज्ञा दीजिएगा।"

यह सुन विराट बड़े प्रसन्न हो गए। उनकी आज्ञानुसार चारों वीरों के लिए रथ तैयार होकर आ खड़े हुए। अर्जुन को छोड़ बाकी चारों पाण्डव उनपर चढ़कर विराट और उनकी सेना समेत सुशर्मा से लड़ने चले गए।

राजा सुशर्मा और राजा विराट की सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। दोनों ओर असंख्य सैनिक खेत रहे। सुशर्मा ने अपने साथियों-समेत विराट को घेर लिया और विराट को रथ से उतरने पर विवश कर दिया। अन्त में सुशर्मा ने विराट को कैद करके अपने रथपर बिठा लिया और विजय का डंका बजाते हुए अपने खेमे में चला गया। जब राजा विराट ही बन्दी कर दिये गए तो उनकी सारी सेना तितर-बितर हो गई। सैनिक जान लेकर भागने लगे।

यह हाल देखकर युधिष्ठिर भीमसेन को आज्ञा देते हुए बोले—"भीम! अब तुम्हें जी लगाकर लड़ना होगा। लापरवाही से काम नहीं चलेगा। अभी विराट को छुड़ा लाना होगा, तितर-बितर हो रही सेना इकट्ठी करनी होगी और सुशर्मा का दर्प चूर करना होगा।"

युधिष्ठिर की बात पूरी भी न होने पाई थी कि इतने में भीमसेन एक भारी वृक्ष उखाड़ने लग गया। युधिष्ठिर ने उसको रोक कर कहा—"यदि तुम सदा की भांति पेड़ उखाड़ने और सिंह की-सी गर्जना करने लग जाओगे तो शत्रु तुम्हें झट पहिचान लेगा। इसलिए और लोगों की ही भांति रथ पर बैठे हुए धनुष-बाण के सहारे लड़ना ठीक होगा।"

आज्ञा मानकर भीमसेन रथ पर से ही सुशर्मा की सेना पर बाणों की बौछार करने लगा। थोड़ी देर की लड़ाई के बाद भीम ने विराट को छुड़ा लिया और सुशर्मा को कैद कर लिया। मत्स्यदेश की सेना जो डर के मारे भाग गई थी, समर-भूमि में फिर से आ डटी और सुशर्मा की सेना पर विजय प्राप्त करली।

●

सुशर्मा की पराजय की खबर जब विराट नगर पहुंची तो लोगों के उत्साह और आनन्द की सीमा न रही। नगर वालों ने नगर को खूब सजाकर आनन्द मनाया और विजयी राजा विराट के स्वागत के लिए शहर के बाहर चले। इधर नगर के लोग विजय की खुशियां मना रहे थे और राजा की बाट जोह रहे थे कि उधर उत्तर की ओर से दुर्योधन की एक बड़ी सेना ने विराट नगर पर अचानक धावा बोल दिया और ग्वालों की बस्तियों में तबाही मचानी शुरू करदी। कौरव-सेना ऊधम मचाती हुई असंख्य गायों और पशुओं को भगा ले जाने लगी। बस्तियों में हाहाकार मच गया। ग्वालों का मुखिया राजभवन की ओर भागा आया और राजकुमार उत्तर के आगे दुहाई मचाई।

बोला—"दुहाई है राजकुमार की! हम पर भारी विपदा आगई है। कौरव-सेना हमारी गायें भगा ले जा रही है। राजा सुशर्मा से लड़ने दक्षिण की ओर गये हुए हैं। हमारा बचाव करनेवाला और कोई नहीं रहा। आप ही हमें इस आफत से बचावें। आप राजकुमार हैं। आप ही का कर्त्तव्य है कि हमारी गायें शत्रु के हाथ से छुड़ा लायें और राजवंश की लाज रखें।"

रनिवास की स्त्रियों और नगर के प्रमुख लोगों के सामने ग्वालों के मुखिया ने इस तरह उत्तर को अपना दुखड़ा सुनाया तो राजकुमार जोश में आगया। बोला— "घबराने की कोई बात नहीं। यदि मेरा रथ चलाने योग्य कोई सारथी मिल जाय तो मैं अकेला ही जाकर शत्रु-सेना के दांत खट्टे कर दूंगा और एक-एक गाय छुड़ा लाऊंगा। ऐसा कमाल का युद्ध करूंगा कि लोग भी विस्मित होकर देखते रह जायंगे। कहेंगे— कहीं यह अर्जुन तो नहीं है।"

इस समय द्रौपदी अन्तःपुर में ही थी। उत्तर की बात सुनकर राजकुमारी उत्तरा के पास दौड़ी गई और बोली— "राजकन्ये! देश पर विपदा आई है। ग्वाले लोग घबराये हुए राजकुमार के आगे दुहाई मचा रहे हैं कि कौरवों की सेना उत्तर की ओर से नगर पर हमला कर रही है और मत्स्यदेश की सैकड़ों-हजारों गायें लूटली हैं। राजकुमार देश के बचाव के लिए युद्ध में जाने को तैयार हैं; किन्तु कोई सुयोग्य सारथी नहीं मिलता। इसीसे उनका जाना अटका हुआ है। आपकी वृहन्नला रथ चलाना जानती है। जब मैं पांडवों के रनिवास में काम किया करती थी तो उस समय सुना था कि वृहन्नला कभी-कभी अर्जुन का रथ हांक लेती थी। यह भी सुना था कि अर्जुन ने उसे धनुर्विद्या भी सिखलाई है। इसलिए आप अभी बृहन्नला को आज्ञा दें कि राजकुमार उत्तर की सारथी बन जाय और मैदान में जाकर कौरव-सेना को रोके।"

राजकुमारी उत्तरा अपने भाई के पास जाकर बोली— "भैया, यह वृहन्नला रथ हांकने में बड़ी चतुर मालूम होती है। हमारी सैरंध्री कहती है— वृहन्नला पाण्डव-वीर अर्जुन की सारथी रह चुकी है। तो फिर क्यों नहीं उसीको लेजाकर नगर की रक्षा करने का प्रयत्न करते?"

उत्तर ने बात मान ली। उत्तरा तुरन्त नृत्यशाला में दौड़ी गई और वृहन्नला (अर्जुन) से अनुरोध करके कहा—"वृहन्नला! मेरे पिता की संपत्ति और गायों को कौरव-सेना लूट कर ले जा रही है। दुष्टों ने ऐसे समय पर आक्रमण किया है जब राजा नगर में नहीं हैं। सैरंध्री कहती

है कि तुम्हें अस्त्र-शस्त्र चलाना आता है और तुम अर्जुन का रथ हांक चुकी हो। तो तुम्हीं राजकुमार उत्तर का रथ हांक ले जाओ न!"

अर्जुन थोड़ी देर तक तो हां-हूं करता रहा; पर बाद में उसने मान लिया। कवच हाथ में लेकर उलटी तरफ से पहनने लगा मानों कुछ जानता ही न हो। यह देखकर अन्तःपुर की स्त्रियां खिलखिला उठीं। कुछ देर तक अर्जुन यों ही विनोद करता रहा और स्त्रियों को हंसाता रहा। लेकिन जब वह घोड़ों को रथ में जोतने लगा तो एक मंजे हुए सारथी के समान दिखाई दिया। राजकुमार उत्तर के रथ पर बैठ जाने के बाद वह भी बैठ गया और घोड़ों की रास बड़ी कुशलता से थाम ली और जैसे ही घोड़ों को चलने का इशारा किया और रथ चल पड़ा तो उसकी कुशलता देखकर रनिवास की स्त्रियां आश्चर्यचकित रह गईं। सिंह की ध्वजा फहराता हुआ रथ बड़ी शान से कौरव-सेना से भिड़ने चल पड़ा।

जाते-जाते बृहन्नला ने कहा—"राजकुमार अवश्य विजय प्राप्त करेंगे। शत्रुओं के वस्त्र हरण करके तुम सबको विजय-पुरस्कार के रूप में लाकर दूंगी।"

यह सुनकर अन्तःपुर की स्त्रियां जयजयकार कर उठीं।

: ४७ :

राजकुमार उत्तर

बृहन्नला को सारथी बनाकर राजकुमार उत्तर जब नगर से चला तो उसका मन उत्साह से भरा था। वह बार-बार कहता था, "तेजी से चलाओ। जिधर कौरव-सेना गायें भगा ले जा रही हो उसी ओर चलाओ रथ को।"

घोड़े भी बड़े वेग से चले। दूर कौरवों की सेना दिखाई देने लगी। धूल उड़कर आकाश तक छाई हुई थी। उस धूल के परदे के

पीछे विशाल सागर की भांति चारों दिशाओं में व्याप्त होकर कौरवों की विशाल सेना खड़ी थी। राजकुमार ने उस विराट सेना को देखा जिसका संचालन भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण और दुर्योधन-जैसे महारथी कर रहे थे।

देखकर उत्तर के रोंगटे खड़े होगए। कंप-कंपी भी होने लगी। वह संभल न सका। भय-विह्वल होकर दोनों हाथों से अपनी आंखें मीच लीं। उससे यह देखा नहीं गया।

बोला— "इतनी बड़ी सेना से मैं अकेला कैसे लड़ूं? मुझमें इतनी योग्यता कहां जो कौरवों से लड़ूं? राजा तो मेरे पिता हैं और वे सुशर्मा का सामना करने के लिए अपनी सारी सेना लेकर दक्षिण की तरफ चले गए हैं। इधर नगर का बचाव करनेवाला कोई न रहा। मैं अकेला हूं। न तो सेना है, न कोई सेनानायक ही। तुम्हीं बताओ, इन बड़े-बड़े प्रसिद्ध योद्धाओं से मैं छोटा-सा असहाय बालक लड़ूं भी तो कैसे? वृहन्नला, रथ लौटा लो और वापस चली चलो।"

अर्जुन (वृहन्नला) हंस पड़ा। बोला— "राजकुमार उत्तर! वहां स्त्रियों के सामने तो बड़ी शेखी बघार रहे थे। बिना कुछ आगा-पीछा सोचे मुझे साथ लेकर युद्ध के लिए चल पड़े थे और प्रतिज्ञा करके रथ पर बैठे थे। नगर के लोग तुम्हारे ही भरोसे हैं। सैरन्ध्री ने मेरी तारीफ करदी और तुम राजी हो गए। मैं भी तुम्हारी बहादुरी की बातें सुन साथ चलने को तैयार हो गई। अब अगर हम गायें छुड़ाये बगैर वापस लौट जायंगे तो लोग हमारी हंसी उड़ायेंगे। इससे मैं तो नहीं लौटूंगी। तुम घबराओ मत। डटकर लड़ो।"

रथ बड़े वेग से जारहा था। वृहन्नला ने उसे रोकने की कोशिश नहीं की और रथ शत्रु-सेना के नजदीक पहुंच गया। यह देख उत्तर का जी और घबरा उठा।

"तुम रथ रोकतीं क्यों नहीं? यह मेरे बस का काम नहीं है। मैं लडंगा नहीं। कौरव जितनी चाहें गायें भगा ले जायं। स्त्रियां मेरी हंसी उडायेंगी तो भले उड़ायें। लड़ने से आखिर लाभ ही क्या है?

मैं लौट चलूंगा। रथ मोड़ लो। वरना मैं अकेले पैदल ही चल पड़ूंगा।" कहते-कहते उत्तर ने धनुष-बाण फेंक दिये और चलते रथ से कूद पड़ा। घबराहट के मारे वह आपे में न रहा और पागलों की भांति नगर की ओर भागने लगा।

●

"राजकुमार! ठहरो, भागो मत। क्षत्रिय होकर तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए।" कहता हुआ बृहन्नला के रूप में अर्जुन भागते राजकुमार का पीछा करने लगा। उसकी लम्बी चोटी नाग-सी फहराने लगी। साड़ी अस्त-व्यस्त होकर हवा में उड़ने लगी। आगे-आगे उत्तर और पीछे-पीछे बृहन्नला। उत्तर बृहन्नला की पकड़ में नहीं आ रहा था और रोता हुआ इधर-उधर भाग रहा था। सामने कौरवों की सेना के वीर आश्चर्य-चकित हो यह दृश्य देख रहे थे। उन्हें हँसी भी आरही थी।

आचार्य द्रोण के मन में कुछ शंका हुई। बोले—"कौन हो सकता है यह? वेश-भूषा तो स्त्रियों की-सी है, पर चाल-ढाल तो पुरुष की-सी दिखाई देती है; कहीं अर्जुन तो नहीं है?"

कर्ण ने जवाब दिया—"अर्जुन नहीं हो सकता और अगर हुआ भी तो क्या? अकेला ही तो है! दूसरे भाइयों के बिना अकेले अर्जुन हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। पर इतनी दूर की क्यों सोचें? बात यह है कि राजा विराट राजकुमार को नगर में अकेले छोड़कर अपनी सारी सेना लेकर सुशर्मा के विरुद्ध लड़ने गया मालूम होता है। राजकुमार तो अभी बालक ही है। रनिवास में सेवा-टहल करने वाले हींजड़े को सारथी बना लिया और हमसे लड़ने चला आया है।"

●

बृहन्नला ने थोड़ी देर की भाग-दौड़ के बाद उत्तर को घेरकर पकड़ लिया और रथ पर बिठा लिया। लेकिन उत्तर तो बिलकुल डर गया था और कांप रहा था। उसने बृहन्नला से कहा—"मुझे छोड़ दो। मैं तुम्हें बहुत धन दूंगा, वस्त्र दूंगा। मुंह-मांगी वस्तु दूंगा। तुम बहुत

अच्छी हो। मुझे नगर चले जाने दो। अपनी मां का मैं एक ही बेटा हूं। लड़ाई में मुझे कुछ हो गया तो वह मर जायगी। उसने मुझे बड़े प्रेम से पाला है। मैं बालक ही तो हूँ। बचपना करके वहां बड़ी-बड़ी बातें कर गया। मैंने कोई लड़नेवाली सेना देखी थोड़े थी। अब यह देख कर तो मेरे प्राण ही निकले जा रहे हैं। वृहन्नला, मुझे बचाओ इस संकट से! मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानूंगा।"

इस प्रकार राजकुमार उत्तर को बहुत भयभीत और घबराया हुआ जान कर वृहन्नला ने उसे समझाते हुए और उसका हौसला बढ़ाते हुए कहा—

"राजकुमार घबराओ नहीं। तुम तो सिर्फ घोड़ों की रास संभाल लो। इन कौरवों से मैं अकेली ही युद्ध कर लूंगी। तुम केवल रथ हांकते जाओ। इसमें जरा भी मत डरो। बाकी मैं सब काम ठीक तरीके से कर लूंगी। तुम भरोसा रखो। विजय तुम्हारी ही होगी। भाग जाने से तुमको कोई लाभ न होगा। निर्भय होकर डटे रहोगे तो मैं अपने प्रयत्न से सारी सेना को तितर-बितर कर दूंगी और तुम्हारी गायें छुड़ा लाऊंगी। तुम यशस्वी विजेता प्रसिद्ध होगे।" कह कर अर्जुन ने उत्तर को सारथी के स्थान पर बिठाकर रास उसके हाथ में पकड़ा दी। राजकुमार ने रास पकड़ ली। तब अर्जुन ने उससे कहा—"रथ को नगर के बाहर जो स्मशान है उसके पास शमी के वृक्ष के उधर ले चलो।" और रथ उधर तेजी के साथ चल पड़ा।

●

आचार्य द्रोण यह सब दूर से देख रहे थे। उनको विश्वास हो रहा था कि नपुन्सक के वेश में यह अर्जुन ही है। उन्होंने यह बात इशारे से भीष्म को जता दी।

यह चर्चा सुन दुर्योधन कर्ण से बोला—"हमें इस बात से क्या मतलब कि यह औरत के भेस में कौन है? मानलें कि यह अर्जुन ही है। फिर भी हमारा तो उससे काम ही बनता है। शर्त के अनुसार और बारह वर्ष का बनवास भुगतना पड़ेगा।"

उधर शमी वृक्ष के पास पहुंचकर वृहन्नला ने उत्तर से कहा—"राजकुमार! तुम्हारी जय हो! अब तुम एक काम करो। रास छोड़ दो और रथ से उतर कर इस शमी वृक्ष पर चढ़ जाओ। ऊपर एक गठरी में कुछ हथियार टँगे हैं, उन्हें उतार लाओ।"

उत्तर को यह बात एक पहेली-सी लगी। वह तो कुछ समझ ही न पाया। वृहन्नला ने उसे फिर समझाकर कहा—"रथ में जो तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र हैं वे मेरे काम के नहीं हैं। इस पेड़ पर पांडवों के दिव्यास्त्र बँधे रखे हैं। वहीं गठरी उतार लाओ।"

उत्तर नाक-भौं सिकोड़कर बोला—"लोग तो कहते हैं कि इस शमी के पेड़ पर किसी बूढ़ी भीलनी की लाश टंगी है। लाश को भला मैं कैसे छू सकता हूँ? ऐसा घृणित काम मुझसे कैसे करा रही हो? तुम भूल गईं कि मैं कौन हूँ?"

वृहन्नला ने कहा—"राजकुमार, मैं बिलकुल ठीक कहती हूं। वहां जो कुछ टंगा है वह किसीकी लाश नहीं है! मुझे मालूम है कि इधर पांडवों के हथियार की गठरी है। तुम निःशंक होकर पेड़ पर चढ़ जाओ और उसे ले आओ। अब देर न करो।"

लाचार होकर उत्तर पेड़ पर चढ़ा। उसपर जो गठरी टँगी थी उसे लेकर मुंह बनाते हुए नीचे उतर आया। गठरी चमड़े से लपेट कर बंधी हुई थी। वृहन्नला ने जैसे ही बंधन खोला तो उसमें से सूर्य की भांति जगमगाने वाले दिव्यास्त्र निकले।

उन शस्त्रों की जगमगाहट देखकर उत्तर चकाचौंध में रह गया। बाद में संभलकर उन दिव्यास्त्रों को बड़े कौतूहल के साथ एक-एक करके स्पर्श किया। उनका स्पर्श करने मात्र ही से उत्तर का भय जाता रहा! उसमें वीरता की बिजली-सी दौड़ गई। उत्तर ने उत्साहित होकर पूछा—"वृहन्नला! सचमुच बताओ ये धनुष-बाण और खड्ग क्या पांडवों के हैं? मैंने तो सुना था कि वे राज्य से वंचित होकर जंगल में चले गये थे और फिर आगे कुछ पता नहीं? क्या

तुम पाण्डवों को जानती हो ? कहां हैं वे ?"

तब अर्जुन ने राजकुमार उत्तर को अपना और अपने भाइयों तथा द्रौपदी का असली परिचय बता दिया और बोला—"राजा विराट की सेवा करने वाले कंक ही युधिष्ठिर हैं। रसोइया वल्लभ, जो तुम्हारे पिता की भोजनशाला का आचार्य है, भीमसेन है । जिसका अपमान करने के कारण कीचक को मृत्यु के मुंह में जाना पड़ा था वही सैरन्ध्री पांचालनरेश की यशस्विनी पुत्री द्रौपदी हैं। अश्वपाल ग्रंथिक और ग्वाले का काम करने वाले तंतिपाल और कोई नहीं, नकुल एवं सहदेव ही हैं। और मैं हूं अर्जुन । इसलिए राजकुमार ! घबराओ नहीं। अभी मेरी वीरता का परिचय पा लोगे । भीष्म, द्रोण और अश्वत्थामा के देखते-देखते कौरव-सेना को हरा दूंगा और सारी गायें छुड़ा लाऊंगा और तुम भी बड़े यशस्वी बनोगे ।"

यह सुनते ही उत्तर हाथ जोड़कर अर्जुन को प्रणाम करके बोला—"पार्थ ! आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हुआ। क्या सचमुच ही मैं अब यशस्वी धनंजय को अपनी आंखों से देख रहा हूँ ? जिन्होंने मुझ कायर में वीरता का संचार किया क्या वे विजयी अर्जुन ही हैं ? नासमझी के कारण मुझसे जो भूल हुई उसे क्षमा करदें ।"

कौरव-सेना को देखकर उत्तर फिर घबरा न जाए, इसलिए उसका हौसला बढ़ाते हुए अर्जुन पूर्व के अनेक विजयी युद्धों की कथा सुनाता जाता था। इस प्रकार उत्तर को धीरज बँधा। उसका हौसला बढ़ाकर अर्जुन ने कौरव-सेना के सामने रथ खड़ा कर लिया। दोनों हाथों से भगवान को प्रणाम किया। हाथ की चूड़ियां उतार फेंकीं और चमड़े के अंगुलित्राण पहन लिए। खुले लम्बे केश संवारकर कपड़े से कसकर बांध लिये। पूर्व की ओर मुंह करके अस्त्रों का ध्यान किया और रथ पर आरूढ़ होकर गाण्डीव-धनुष संभाल लिया और डोरी चढ़ा कर तीन बार जोर से टंकार दिया। गाण्डीव की टंकार से दशों दिशायें गूंज उठीं। कौरव-सेना के वीर वह टंकार सुनते ही पुकार उठे—"अरे, यह तो गांडीव की टंकार

है!" कौरव-सेना टंकार-ध्वनि से स्वस्थ हो भी न पाई थी कि अर्जुन ने खड़े होकर अपने देवदत्त नामक शंख की ध्वनि की जिससे कौरव-सेना थर्रा उठी। उसमें खलबली मची कि पांडव आगये।

: ४८ :

प्रतिज्ञा-पूर्ति

अर्जुन का रथ धीर-गम्भीर घोष करता आगे बढ़ा तो धरती हिलने लगी। गांडीव-धनुष की टंकार सुन कर कौरव-सेना के वीरों का कलेजा कांप उठा।

यह देख व सुन द्रोण ने कहा—"सेना की व्यूह-रचना सुव्यवस्थित रूप से कर लेनी होगी। इकट्ठे रह कर सावधानी के साथ युद्ध करना होगा। यह तो अर्जुन आ गया है।"

आचार्य की शंका और घबराहट दुर्योधन को ठीक न लगी। वह कर्ण से बोला—"पांडव जुए के खेल में जब हारे थे तो शर्त के अनुसार उन्हें बारह वर्ष बनवास और एक वर्ष अज्ञातवास में बिताना था। अभी तेरहवां बरस पूरा नहीं हुआ है और अर्जुन हमारे सामने प्रकट हो गया है। तो फिर भय किस बात का? शर्त के अनुसार पांडवों को अब फिर बारह बरस बनवास में और एक बरस अज्ञातवास में बिताना होगा। आचार्य को तो चाहिए कि आनन्द मनावें। उल्टे वे तो भय-विह्वल हो रहे हैं। पर बात यह है कि पंडितों का स्वभाव यही होता है। दूसरों का दोष निकालने ही में वे बड़ी चतुरता का परिचय देते हैं। अच्छा यही होगा कि उन्हें पीछे ही रखकर हम आगे बढ़ें और सेना का संचालन करें।"

कर्ण ने दुर्योधन की बात-में-बात मिलाते हुए कहा—"इस सेना के योद्धा भय के मारे कांप रहे हैं जबकि उन्हें दिल खोल कर लड़ना चाहिए।

आप लोग यही रट लगा रहे हैं कि सामने जो रथ आ रहा है उस पर अर्जुन धनुष तान कर बैठा है। पर वह अर्जुन के बजाय परशुराम भी हुआ तो भी हम डरें क्यों ? मैं तो अकेला ही जाकर उसका मुकाबला करूंगा और दुर्योधन को उस दिन जो वचन दिया था उसे आज पूरा करके दिखाऊंगा। सारी कौरव-सेना और सभी सेनानायक भले ही खड़े देखते रहें, चाहे गायों को भगा ले जायं; मैं अन्त तक डटा रहूंगा और अगर वह अर्जुन हुआ तो अकेला ही उससे निबट लूंगा।"

कर्ण को यों दम भरते देख कृपाचार्य झल्लाकर बोले--"कर्ण ! मूर्खता की बातें न करो। हम सबको एक साथ मिलकर अर्जुन का मुकाबला करना होगा, उसे चारों ओर से घेर लेना होगा। नहीं तो हमारे प्राणों की खैर नहीं। तुम अकेले ही अर्जुन के सामने जाने का साहस न करो।"

यह सुन कर्ण को गुस्सा आगया। वह बोला--"आचार्य तो अर्जुन की प्रशंसा करते कभी थकते नहीं। अर्जुन की शक्ति को बढ़ा-चढ़ाकर बताने का इन्हें एक व्यसन-सा पड़ा हुआ है। न मालूम यह भय के कारण है या यह कि अर्जुन को ये अधिक प्यार करते हैं। जो हो, जो डरपोक हैं या जो केवल पेट पालने ही के लिए राजा के आश्रित हैं, वे भले ही हाथ-पर-हाथ धरे खड़े रहें--न करें युद्ध। या लौट जायं वापस। मैं अकेला ही डटा रहूंगा। जो वेदों की तो दुहाई देते हैं और शत्रु की प्रशंसा करते रहते हैं उनका यहां काम ही क्या है ?"

जब कर्ण ने आचार्य की यों चुटकी ली तो कृपाचार्य के भानजे अश्वत्थामा से न रहा गया। वह बोला--"कर्ण ! अभी तो हम गायें लेकर हस्तिनापुर जा नहीं पहुंचे हैं। किया तो तुमने कुछ नहीं और कोरी डींग मारने में समय गंवा रहे हो। हम भले ही क्षत्रिय न हों, वेद और शास्त्र रटने वाले ही हों; पर राजाओं को जुए में हराकर उनका राज्य जीतने की बात किसी भी शास्त्र में हमने न देखी है, न पढ़ी है। फिर जो लोग युद्ध जीत कर भी राज्य प्राप्त करते हैं वे भी अपने मुंह आप ही अपनी तारीफ नहीं करते। तो तुम लोगों ने कौन-सा भारी पहाड़ उठा लिया

जो ऐसी डींग मारते हो ? अग्नि चुपचाप सब चीजों को पकाती है, सूर्य चुपचाप प्रकाश फैलाता है और पृथ्वी अखिल चराचर का भार वहन करती है। फिर भी ये सब अपनी प्रशंसा आप नहीं करते। तब जिन क्षत्रिय वीरों ने जुआ खेल कर राज्य जीत लिया है, उन्होंने कौनसा ऐसा पराक्रम किया है जो अपने मुंह अपनी प्रशंसा करते फूले नहीं समाते? शिकारी जैसे जाल फैलाकर चिड़िया को फँसाता है उसी प्रकार जिन लोगों ने कुचक्र का जाल फैलाकर पाण्डवों का राज्य छीन लिया था, वे कम-से-कम अपने मुंह से अपनी प्रशंसा तो न करें। अरे कर्ण! अरे दुर्योधन! तुम लोगों ने अभी तक कौन-सी लड़ाई लड़कर पाण्डवों को हराया है ? एक वस्त्र पहनी हुई द्रौपदी को सभा में खींच लाने वाले वीरो! तुम लोगों ने उसे किस युद्ध में जीता था ? लेकिन होशियार होजाओ। आज यहां कोई चौपड़ का खेल नहीं होनेवाला कि पांसा फेंका और राज हथिया लिया। आज तो अर्जुन के साथ लड़ाई में दो-दो हाथ करने हैं। अर्जुन का गाण्डीव चौपड़ की गोटें नहीं फेंकेगा, बल्कि पैने बाणों की बौछार करेगा। यहां शकुनि की कुचालें काम न देंगी। यह खेल नहीं—युद्ध है।"

इस प्रकार जब कौरव-सेना के वीर आपस में ही लड़ने-झगड़ने लगे तो भीष्म बड़े खिन्न हुए। वे बोले—"बुद्धिमान व्यक्ति कभी अपने आचार्य का अपमान नहीं करते। योद्धा को चाहिए कि देश और काल को भलीभांति देखते हुए उसके अनुसार युद्ध करे। कभी-कभी बुद्धिमान लोग भी भ्रम में पड़ जाते हैं। समझदार दुर्योधन भी क्रोध के कारण भ्रम में पड़ा हुआ है और पहिचान नहीं पाया है कि सामने जो खड़ा है वह अर्जुन है। अश्वत्थामा! कर्ण ने जो कुछ कहा, मालूम होता है, वह आचार्य को उत्तेजित करने ही के लिए कहा था। तुम उसकी बातों पर ध्यान न दो। द्रोण, कृप एवं अश्वत्थामा इसको क्षमा कर दें। चारों वेदों का ज्ञान एवं क्षत्रियोचित तेज आचार्य द्रोण एवं उनके पुत्र अश्वत्थामा को छोड़कर और किसमें एकसाथ पाया जा सकता है ?

परशुराम को छोड़कर द्रोणाचार्य का सानी और कौन-सा ब्राह्मण है ? यह आपस में वैर-विरोध या झगड़े का समय नहीं है। अभी तो सबको एकसाथ मिलकर शत्रु का मुकाबला करना है।"

पितामह के इस प्रकार समझाने पर कर्ण, अश्वत्थामा आदि वीर जो उत्तेजित हो रहे थे, शांत हो गये।

सबको शान्त देखकर भीष्म दुर्योधन से फिर बोले---"बेटा दुर्योधन, अर्जुन प्रकट हो गया यह ठीक है। पर प्रतिज्ञा का समय कल ही पूरा हो चुका। चन्द्र और सूर्य की गति, वर्ष, महीने और पक्ष विभाग के पारस्परिक सम्बन्ध को अच्छी तरह जाननेवाले ज्योतिषी मेरे कथन की पुष्टि करेंगे। तुम लोगों के हिसाब में कुछ भूल हुई है। प्रत्येक वर्ष के एक-जैसे महीने नहीं होते। मालूम होता है कि तुम लोगों की गणना में कुछ भूल है। इसीलिए तुम्हें भ्रम हुआ है। ज्योंही अर्जुन ने गांडीव धनुष की टंकार की, मैं समझ गया कि प्रतिज्ञा की अवधि पूरी हो गई। दुर्योधन ! युद्ध शुरू करने से पहले इस बात का निश्चय कर लेना होगा कि पाण्डवों के साथ सन्धि कर लें या नहीं। यदि सन्धि करने की इच्छा है तो उसके लिए अभी समय है। बेटा, खूब सोच-विचार कर बताओ कि तुम न्यायोचित सन्धि चाहते हो या युद्ध ?"

दुर्योधन ने कहा---"पूज्य पितामह ! मैं सन्धि नहीं चाहता। राज्य तो रहा दूर, मैं तो एक गांव तक पाण्डवों के अधीन करने के लिए तैयार नहीं हूं। इसलिए लड़ने की तैयारियां की जायं।"

यह सुन द्रोणाचार्य ने कहा--- "सेना के चौथे हिस्से को अपनी रक्षा के लिए साथ लेकर राजा दुर्योधन हस्तिनापुर की ओर वेग से कूच कर दें। एक हिस्सा गायों को घेरकर भगा ले जाय। बाकी जो सेना रह जायगी उसे साथ लेकर हम पांचों महारथी अर्जुन का मुकाबला करें। ऐसा करने से ही राजा की रक्षा हो सकती है।"

आचार्य की आज्ञानुसार कौरव वीरों ने व्यूह-रचना कर ली।

●

उधर अर्जुन उत्तर से कह रहा था— "उत्तर ! सामने की शत्रु-सेना में दुर्योधन का रथ नहीं दिखाई दे रहा है। कवच पहने जो खड़े हैं वे पितामह भीष्म हैं। लेकिन दुर्योधन कहां चला गया ? इन महारथियों की ओर से हटकर अपना रथ उधर ले चलो जिधर दुर्योधन हो। मुझे भय है कि दुर्योधन कही गायें लेकर आगे हस्तिनापुर की ओर न जा रहा हो।"

उत्तर ने रथ उसी ओर हांक दिया जिधर से दुर्योधन वापस जा रहा था। जाते-जाते अर्जुन ने गाण्डीव पर चढ़ाकर दो-दो बाण आचार्य द्रोण और पितामह भीष्म की ओर इस तरह मारे जो उनके चरणों में जाकर गिरे। इस प्रकार अपने बड़ों की वन्दना करके अर्जुन ने दुर्योधन का पीछा किया।

पहले तो अर्जुन ने गायें भगा ले जाती हुई कौरव-सेना की टुकड़ी को पास जाकर जरा-सी देर में ही तितर-बितर कर दिया और गायें छुड़ा लीं। ग्वालों को गायें विराट-नगर की ओर लौटा ले जाने की आज्ञा देकर अर्जुन दुर्योधन का पीछा करने लगा।

अर्जुन को दुर्योधन का पीछा करते देखकर भीष्म आदि सेना लेकर अर्जुन का पीछा करने लगे और शीघ्र ही उसे घेर कर बाणों की बौछार करने लगे। अर्जुन ने उस समय अद्भुत रण-कुशलता का परिचय दिया। पहले तो उसने कर्ण पर हमला करके उसे बुरी तरह घायल करके मैदान से भगा दिया। इसके बाद द्रोणाचार्य पर जोर का हमला करके उन्हें भी हरा दिया। द्रोणाचार्य की बुरी गति होते देख अश्वत्थामा आगे बढ़ा और अर्जुन पर बाण बरसाने लगा। अर्जुन ने जरा हटकर द्रोणाचार्य को खिसक जाने के लिए मौका दे दिया। मौका पाकर आचार्य जल्दी से खिसक गये। उनके चले जाने के बाद अर्जुन अश्वत्थामा पर टूट पड़ा। दोनों में भयानक युद्ध होता रहा। अन्त में अश्वत्थामा को हार माननी पड़ी। उसके बाद कृपाचार्य की बारी आई और वे भी हार खा गए। पांचों महारथी जब इस भांति परास्त हो गये तो

फिर सेना किसके बल पर टिकती ! सारी कौरव-सेना को अर्जुन ने जल्दी ही तितर-बितर कर दिया। सैनिक अपनी जान लेकर भाग खड़े हुए।

मानी भीष्म से यह न देखा गया। डरकर भागती हुई सेना को फिर से इकट्ठी करके वे द्रोणाचार्य आदि के साथ अर्जुन पर टूट पड़े। भीष्म और अर्जुन में ऐसा भीषण संग्राम हुआ कि देवता भी उसे देखने के लिए आकाश में इकट्ठे हो गए। चारों ओर से कौरव-महारथी अर्जुन पर वार करने लगे। अर्जुन ने भी उस समय अपने चारों ओर बाणों की ऐसी वर्षा की कि जिससे वह बरफ से ढके पर्वत के समान प्रतीत होने लगा।

◆

इस भांति भीषण युद्ध करते हुए भी अर्जुन ने दुर्योधन का पीछा करना न छोड़ा। पांचों महारथियों के अर्जुन को एक साथ रोकने का प्रयत्न करने पर भी वह रोका न जा सका और आखिर दुर्योधन के निकट पहुंच ही गया। उसने दुर्योधन पर भीषण हमला कर दिया। दुर्योधन घायल होकर मैदान छोड़ भाग खड़ा हुआ। अर्जुन गरज कर बोला-- "दुर्योधन ! तुम्हें अपनी वीरता और यश का बड़ा घमण्ड था। अब जब वीरता दिखाने का समय आया तो भागने क्यों लगे ?" यह सुनकर दुर्योधन सांप की तरह फुफकारता हुआ फिर आ डटा। भीष्म, द्रोण आदि कौरव-वीरों ने दुर्योधन को चारों तरफ से घेर लिया और अर्जुन की बाण-वर्षा से उसकी रक्षा करने लगे। इस प्रकार बहुत देर तक तुमुल युद्ध होता रहा और हार-जीत का निर्णय होना कठिन हो गया। तब अर्जुन ने मोहनास्त्र का प्रयोग किया। इससे सारे कौरव-वीर पृथ्वी पर बेहोश होकर गिर पड़े। अर्जुन ने उन सबके वस्त्र उतार लिये। उन दिनों की प्रथा के अनुसार शत्रु-पक्ष के सैनिकों के वस्त्र-हरण कर लेना जीत का चिह्न समझा जाता था।

जब दुर्योधन को होश आया तो भीष्म ने उससे कहा कि अब वापस हस्तिनापुर लौट चलना चाहिए। भीष्म की सलाह मानकर सारी सेना हार मानकर हस्तिनापुर की ओर लौट चली।

इधर युद्ध से लौटते हुए अर्जुन ने कहा-- "उत्तर ! अपना रथ नगर की ओर ले चलो। तुम्हारी गायें छुड़ा ली गईं। शत्रु भी भाग खड़े हुए। इस विजय का यश तुम्हींको मिलना चाहिए। इसलिए चन्दन लगाकर और फूलों का हार पहनकर नगर में प्रवेश करना।"

रास्ते में शमी के वृक्ष पर अपने अस्त्रों को ज्यों-का-त्यों रखकर अर्जुन ने फिर से वृहन्नला का वेश धर लिया और राजकुमार उत्तर को रथ पर बैठाकर सारथी के स्थान पर खुद बैठ गया। विराट-नगर की ओर कुछ दूतों को यह आज्ञा देकर भेज दिया कि जाकर घोषणा करें कि राजकुमार उत्तर की जय हुई।

: ४६ :

विराट का भ्रम

त्रिगर्त-राज सुशर्मा पर विजय प्राप्त करके राजा विराट नगर में वापस आये तो पुरवासियों ने उनका धूम-धाम से स्वागत किया। अन्तःपुर में राजकुमार उत्तर को न पाकर राजा ने पूछताछ की तो स्त्रियों ने बड़े उत्साह के साथ बताया कि कुमार कौरवों से लड़ने गये हैं। उन स्त्रियों की आंखों में तो राजकुमार उत्तर कौरव-सेना की कौन कहे, सारे विश्व-पर विजय पाने के योग्य था। इस कारण उनको इसकी चिंता या आश्चर्य कुछ नहीं था। उन्होंने बड़ी बेफिक्री से राजकुमार के युद्ध में जाने की बात राजा से कही।

पर राजा तो यह सुनकर एकदम चौंक पड़े। उनके विशेष पूछने पर स्त्रियों ने कौरवों के आक्रमण आदि का सारा हाल सुनाया। यह सब सुनकर राजा का मन चिंतित हो उठा। दुःखी होकर बोले-- "राजकुमार उत्तर ने एक हीजड़े को साथ लेकर यह बड़े दुःसाहस का काम किया है। इतनी बड़ी सेना के सामने आंखें मूंदकर कूद पड़ा ! कहां कौरवों की

विशाल सेना और उसके सेनापति और कहां मेरा सुकोमल प्यारा बेटा ! अबतक तो वह कभी का मृत्यु के मुंह में पहुंच चुका होगा। इसमें कोई संदेह ही नहीं है।" कहते-कहते वृद्ध राजा का कण्ठ रुंध गया।

फिर अपने मंत्रियों को आज्ञा दी कि सेना इकट्ठी करके ले जायं और राजकुमार यदि जीते हों तो उन्हें किसी भी तरह सुरक्षित ले आयं।

राजकुमार उत्तर के समाचार जानने के लिए सैनिकों का एक दल तत्काल रवाना कर दिया गया।

राजा को इस प्रकार शोकातुर होते देख कर संन्यासी कंक ने उन्हें दिलासा देते हुए कहा-- "आप राजकुमार की चिंता न करें। वृहन्नला सारथी बनकर उनके साथ गई हुई है। वृहन्नला को आप नहीं जानते, लेकिन मैं जानता हूं। जिस रथ की सारथी वृहन्नला होगी, उस पर चढ़ कर कोई भी युद्ध में जाय, उसकी अवश्य ही जीत होगी। इसलिए आपके पुत्र विजेता बनकर लौटेंगे। इसी बीच सुशर्मा पर आपकी विजय की भी खबर वहां पहुंच चुकी होगी। कौरव-सेना में भगदड़ मच जायगी। आप चिंता न करें।"

कंक इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि इतने में उत्तर के भेजे हुए दूतों ने आकर कहा-- "राजन्! आपका कल्याण हो! कुमार जीत गए। कौरव सेना तितर-बितर कर दी गई। गायें लौटा ली गईं!"

सुनकर विराट आंखें फाड़ कर देखते रह गये। उन्हें विश्वास ही न होता था कि अकेला उत्तर कौरवों को जीत सकेगा।

कंक ने उन्हें विश्वास दिला कर कहा-- "राजन्, संदेह न करें। दूतों का कहना सच ही होना चाहिए। जब वृहन्नला सारथी बनी उसी क्षण आपके पुत्र की जीत निश्चित हो चुकी थी। मैं जानता हूं कि देवराज इन्द्र के और श्रीकृष्ण के सारथी भी वृहन्नला की बराबरी नहीं कर सकते। सो आपके पुत्र का जीत जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।"

पुत्र की विजय हुई यह जानकर विराट आनन्द और अभिमान

के मारे फूले न समाये। उन्होंने दूतों को असंख्य रत्न एवं धन पुरस्कार के रूप में देकर खूब आनन्द मनाया।

मंत्रियों एवं अनुचरों को आज्ञा देकर कहा—"तुम लोग खूब आनंद मनाओ। राजकुमार जीत गए हैं। नगर को खूब सजाओ। राजा सुशर्मा को मैंने जो जीता, सो कोई बड़ी बात न थी। राजकुमार की महान् विजय के आगे मेरी जीत कुछ भी नहीं है। वह तो बिलकुल फीकी पड़ गई। राजवीथियों में ध्वजाएं फहरा दो। मंगल-वाद्य बजाने की आज्ञा दो। सिंह-शिशु-से निडर और पराक्रमी मेरे प्रिय पुत्र का धूम-धाम से स्वागत हो, इसका प्रबन्ध करो। घर-घर में विजय का उत्सव मनाया जाय।"

इसके बाद राजा ने प्रसन्नता से अन्तःपुर में जाकर कहा—"सैरंध्री, चौपड़ की गोटें तो जरा ले आओ। चलो कंक महाराज, दो-दो हाथ चौपड़ खेल लें। आज खुशी के मारे मैं पागल-सा हुआ जा रहा हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि अपना आनंद कैसे व्यक्त करूं।"

दोनों खेलने बैठे। खेलते समय बातें भी होने लगीं।

"देखा राजकुमार का शौर्य? विख्यात कौरव-वीरों को मेरे बेटे ने अकेले ही लड़कर जीत लिया!" विराट ने कहा।

"निःसन्देह आपके पुत्र भाग्यवान् हैं, नहीं तो वृहन्नला उनकी सारथी बनती ही कैसे?" कंक ने कहा।

विराट झुंझलाकर बोले—"संन्यासी! आपने भी क्या यह वृहन्नला-वृहन्नला की रट लगा रक्खी है? मैं अपने कुमार की विजय की बात कर रहा हूं और आप उस हीजड़े के सारथी होने की बड़ाई करने लगे!"

यह सुन कंक ने धीरज से कहा—"आपको ऐसा नहीं समझना चाहिए। वृहन्नला को आप साधारण सारथी न समझें। जिस रथ पर वह बैठी वह कभी विजय पाये बगैर लौटा ही नहीं। उसके चलाये हुए रथ पर चढ़ कर साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी बड़े-से-बड़े योद्धाओं को सहज ही में हरा सकता है।"

अब राजा से न रहा गया। अपने हाथ का पांसा युधिष्ठिर (कंक) के मुंह पर दे मारा और एक थप्पड़ भी जड़ दिया। बोला-- "ब्राह्मण संन्यासी! खबरदार, जो फिर ऐसी बातें कीं। जानते हो तुम किससे बातें कर रहे हो?" पांसे की मार से युधिष्ठिर के मुख पर चोट आई और खून बहने लगा।

सैरन्ध्री जल्दी से अपने उत्तरीय से उनका घाव पोंछने लगी। जब उत्तरीय खून से लथपथ हो गया तो पास रखे एक सोने के प्याले में उसे निचोड़ने लगी।

"यह क्या कर रही हो? खून को प्याले में क्यों निचोड़ रही हो?" विराट ने क्रोध से पूछा। अभी वे शांत न हुए थे।

सैरन्ध्री ने कहा-- "राजन्! संन्यासी के रक्त की जितनी बूंदें नीचे जमीन पर गिर जायंगी उतने बरस आपके राज्य में पानी नहीं बरसेगा। इसी कारण मैंने यह खून प्याले में निचोड़ लिया है। कंक की महानता आप नहीं जानते।"

इतने में द्वारपाल ने आकर खबर दी कि राजकुमार उत्तर वृहन्नला के साथ द्वार पर खड़े हैं। राजा से भेंट करना चाहते हैं।

सुनते ही विराट जल्दी से उठ कर बोले--"आने दो! आने दो।" युधिष्ठिर ने इशारे से द्वारपाल को कहा कि सिर्फ राजकुमार को लाओ। वृहन्नला को नहीं।

युधिष्ठिर को भय था कि कहीं राजा के हाथों उनको जो चोट लगी है उसे देख कर अर्जुन गुस्से में कोई गड़बड़ न मचा दे। यही सोच उन्होंने द्वारपाल को ऐसा आदेश दिया।

राजकुमार उत्तर ने प्रवेश करके पहले अपने पिता को नमस्कार किया और फिर कंक को प्रणाम करना ही चाहता था कि उनके मुख पर से खून बहता देखकर चकित रह गया। उसे अर्जुन से मालूम हो चुका था कि कंक तो असल में युधिष्ठिर ही हैं।

उसने पूछा--"पिताजी, इन धर्मात्मा को किसने यह पीड़ा

पहुंचाई है ?"

विराट ने कहा-- "बेटा ! जब मैं तुम्हारी विजय की खबर से खुश हो तुम्हारी प्रशंसा करने लगा तो इन्होंने ईर्ष्या के मारे वृहन्नला की प्रशंसा करते हुए तुम्हारी वीरता और विजय की अवज्ञा की। यह मुझसे न सहा गया। इसलिए क्रोध में मैंने चौपड़ के पांसे फेंक मारे। क्यों, तुम उदास क्यों हो गये, बेटा ?"

पिता की बात सुनकर उत्तर कांप गया। उसके भय और चिन्ता की सीमा न रही। बोला-- "पिताजी, आपने यह बड़ा पाप कर डाला। अभी इनके पांव पकड़कर क्षमा-याचना कीजिए। अपने किये पर पश्चात्ताप कीजिए, नहीं तो हमारे वंश का सर्वनाश ही हो जायगा।"

विराट कुछ समझ ही न सके कि बात क्या है। परन्तु उत्तर ने फिर आग्रह किया तो उन्होंने युधिष्ठिर के पांव पकड़ कर क्षमा-याचना की। इसके बाद उत्तर को गले लगा लिया और बोले--"बेटा, बड़े वीर हो तुम। बताओ तो तुमने कौरवों की सेना को जीता कैसे ? लाखों गायों को सेना से कैसे छुड़ाया ? विस्तार से हमें सब हाल सुनाओ। जो कुछ हुआ, शुरू से लेकर सब हाल बताओ।"

उत्तर ने कहा-- "पिताजी, मैंने कोई सेना नहीं हराई। मैं तो लड़ा भी नहीं। एक भी गाय मैंने नहीं लौटाई। यह सब किसी देवकुमार का कार्य था। उन्होंने कौरवों की सेना को तहस-नहस करके गायें लौटा दीं। मैं तो सिर्फ देखता रहा।"

बड़ी उत्कण्ठा के साथ राजा ने पूछा-- "कौन था वह वीर ? कहां है वह ? बुला लाओ उसे। उस वीर के दर्शन करके अपनी आंखें धन्य कर लूं जिसने मेरे पुत्र को मृत्यु के मुंह से बचाया। उस वीर को मैं अपनी पुत्री उत्तरा को भेंट करूंगा। उसकी पूजा करूंगा। बुला लाओ उसे।"

"पिताजी, वह देवकुमार अन्तर्द्धान हो गये। लेकिन फिर भी मेरा विश्वास है कि आज या कल वे अवश्य प्रकट होंगे।" राजकुमार ने कहा।

राजा विराट और राजकुमार उत्तर की विजय का उत्सव मनाने के लिए राजसभा हुई। नगर के सब प्रमुख लोग आकर अपने-अपने आसनों पर बैठने लगे। कंक, वल्लभ, वृहन्नला, तंतिपाल, ग्रंथिक आदि राजा के पांचों सेवक सभा में आये तो सबकी दृष्टि उनपर पड़ी। जब ये पांचों राजकुमारों के लिए नियुक्त स्थानों पर जा बैठे तो लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर भी उन्होंने यह सोच अपना समाधान कर लिया कि राजा की सेवा-टहल करनेवाले नौकर होने पर भी समय-समय पर उन्होंने वीरता से राजा की जो सहायता की, उसीके लिए राजा ने इनको यह गौरव प्रदान किया होगा। यदि यह बात न होती तो इन सेवकों की हिम्मत कैसे पड़ती कि राजोचित आसनों पर जा बैठें!

लोग यह सोच ही रहे थे कि इतने में राजा विराट सभा में प्रविष्ट हुए। यह देखकर कि पांचों सेवक राजकुमारों के लिए नियत आसन पर शान से बैठे हुए हैं, विराट के भी आश्चर्य और क्रोध का ठिकाना न रहा।

उन्होंने अपने क्रोध को रोका और पांचों भाइयों के पास उनके आसनों पर जाकर पूछा कि आज भरी सभा में यह अविनय आप लोग क्यों कर रहे हैं। थोड़ी देर तक तो विराट और पाण्डवों के बीच में कुछ विवाद होता रहा; पर आखिर में पाण्डवों ने सोचा कि अब ज्यादा विवाद करना और अपने को छिपाये रखना ठीक नहीं। यह सोचकर अर्जुन ने पहले राजा विराट को और बाद में सारी सभा को अपना असली परिचय दे दिया। लोगों के आश्चर्य और आनन्द का ठिकाना न रहा। सभा में कोलाहल मच गया।

राजा विराट का हृदय कृतज्ञता, आनन्द और आश्चर्य से तरंगित हो उठा। पांचों पाण्डव और राजा द्रुपद की पुत्री मेरे यहां सेवा-टहल करते हुए अज्ञात होकर रहे; मेरे और मेरे पुत्र के प्राणों की रक्षा की; मैं कैसे इस सबका बदला चुकाऊं? कैसे इनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करूं? यही सोचकर राजा विराट का जी भर आया। युधिष्ठिर से

बार-बार गलें मिले और गद्गद् होकर कहा—— "मैं आपका ऋण कैसे चुकाऊं ? मेरा यह सारा राज्य आपका है । मैं आपका अनुचर बनकर रहूंगा ।"

युधिष्ठिर ने प्रेम के साथ कहा—— "राजन् ! मैं आपका बहुत आभारी हूं। राज्य तो आप ही रखिये। आपने आड़े समय पर हमें जो आश्रय दिया वही लाखों राज्यों के बराबर है ।

विराट ने कुछ सोचने के बाद अर्जुन से आग्रह किया कि आप राज-कन्या उत्तरा से ब्याह कर लें ।

अर्जुन ने कहा—— "राजन् ! आपका बड़ा अनुग्रह है । पर आपकी कन्या को मैं नाच और गाना सिखाता रहा हूं । मेरे लिए वह बेटी के समान है । इस कारण यह उचित नहीं कि मैं उसके साथ ब्याह करूं । हां, यदि आपकी इच्छा ही हो तो मेरे पुत्र अभिमन्यु के साथ उसका ब्याह हो जाय । उत्तरा को मैं अपनी पुत्र-वधू स्वीकार करने के लिए तैयार हूं ।"

राजा विराट ने यह बात मान ली ।

●

इसके कुछ समय बाद दुरात्मा दुर्योधन के दूतों ने आकर युधिष्ठिर से कहा—— "कुन्ती-पुत्र ! महाराज दुर्योधन ने हमें आपके पास भेजा है । उनका कहना है कि उतावली के कारण प्रतिज्ञा पूरी होने से पहले अर्जुन पहचाने गये हैं । इसलिए शर्त के अनुसार आपको बारह बरस के लिए और बनवास करना होगा ।"

इसपर धर्मराज युधिष्ठिर हंस पड़े और बोले—— "दूतगण, शीघ्र ही वापस जाकर दुर्योधन को कहो कि पितामह भीष्म और ज्योतिष-शास्त्र के जानकारों से पूछकर इस बात का निश्चय वे करें कि अर्जुन जब प्रकट हुआ था तब प्रतिज्ञा की अवधि पूरी हो चुकी थी या नहीं । मेरा यह दावा है कि तेरहवां बरस पूरा होने के बाद ही अर्जुन ने धनुष की टंकार की थी ।"

Romesh Chandra

Kaul

SPS
294.5923 R 14 M
16831

२/I